जुलाई 2018

उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

प्रस्तावित संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक : श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

परामर्शदाता : सर्वश्री दयाल चन्द्र ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

ISSN- 2457-0486

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ` 125/-

© 2018 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0486

उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका

जुलाई, 2018 अंक - 7

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक
असलम खान

विधि साहित्य
प्रकाशन

(2018) 2 दा. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

विक्रय कार्यालय : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

यद्यपि 'बलात्संग' जैसा अपराध समाज के प्रति अत्यंत घिनौना कृत्य है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि जिस पुरुष ने बिना कोई प्रलोभन दिए किसी स्त्री के साथ उसकी विधिमान्य सम्मति लेकर संभोग किया है, वह बलात्संग का दोषी होगा । हमारे समाज में ऐसे बहुत से विभाग और निजी कंपनियां हैं जिनमें स्त्री-पुरुष नौकरी करते हैं और कुछ महिलाएं अपने उज्ज्वल भविष्य के लिए स्वयं ही शारीरिक संबंधों को अपना लेती हैं और वे अपना अच्छा-बुरा भलीभांति समझती हैं । अतः, यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसी महिलाओं को पुरुषों द्वारा मूर्ख बनाया जाता है या किसी प्रकार का लालच दिया जाता है या उनके समक्ष मिथ्या तथ्यों को प्रस्तुत करके उनके साथ संबंध बनाए जाते हैं । इस प्रकार, बने शारीरिक संबंधों के प्रति स्त्री और पुरुष दोनों ही हितबद्ध होते हैं, इसलिए पुरुषों को जिम्मेदार ठहराना उचित नहीं होगा । **प्रीति पुना राम प्रजापति** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** (2018) 2 दा. नि. प. 77 वाला मामला इस स्थिति को स्पष्ट करता है ।

जैसा कि हम जानते हैं कि अभियुक्त के कृत्य को साबित करने के लिए संपोषक साक्ष्य आवश्यक हैं । अन्वेषण के दौरान कुछ सामग्री घटनास्थल से एकत्र की जाती है जिसका सीधा संबंध अपराध से होना चाहिए । परन्तु, प्रायः ऐसा देखा गया है कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा भी कुछ लापरवाही बरती जाती है । वह बरामद किए गए सामान की शनाख्त घटनास्थल पर मौजूद व्यक्तियों से नहीं कराता है । यदि रक्तरंजित हथियारों को परीक्षण के लिए न्यायालयिक प्रयोगशाला भेज दिया जाए किन्तु फिर भी रक्त-ग्रुप का पता न चल सके तो इसे अन्वेषण की कमी ही कहा जाएगा । रक्त-ग्रुप सुनिश्चित होने के बाद ही यह कहा जा सकता है कि ये वही हथियार हैं जिनका प्रयोग मृतक की हत्या करने या उसके शव के टुकड़े करने में किया गया था । **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **आमीन और अन्य** (2018) 2 दा. नि. प. 111 वाला मामला इसका एक अच्छा उदाहरण है ।

इस अंक में कई महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है । यह अंक विधि विद्यार्थियों, वकीलों, न्यायाधीशों, विधि अध्यापकों तथा विधि के ज्ञान में रुचि रखने वाले लोगों के लिए पर्याप्त रूप से लाभकारी है ।

इस अंक में बाल विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006 को भी प्रकाशित किया जा रहा है जिसका आप परिशीलन करें और अपने अमूल्य सुझावों से अवगत कराएं ।

असलम खान
संपादक

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
इशान अख्तर **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य	135
कृष्ण कुमारी **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य	6
जोयल बेचक **बनाम** सुभाष सवाल	85
प्रीति पुना राम प्रजापति **बनाम** छत्तीसगढ़ राज्य	77
बिनोद बिहारी नाईक (डा.) **बनाम** ओडिशा राज्य	43
बूसी सुनील भानू (डा.) **बनाम** आंध्र प्रदेश राज्य	1
मध्य प्रदेश राज्य **बनाम** आमीन और अन्य	111
मनीष **उर्फ** राजू देवषीभाई चोवादिया **बनाम** गुजरात राज्य	54
रशीद खान और एक अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य	18
राघा मूरा **बनाम** असम राज्य और एक अन्य	68
हिमाचल प्रदेश राज्य **बनाम** सूर्य प्रकाश	142

संसद् के अधिनियम

बाल-विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1—10

पृष्ठ संख्या

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 145 – संपत्ति संबंधी विवाद से परिशांति भंग – कार्यपालक मजिस्ट्रेट की अधिकारिता – संपत्ति के कब्जे के संबंध में मजिस्ट्रेट को यह विनिश्चित करना है कि विवादित संपत्ति पर किसका वास्तविक कब्जा है, न कि किस पक्षकार के पास कब्जे का अधिकार है ।

जोयल बेचक बनाम **सुभाष सवाल** 85

– धारा 156(3) – मामले का रजिस्ट्रेशन – रजिस्ट्रेशन के लिए आवेदन – आवेदन केवल मामले के रजिस्ट्रेशन और अन्वेषण के लिए आदेश पारित करने तक माना जा सकता है – परिवाद के रूप में नहीं माना जा सकता है – मजिस्ट्रेट यदि मामले में संज्ञेय अपराध बनता हो तब भी प्रत्येक मामले में रजिस्ट्रेशन और अन्वेषण करने के लिए आदेश पारित करने हेतु बाध्य नहीं है – मजिस्ट्रेट मामले में अपने न्यायिक विवेक को प्रयोग करने के लिए पूरी तरह सक्षम है ।

कृष्ण कुमारी बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 6

– धारा 167(2) – आरोप पत्र फाइल न किए जाने पर जमानत का अधिकार – दंड संहिता की धारा 467 के अधीन मूल्यवान प्रतिभूति की कूटरचना का अपराध जो आजीवन कारावास से दंडनीय है, के आरोपी अभियुक्त को न्यायिक अभिरक्षा से 60 दिनों की समाप्ति के पश्चात् उक्त धारा के अधीन नहीं छोड़ा जा सकता क्योंकि उक्त अपराध के लिए आरोप पत्र फाइल करने की अवधि 90 दिन है न कि 60 दिन ।

मनीष उर्फ **राजू देवषीभाई चोवादिया** बनाम **गुजरात राज्य** 54

– धारा 401(2) – पुनरीक्षण – ग्रहण किए जाने योग्य अभियुक्त ने दंड संहिता की धारा 153क के अधीन

पृष्ठ संख्या

संज्ञान लेने के आदेश को चुनौती दिया जाना – इत्तिलाकर्ता द्वारा यह अभिवाक् किया जाना कि उसे पुनरीक्षण में सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया जाना – संहिता की धारा 401(2) में प्रकट "कोई अन्य व्यक्ति" शब्दों में इत्तिलाकर्ता/परिवादी सम्मिलित नहीं होता है – पुनरीक्षण में अभियुक्त को सुनवाई का अवसर दिया जाना आवश्यक नहीं है ।

रशीद खान और एक अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** 18

– धारा 438 – गिरफ्तारी की आशंका करने वाले व्यक्ति की जमानत मंजूर करने के लिए निदेश – अग्रिम जमानत – आवेदक अभियोजन साक्ष्य में हेरफेर करने और न न्याय से भागने की स्थिति में नहीं है अतः उसकी अग्रिम जमानत मंजूर की जा सकती है ।

इशान अख्तर बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** 135

– धारा 482 – कार्यवाहियों को अभिखंडित किया जाना – कई सालों से नगर निगम के कर का संदाय न करने का अभिकथन किया जाना – दंड संहिता की धारा 199, 200 के अधीन घोषणा में मिथ्या कथन किया जाना – चर्च के कोषाध्यक्ष के पद से अभियुक्त को हटाए जाने के कारण परिवादी और अभियुक्त के बीच शिकायत होना – करों की अदायगी न किए जाने की बाबत कोई वैयक्तिक शिकायत न होना – परिवादी द्वारा अभियुक्त को परेशान करने का बहाना – करों की अदायगी के लिए चर्च बाध्य था न कि अभियुक्त – अभियुक्त के विरुद्ध किए गए अभिकथनों पर धारा 199 लागू नहीं होती है – कार्यवाहियों का परिणाम विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है इसलिए, कार्यवाहियां अभिखंडित की जाती हैं ।

बूसी सुनील भानू (डा.) बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** 1

पृष्ठ संख्या

– धारा 482 – उच्च न्यायालय की असाधारण अधिकारिता – उपखंड मजिस्ट्रेट कब्जे के संबंध में जांच कराने में असफल रहा और कब्जे के संबंध में विधि विरुद्ध आदेश पारित किया और पुनरीक्षण न्यायालय ने भी विचारण मजिस्ट्रेट के आदेश की पुष्टि की इसलिए, न्याय के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा अपनी असाधारण शक्तियों का प्रयोग करना उचित और न्यायसंगत है ।

जोयल बेचक बनाम **सुभाष सवाल** 85

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – पारिस्थितिक साक्ष्य-ऋण की तुच्छ रकम को लेकर अभिकथित हत्या – किसी भी व्यक्ति द्वारा अपीलार्थियों को मृतक के साथ अन्तिम बार नहीं देखा जाना – अभियोजन साक्षियों ने मृतक को अपीलार्थियों के साथ नहीं देखा था और उन्हें केवल फोन से पता चला था कि अपीलार्थियों की मुलाकात मृतक से हुई है, अतः यह साबित नहीं हुआ कि अपीलार्थी वास्तव में अन्तिम बार मृतक के साथ थे या नहीं, ऐसी स्थिति में वे संदेह का लाभ पाने के हकदार होंगे ।

मध्य प्रदेश राज्य बनाम **आमीन और अन्य** 111

– धारा 304, भाग-I [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या की कोटि में न आने वाला मानव वध – संदेह का लाभ – अभियुक्तों द्वारा अपने जीजा पर लाठी और डंडों से अभिकथित रूप से हमला किया जाना – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य की ग्राम प्रधान के परिसाक्ष्य और चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि न होना – मृतक की पत्नी का पक्षद्रोही हो जाना – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी ने हमला होते हुए देखा है किन्तु सहायता के लिए शोर नहीं मचाया और यदि उसने भय के कारण

पृष्ठ संख्या

ऐसा किया है तो अपने परिक्षेत्र में जाकर किसी को सहायता के लिए नहीं पुकारना उसका एक अस्वाभाविक कृत्य है, साथ ही इस साक्षी ने मृतक पर लाठी और डंडों से हमला किया जाना बताया है जबकि चिकित्सीय साक्ष्य से नुकीले और धारदार आयुध से क्षति कारित किए जाने का पता चलता है, ऐसी स्थिति में प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य संदिग्ध हो जाता है और इस आधार पर अभियुक्तों की दोषसिद्धि न्यायोचित नहीं है ।

राघा मूरा बनाम **असम राज्य और एक अन्य** 68

– धारा 313 [सपठित गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम, 1971 की धारा 3, 4 और 5] – गर्भ का समापन – जहां गर्भ के समापन के लिए गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम की धारा 3, 4 और 5 के अधीन अधिकथित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया और न ही छह माह के गर्भ को समाप्त करने के लिए पीड़ित की सहमति ली गई, वहां कुछ दवाइयां खिलाकर पीड़ित को बेहोश कर प्रछन्न ढंग से किए गए गर्भपात के लिए रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी को दोषसिद्ध ठहराना उचित और न्यायसंगत है ।

बिनोद बिहारी नाईक (डा.) बनाम **ओडिशा राज्य** 43

– धारा 376 – बलात्संग – पुस्तकें देने के बहाने अभियोक्त्री के साथ उसके मामा द्वारा घर बुलाकर बलात्संग किया जाना – अभियोक्त्री की आयु की पुष्टि के लिए जन्मतिथि रजिस्टर, स्कूल रजिस्टर या चिकित्सक की राय प्राप्त न करना – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अभियोक्त्री द्वारा अपनी आयु साढ़े अठारह वर्ष बताया जाना – अभियोक्त्री द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि उसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अपनी आयु साढ़े अठारह वर्ष लिखवाई थी, स्कूल रजिस्टर या चिकित्सीय राय का प्रयोग आयु सुनिश्चित करने के लिए नहीं किया गया, अतः

पृष्ठ संख्या

अभियोजन पक्ष को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में लिखी आयु को ही मानना होगा और इससे अभियोक्त्री अप्राप्तवय साबित नहीं होती है ।

प्रीति पुना राम प्रजापति बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** 77

– धारा 376 और धारा 90 – बलात्संग – भ्रम के अधीन दी गई सम्मति – विवाह का वचन प्रथम बार संभोग करने के पश्चात् दिया जाना – अभियोक्त्री ने संभोग की सम्मति विवाह के वचन के आधार पर नहीं दी है और वह इस क्रियाकलाप में सामान्य रूप से अन्तर्वलित हुई है न कि उसे बहला-फुसलाकर उसकी सम्मति ली गई हो, अतः दंड संहिता की धारा 90 लागू नहीं होगी और अभियोक्त्री की सम्मति विधिमान्य है साथ ही बलात्संग के अपराध से अभियुक्त-प्रत्यर्थी की दोषमुक्ति उचित है ।

प्रीति पुना राम प्रजापति बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** 77

– धारा 489ग [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 378] – कूटरचित या कूटकृत करेंसी नोटों या बैंक नोटों को कब्जे में रखना – विधि की प्रतिपादना से पूर्णतया यह प्रकट है कि कूटरचित, कूटकृत करेंसी नोटों को असली रूप में इस्तेमाल में लेकर बेचने, खरीदने या किसी व्यक्ति से प्राप्त करने या अन्यथा अवैध व्यापार करने जिसमें आपराधिक मनःस्थिति नहीं रही है और यदि अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त के पास अध्यपेक्षित आपराधिक मनःस्थिति थी तब धारा 489ग के अधीन प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विरुद्ध कोई दोषसिद्धि अभिलिखित नहीं की जा सकती है ।

हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम **सूर्य प्रकाश** 142

– धारा 506, भाग II – बलात्संग – आपराधिक अभित्रास – बलात्संग के उपरांत अभियुक्त-प्रत्यर्थी द्वारा जान से मारने की धमकी दिए जाने का अभिकथन – धमकी

पृष्ठ संख्या

दिए जाने का साक्ष्य उपलब्ध न होना – मात्र शब्दों का प्रयोग करने से अपराध गठित नहीं होता है क्योंकि शब्दों में आक्रोश तो है किन्तु ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे धमकी गठित होती है, अतः, उक्त आरोप से अभियुक्त-प्रत्यर्थी की दोषमुक्ति न्यायोचित है ।

प्रीति पुना राम प्रजापति बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** 77

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 3 – पारिस्थितिक साक्ष्य – आयुधों की बरामदगी – बरामद किए गए आयुधों से शव विच्छिन्न किया जाना – आयुधों पर मानव रक्त का पाया जाना किन्तु रक्त-ग्रुप की संपुष्टि न होना – न्यायालयिक रिपोर्ट के अनुसार खेत में से बरामद किए गए आयुधों पर मानव रक्त लगा पाया गया किन्तु रक्त-ग्रुप का पता नहीं चल सका और रिपोर्ट से कोई निष्कर्ष नहीं निकल सका, अतः यह साबित नहीं माना जा सकता कि ये वही आयुध हैं जिनका प्रयोग मृतक के शव के टुकड़े करने में किया गया था, इसलिए अपीलार्थियों की दोषसिद्धि उचित नहीं है और वे दोषमुक्ति के हकदार हैं ।

मध्य प्रदेश राज्य बनाम **आमीन और अन्य** 111

– धारा 27 – प्रकटीकरण कथन की ग्राह्यता – अपराध में प्रयोग किए गए आयुधों का सड़क के किनारे पाया जाना – अभियुक्तों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को भी शव और आयुधों की जानकारी होना – शव और आयुधों को छिपाकर नहीं रखा गया बल्कि वे लोगों को सड़क के किनारे पड़े हुए स्पष्ट दिखाई दे रहे थे, ऐसी स्थिति में पुलिस के समक्ष अभियुक्तों द्वारा दिया गया प्रकटीकरण कथन अभियोजन पक्ष के लिए सहायक नहीं हो सकता ।

राघा मूरा बनाम **असम राज्य और एक अन्य** 68

बूसी सुनील भानू (डा.)

बनाम

आंध्र प्रदेश राज्य

तारीख 14 नवम्बर, 2017

न्यायमूर्ति (श्रीमती) टी. रजनी

दंड प्रक्रिया सहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 482 – कार्यवाहियों को अभिखंडित किया जाना – कई सालों से नगर निगम के कर का संदाय न करने का अभिकथन किया जाना – दंड संहिता की धारा 199, 200 के अधीन घोषणा में मिथ्या कथन किया जाना – चर्च के कोषाध्यक्ष के पद से अभियुक्त को हटाए जाने के कारण परिवादी और अभियुक्त के बीच शिकायत होना – करों की अदायगी न किए जाने की बाबत कोई वैयक्तिक शिकायत न होना – परिवादी द्वारा अभियुक्त को परेशान करने का बहाना – करों की अदायगी के लिए चर्च बाध्य था न कि अभियुक्त – अभियुक्त के विरुद्ध किए गए अभिकथनों पर धारा 199 लागू नहीं होती है – कार्यवाहियों का परिणाम विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है इसलिए, कार्यवाहियां अभिखंडित की जाती हैं ।

यह मामला परिवादी द्वारा फाइल किए गए प्राइवेट परिवाद के आधार पर रजिस्ट्रीकृत किया गया था । परिवाद में किए गए अभिकथन का परिशीलन करने पर कोई अपराध बनना प्रतीत नहीं होता है, जिसे अभियुक्त द्वारा किए जाने का कथन किया जा सकता है । मामले में अभिकथन इस प्रकार हैं कि एईएल चर्च के अध्यक्ष पद के लिए मई, 2009 में चुनाव रखा गया था । अभियुक्त अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित हुआ था । वह जोर-जबर्दस्ती से उस पद से परिवादी को हटाना चाहता था, क्योंकि वह चर्च का वफादार सेवक था, परिवादी का अभियुक्त द्वारा किए गए अपराध को सामने लाने का कभी कोई आशय नहीं रहा । अभियुक्त ने एएलटी सेमिनार के कोषाध्यक्ष के पद पर परिवादी को अपने कर्तव्यों का

निर्वहन करने से रोकने के लिए विधिक आदेश जारी करवाया था । उक्त आदेश प्राप्त करने पर परिवादी ने प्रधान जिला न्यायालय, राजामुंदरी और एएलटी सेमिनार के प्रधानाचार्य को भी समावेदन किया और जिसके लिए स्थायी व्यादेश मंजूर किया गया था, जो बाद में पूर्ण बना दिया गया था । परिवादी ने संपत्ति कर का समूह प्रदर्श पी-22 फाइल किया जिसमें नगर निगम राजामुंदरी द्वारा 28 लाख रुपए की राशि का मांग नोटिस जारी किया गया था । अभियुक्त अच्छी तरह इन बातों को जानता था कि चर्च कर का संदाय करने के लिए बाध्य है, इसलिए उक्त राशि का संदाय करने में वह विफल रहा तथा प्रत्युत्तर में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि उसने मिथ्या रूप से यह अभिकथन किया कि पूर्व कोषाध्यक्ष और प्रधानाचार्य ने पिछले कई वर्षों से राजामुंदरी के नगर निगम का कर जो कई लाख रुपयों में था, अदा नहीं किया । याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – परिवादी से उक्त दलील का भी समर्थन होता है और उक्त शिकायत को छोड़कर परिवादी के लिए इस परिवाद को फाइल करने का कोई कारण नहीं हो सकता, जो याची के विरुद्ध किसी भी अपराध को प्रकट नहीं करता है । करों की अदायगी न करने के बारे में परिवादी को कोई वैयक्तिक शिकायत नहीं हो सकती है । इससे केवल यह पता चलता है कि परिवादी याची को परेशान करने का बहाना तलाश कर रहा था और इसलिए यह परिवाद फाइल किया गया । इस कार्यवाही को जारी रखना विधि की प्रक्रिया का केवल दुरुपयोग करना होगा । (पैरा 8)

प्रकीर्ण (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक याचिका सं. 1785.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन याचिका ।

याची की ओर से श्री ए. प्रभाकर राव

प्रत्यर्थी की ओर से श्री एन. सिवा रेड्डी

न्यायमूर्ति (श्रीमती) टी. रजनी – यह दांडिक याचिका, याची द्वारा तृतीय अपर न्यायिक प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट, राजामुंदरी की फाइल पर 2011 का सी. सी. सं. 14 में कार्रवाइयों को अभिखंडित करने के लिए फाइल की गई है ।

2. याची के काउंसेल और विद्वान् लोक अभियोजक जिन्होंने आर.1 के लिए नोटिस लिया था, को सुना । द्वितीय प्रत्यर्थी नोटिस के बावजूद भी

हाजिर नहीं हुआ ।

3. यह मामला परिवादी द्वारा फाइल किए गए प्राइवेट परिवाद के आधार पर रजिस्ट्रीकृत किया गया था । परिवाद में किए गए अभिकथन का परिशीलन करने पर कोई अपराध बनना प्रतीत नहीं होता है, जिसे अभियुक्त द्वारा किए जाने का कथन किया जा सकता है । मामले में अभिकथन इस प्रकार हैं कि एईएल चर्च के अध्यक्ष पद के लिए मई, 2009 में चुनाव रखा गया था । अभियुक्त अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित हुआ था । वह जोर-जबर्दस्ती से उस पद से परिवादी को हटाना चाहता था, क्योंकि वह चर्च का वफादार सेवक था, परिवादी का अभियुक्त द्वारा किए गए अपराध को सामने लाने का कभी कोई आशय नहीं रहा । अभियुक्त ने एएलटी सेमिनार के कोषाध्यक्ष के पद पर परिवादी को अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने से रोकने के लिए विधिक आदेश जारी करवाया था । उक्त आदेश प्राप्त करने पर परिवादी ने प्रधान जिला न्यायालय, राजामुंदरी और एएलटी सेमिनार के प्रधानाचार्य को भी समावेदन किया और जिसके लिए स्थायी व्यादेश मंजूर किया गया था, जो बाद में पूर्ण बना दिया गया था । परिवादी ने संपत्ति कर का समूह प्रदर्श पी-22 फाइल किया जिसमें नगर निगम राजामुंदरी द्वारा 28 लाख रुपए की राशि का मांग नोटिस जारी किया गया था । अभियुक्त अच्छी तरह इन बातों को जानता था कि चर्च कर का संदाय करने के लिए बाध्य है, इसलिए उक्त राशि का संदाय करने में वह विफल रहा तथा प्रत्युत्तर में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि उसने मिथ्या रूप से यह अभिकथन किया कि पूर्व कोषाध्यक्ष और प्रधानाचार्य ने पिछले कई वर्षों से राजामुंदरी के नगर निगम का कर जो कई लाख रुपयों में था, अदा नहीं किया ।

4. याची ने अपने प्रत्युत्तर में यह भी निवेदन किया है कि उसे दंड संहिता की धारा 199 और 200 के अधीन अपराध में फंसाने की कोशिश की गई । याची द्वारा किए गए अभिकथित कथन दंड संहिता की धारा 199 और 200 के अधीन अपराध को गठित करने वाला नहीं समझा जाना चाहिए । उक्त कथन की सच्चाई जब तक कि अपराध के रकम के बारे में विचार नहीं कर लिया जाता तब तक इसकी तह में नहीं जाया जा सकता । मात्र इस तथ्य से इनकार करना जिससे पक्षकार द्वारा अपनी ओर से फाइल किए गए याचिका में उसका प्राख्यान न किया हो, उसे तब तक मिथ्या कथन के रूप में नहीं लिया जा सकता जब तक कि उक्त कथन

का न्यायनिर्णयन नहीं कर लिया जाता ।

5. दंड संहिता की धारा 199 और 200 के उक्त निर्देश के संबंध में सार निकाला जा सकता है :–

199. ऐसी घोषणा में, जो साक्ष्य के रूप में विधि द्वारा ली जा सके, किया गया मिथ्या कथन है –

जो कोई अपने द्वारा की गई या हस्ताक्षरित किसी घोषणा में जिसकी किसी तथ्य के साक्ष्य के रूप में लेने के लिए कोई न्यायालय या कोई लोक सेवक या अन्य व्यक्ति विधि द्वारा आबद्ध या प्राधिकृत हो, कोई ऐसा कथन करेगा, जो किसी ऐसी बात के संबंध में, जो उस उद्देश्य के लिए तात्विक हो जिसके लिए वह घोषणा की जाए या उपयोग में लाई जाए, मिथ्या है, जिसके मिथ्या होने का उसे ज्ञान या विश्वास है, या जिसके सत्य होने का उसे विश्वास नहीं है, वह उसी प्रकार दंडित किया जाएगा, मानो उसने मिथ्या साक्ष्य दिया हो ।

200. ऐसी घोषणा का मिथ्या होना जानते हुए सच्ची के रूप में काम में लाना । जो कोई किसी ऐसी घोषणा को, यह जानते हुए कि वह किसी तात्विक बात के संबंध में मिथ्या है, भ्रष्टतापूर्वक सच्ची के रूप में उपयोग में लाएगा, या उपयोग में लाने का प्रयत्न करेगा वह उसी प्रकार दंडित किया जाएगा मानों उसने मिथ्या साक्ष्य दिया हो ।

स्पष्टीकरण – कोई घोषणा, जो केवल किसी अप्ररूपिता के आधार पर अग्राह्य है धारा 199 और धारा 200 के अर्थ के अंतर्गत घोषणा है ।

6. न्यायालय किसी तथ्य के साक्ष्य का प्रत्युत्तर देने के लिए बाध्य नहीं है और मात्र अभिवचनों के आधार पर कोई न्यायनिर्णयन न्यायालय द्वारा नहीं किया जाएगा । प्रत्युत्तर साक्ष्य का मौलिक टुकड़ा नहीं है । तदुपरि, दंड संहिता की धारा 199 परिवाद के अभिकथनों पर लागू नहीं होता है । ऐसा कोई अभिकथन नहीं किया गया है कि ऐसा कोई कथन प्रत्युत्तर में किया गया है जिसे किसी भी व्यक्ति द्वारा इस्तेमाल में लिया गया हो, न्यूनाधिक रूप से, याची द्वारा उसका प्रयोग किया गया हो ।

बहरहाल, अभिवचन में प्रकट प्रकथन को घोषणा के रूप में उस पर विचार नहीं किया जा सकता । इसलिए, दंड संहिता की धारा 200 के अधीन अपराध के लिए अभियोजन चलाने हेतु अनुज्ञा नहीं दी जा सकती ।

7. याची के काउंसेल ने यह भी निवेदन किया है कि परिवादी की शिकायत केवल यह है कि उसे कोषाध्यक्ष के पद से निकाला गया था ।

8. परिवादी से उक्त दलील का भी समर्थन होता है और उक्त शिकायत को छोड़कर परिवादी के लिए इस परिवाद को फाइल करने का कोई कारण नहीं हो सकता, जो याची के विरुद्ध किसी भी अपराध को प्रकट नहीं करता है । करों की अदायगी न करने के बारे में परिवादी को कोई वैयक्तिक शिकायत नहीं हो सकती है । इससे केवल यह पता चलता है कि परिवादी याची को परेशान करने का बहाना तलाश कर रहा था और इसलिए यह परिवाद फाइल किया गया । इस कार्यवाही को जारी रखना विधि की प्रक्रिया का केवल दुरुपयोग करना होगा ।

उपरोक्त मताभिव्यक्ति पर विचार करते हुए दांडिक याचिका मंजूर की जाती है और तृतीय अपर न्यायिक प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट, राजामुंदरी की फाइल पर 2011 के सी. सी. सं. 14 में कार्यवाही को एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है । इस क्रम पर यदि कोई प्रकीर्ण याचिकाएं लंबित हैं तो उनका भी निपटारा किया जाता है ।

याचिका मंजूर की गई ।

आर्य

कृष्ण कुमारी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

तारीख 11 अक्तूबर, 2017

न्यायमूर्ति शैलेन्द्र कुमार अग्रवाल

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 156(3) – मामले का रजिस्ट्रेशन – रजिस्ट्रेशन के लिए आवेदन – आवेदन केवल मामले के रजिस्ट्रेशन और अन्वेषण के लिए आदेश पारित करने तक माना जा सकता है – परिवाद के रूप में नहीं माना जा सकता है – मजिस्ट्रेट यदि मामले में संज्ञेय अपराध बनता हो तब भी प्रत्येक मामले में रजिस्ट्रेशन और अन्वेषण करने के लिए आदेश पारित करने हेतु बाध्य नहीं है – मजिस्ट्रेट मामले में अपने न्यायिक विवेक को प्रयोग करने के लिए पूरी तरह सक्षम है ।

मामले के संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि परिवादी तारीख 12 जनवरी, 2016 को 15.30 बजे अपराह्न अपने खेत में हरी घास लेने के लिए गई थी तथा वहां पर प्रदीप पुत्र करण सिंह जो उसके गांव का निवासी है, उसके पास तमंचा (देशी बना हुआ पिस्तौल) था, उसके पास पहुंचा और उसे भयानक परिणाम घटित होने की धमकी दी और उसके साथ बलात्संग किया । उसने इसका विरोध किया, इसके पश्चात् उसने उससे विवाह करने का वचन दिया । इसके पश्चात् भी उसने उसके साथ कई बार बलात्संग किया और हमेशा विवाह करने का वचन देता था और उसे संजू पुत्र किशोर की मौन सहमति के लिए गुजरात ले गया और अंत में तारीख 15 मार्च, 2017 को दोनों गांव की ओर चले । वह अपने पिता के साथ रिपोर्ट दर्ज करने के लिए तारीख 16 मार्च, 2017 को पुलिस थाने पर गई परंतु उसकी रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी । तब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, हमीरपुर के न्यायालय में तारीख 15 मई, 2017 को यह आवेदन पेश किया गया था जिसमें प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (जिसमें इसके पश्चात् "एफआईआर" कहा गया है) दर्ज करने और मामले में अन्वेषण करने का अनुरोध किया गया है । विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने पुलिस थाने से रिपोर्ट प्राप्त करने के

पश्चात् जिसमें यह रिपोर्ट की गई थी कि पुलिस थाने में कोई मामला रजिस्ट्रीकृत नहीं किया गया है । अभिलेख तथा तथ्यों और साक्ष्य पर विचार किए बिना तारीख 18 जुलाई, 2017 को आदेश पारित करके इसे गलत रूप से परिवाद मामला माना गया था । आवेदक द्वारा आवेदन को परिवाद न माने जाने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय में प्रकीर्ण आवेदन फाइल किया गया । आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – उच्चतम न्यायालय द्वारा कई निर्णयों में की गई मताभिव्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए विधि में यह स्पष्ट है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन आवेदन प्राप्त करने पर मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान लेने के लिए तुरंत आदेश पारित कर सकता है और दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XV में अधिकथित प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए कार्यवाही कर सकता है परंतु यदि मजिस्ट्रेट का अपराध का संज्ञान लेने के लिए आशय नहीं है तो वह पुलिस द्वारा अपराध रजिस्ट्रीकरण और अन्वेषण किए जाने के लिए आदेश पारित कर सकता है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन आवेदन को प्राप्त करने पर मजिस्ट्रेट के पास दो विकल्प खुले हुए हैं । संविवाद का अंत यह होना चाहिए कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन आवेदन केवल मामले के रजिस्ट्रीकरण और अन्वेषण के लिए आदेश पारित करने के लिए आवेदन के रूप में विचार किया जा सकता है और इस पर परिवाद मामले के रूप में विचार नहीं किया जा सकता है । मजिस्ट्रेट अलग-अलग और प्रत्येक मामले में इस बात के लिए बाध्य नहीं है कि मामले के रजिस्ट्रीकरण और अन्वेषण के लिए आदेश पारित करें यदि संज्ञेय अपराध बनता है । मजिस्ट्रेट अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करने के लिए पूर्ण रूप से सक्षम है । यह गलत विचार है कि यदि कोई आवेदन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन प्रस्तुत किया गया है, तब केवल आदेश मामले के रजिस्ट्रीकरण के लिए पारित किया जा सकता है । मजिस्ट्रेट के पास दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 के अधीन विवेक प्रयोग करने की शक्ति है जिस पर प्रत्यक्ष रूप से संज्ञान लेने या आदेश पारित करने की शक्ति है कि पुलिस अन्वेषण कर सकती है और तब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन रिपोर्ट के निवेदन पर संज्ञान ले सकती है । परंतु मजिस्ट्रेट से कुछ दिशानिर्देशों के अंतर्गत कार्यवाही करने की भी आशा कि जाती है इसमें मजिस्ट्रेट के मनमाना विवेक की कोई छूट नहीं होनी चाहिए जिससे कि

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन मामले के रजिस्ट्रीकरण अन्वेषण करने के लिए आदेश पारित करें या आदेश पारित न करें । इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन पेश किए गए आवेदन का विनिश्चय करने के लिए मजिस्ट्रेट के मार्गदर्शन के लिए दिशानिर्देश अभिकथित किए थे और दिशानिर्देशों में विधि के किसी उपबंध या मजिस्ट्रेट के न्यायिक विवेक को रोकने के विरुद्ध कुछ भी नहीं कहा जा सकता है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि मजिस्ट्रेट के पास मामले के रजिस्ट्रीकरण और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3)के अधीन अन्वेषण करने के आदेश को पारित करने का विवेक है या आवेदन पर परिवाद मामले के रूप में विचार करें । उपरोक्त उल्लिखित कारणों पर मेरी यह राय है कि मजिस्ट्रेट हमेशा इस बात के लिए बाध्य नहीं है कि मामले के रजिस्ट्रीकरण के लिए और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3)के अधीन आवेदन प्राप्त करने के पश्चात् जिससे संज्ञेय अपराध प्रकट होता है, अन्वेषण के लिए आदेश पारित करें । मजिस्ट्रेट अपने विवेक का न्यायिक रूप से प्रयोग कर सकता है यदि उसकी यह राय है कि मामले की परिस्थिति में यह उचित होगा कि आवेदन को परिवाद मामले के रूप में माना जाए तब वह दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XV के अधीन उपबंधित प्रक्रिया के अनुसार कार्यवाही करेगा । वर्तमान मामले में मजिस्ट्रेट के पास पूर्णतया न्यायिक शक्ति है जिससे कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3)के अधीन आवेदन को परिवाद मामले के रूप में मानें । आक्षेपित आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं है । आवेदन गुणागुण रहित है उसे खारिज किया जाता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन पेश किया गया आवेदन खारिज किया जाता है । (पैरा 21, 22 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2008] 2008 (1) जे. आई. सी. 792 (आल) = 2008 क्रिमिनल ला जर्नल 472 (आल) : **सुखवासी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 15

[2006] (2006) 54 ए. सी. सी. 530 (एस. सी.) = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 705 : **मोहम्मद युसफ** बनाम **अफाक जहान और एक अन्य** ; 14

[2004] 2004 क्रिमिनल ला जर्नल (एन.ओ.सी.) 32 केरल :
पी. आर वेणुगोपाल बनाम **एस. एम. कृष्ण** ; 20

[2001] (2001) 44 ए. सी. सी. 670 (एच. सी.) =
2002 क्रिमिनल ला जर्नल 2907 (आल) :
गुलाब चन्द उपाध्याय बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 22

[2001] (2001) 43 ए. सी. सी. 50 (आल) =
2001 क्रिमिनल एल. जे. 3363 (आल) :
राम बाबू गुप्ता और एक अन्य बनाम
उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य ; 14

[2001] (2001) 42 ए. सी. सी. 459 (एस. सी.) :
सुरेश चंद्र जैन बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य** ; 16

[2001] (2001) 42 ए. सी. सी. 459 (एस. सी.) :
मंगल प्रसाद बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** । 17

प्रकीर्ण (दांडिक) अधिकारिता : 2017 की प्रकीर्ण दांडिक आवेदन सं. 25802.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन आवेदन ।

आवेदक की ओर से सर्वश्री बी. एन. सिंह और मनीष कुमार सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से सरकारी अधिवक्ता

न्यायमूर्ति शैलेन्द्र कुमार अग्रवाल – आवेदक की ओर से आज पूरक शपथ-पत्र फाइल किया गया जिसे अभिलेख पर लिया गया है ।

2. आवेदक के विद्वान् काउंसेल और राज्य के विद्वान् अपर सरकारी अधिवक्ता को सुना गया ।

3. आवेदक द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन वर्तमान आवेदन फाइल किया गया है जिसमें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन 2017 का दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 119/11, कृष्ण कुमारी बनाम प्रदीप और अन्य जो मामला पुलिस थाना, जारिया जिला हमीरपुर का है, वाले मामले में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट हमीरपुर द्वारा पारित तारीख 18 जुलाई, 2017 के आदेश को अभिखंडित करने के लिए अनुरोध किया गया है ।

4. मामले के संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि परिवादी तारीख 12 जनवरी, 2016 को 15.30 बजे अपराह्न अपने खेत में हरी घास लेने के लिए गई थी तथा वहां पर प्रदीप पुत्र करण सिंह जो उसके गांव का निवासी है, उसके पास तमंचा (देशी बना हुआ पिस्तौल) था, उसके पास पहुंचा और उसे भयानक परिणाम घटित होने की धमकी दी और उसके साथ बलात्संग किया । उसने इसका विरोध किया, इसके पश्चात् उसने उससे विवाह करने का वचन दिया । इसके पश्चात् भी उसने उसके साथ कई बार बलात्संग किया और हमेशा विवाह करने का वचन देता था और उसे संजू पुत्र किशोर की मौन सहमति के लिए गुजरात ले गया और अंत में तारीख 15 मार्च, 2017 को दोनों गांव की ओर चले । वह अपने पिता के साथ रिपोर्ट दर्ज करने के लिए तारीख 16 मार्च, 2017 को पुलिस थाने पर गई परंतु उसकी रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी । तब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन मुख्य न्यायिक मजिस्टेट, हमीरपुर के न्यायालय में तारीख 15 मई, 2017 को यह आवेदन पेश किया गया था जिसमें प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (जिसमें इसके पश्चात् "एफआईआर" कहा गया है) दर्ज करने और मामले में अन्वेषण करने का अनुरोध किया गया है । विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने पुलिस थाने से रिपोर्ट प्राप्त करने के पश्चात् जिसमें यह रिपोर्ट की गई थी कि पुलिस थाने में कोई मामला रजिस्ट्रीकृत नहीं किया गया है । अभिलेख तथा तथ्यों और साक्ष्य पर विचार किए बिना तारीख 18 जुलाई, 2017 को आदेश पारित करके इसे गलत रूप से परिवाद मामला माना गया था ।

5. आवेदक की ओर से यह दलील दी गई कि जब पुलिस द्वारा संज्ञेय अपराध कारित होने पर भी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी तब मजिस्ट्रेट के पास पुलिस को मामला दर्ज करने और मामले में अन्वेषण करने के लिए निदेश के अलावा आक्षेपित आदेश पारित करने की शक्ति नहीं थी और मजिस्ट्रेट के पास इसके अलावा कोई विकल्प नहीं था कि या तो वह आवेदन को अस्वीकार करें या तथ्य के बारे में परिवाद मामले के रूप में आवेदन पर विचार करें कि मामला संज्ञेय अपराध का बनता है ।

6. विद्वान् अपर सरकारी अधिवक्ता ने आवेदक के काउंसेल की दलील पर विवाद किया है और यह कथन किया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन आवेदन प्राप्त करने पर मजिस्ट्रेट के पास यह शक्ति है कि या तो अन्वेषण के लिए मामले का रजिस्ट्रीकरण करने का आदेश पारित करें या आवेदन पर परिवाद मामले के रूप में विचार करें ।

मामले के तथ्यों का परिशीलन करने पर मजिस्ट्रेट की यह राय थी कि मामले की परिस्थितियों में यह उचित होगा कि आवेदन पर परिवाद मामले के रूप में विचार किया जाए और अध्याय XV में यथाउपबंधित के रूप में जांच करने के लिए अग्रसर हुआ जाए जिसके द्वारा आवेदक को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के अधीन साक्ष्य अभिलिखित करने के लिए हाजिर होने का निदेश दिया गया था ।

7. मैंने आवेदक के विद्वान् काउंसेल अपर सरकारी अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया तथा अभिलेख की संपूर्ण सामग्री और इस प्रश्न पर विधि का परिशीलन किया ।

8. इस मामले में मुख्य प्रश्न जिसका विनिश्चय किया जाना है यह है कि क्या मजिस्ट्रेट दंड प्रक्रिया की धारा 156(3) के अधीन आवेदन प्राप्त करने पर मामले में अन्वेषण करने के लिए आदेश पारित करने हेतु बाध्य है, यदि कोई संज्ञेय अपराध बनता है या तब क्या मजिस्ट्रेट के पास अपने विवेक को लागू करने की भी शक्ति है और आवेदन को अस्वीकार करने या परिवाद के रूप में आवेदन पर विचार करने के लिए आदेश करने की शक्ति है ।

9. यहां पर यह उल्लेख करने के लिए इस संदर्भ को अस्वीकार नहीं किया जाएगा कि यह विधि थी और हमेशा रहेगी यदि कोई संज्ञेय अपराध बनता है तब पुलिस प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने के लिए बाध्य है । ऐसी दशा में पुलिस यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज नहीं करती है तब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अधीन यह उपबंध है कि पुलिस अधीक्षक को आवेदन भेजें जो प्रथम इत्तिला दर्ज करने के लिए निदेश देगा यदि संज्ञेय अपराध प्रकट होता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154(3) में यह उल्लिखित है कि कोई व्यक्ति पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा उपधारा (1) में निर्दिष्ट सूचना को अभिलिखित करने से इनकार करने पर व्यथित हुआ है तब ऐसा व्यक्ति ऐसी सूचना के सार को लिखित में भेजेगा और ऐसी सूचना संबंधित पुलिस अधीक्षक को डाक से भेजी जाएगी । यदि पुलिस अधीक्षक का यह समाधान होता है कि संज्ञेय अपराध के कारित होने की ऐसी सूचना मिलने पर या तो वह स्वयं मामले का अन्वेषण "करेगा" या यह निदेश देगा कि अपने अधीनस्थ कोई पुलिस अधिकारी उस मामले का अन्वेषण करेगा जैसा कि संहिता द्वारा उपबंधित किया गया है और ऐसा अधिकारी के पास उस अपराध के संबंध में पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी की सभी शक्तियां होंगी ।

10. दूसरे दृष्टिकोण से भी मामले को देखा जा सकता है, और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154(3) में जहां पुलिस अधीक्षक को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने के लिए प्राधिकार दिया गया है उसमें "करेगा" शब्द प्रयुक्त किया गया है । इस मामले में, आवेदक ने कहीं भी यह नहीं बताया है जब संबंधित पुलिस ने उसकी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को दर्ज करने से इनकार किया है तब उसने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154(3) की अध्यपेक्षा का अनुपालन किया है ।

11. जहां तक मामले में अन्वेषण किए जाने की बात है उसमें विधि में यह स्पष्ट है कि जब कभी संबंधित मामले में संज्ञेय अपराध बनता है और यदि पुलिस अन्वेषण करने के लिए मामले को दर्ज करने में विफल होती है तब व्यथित व्यक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 की उपधारा 3 के अधीन मजिस्ट्रेट के पास समावेदन कर सकता है और इस बात का दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 में उपबंध किया गया है

> "156. संज्ञेय मामलों का अन्वेषण करने की पुलिस अधिकारी की शक्ति – (1) कोई पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी ऐसे संज्ञेय मामले का अन्वेषण कर सकता है, जिसकी जांच या विचारण करने की शक्ति उस थाने की सीमाओं के अंदर के स्थानीय क्षेत्र पर अधिकारिता रखने वाले न्यायालय को अध्याय XIII के उपबंधों के अधीन है ।
>
> (2) ऐसे किसी मामले में पुलिस अधिकारी की किसी कार्यवाही को किसी भी प्रक्रम में इस आधार पर प्रश्नगत न किया जाएगा कि वह मामला ऐसा था जिसमें ऐसा अधिकारी इस धारा के अधीन अन्वेषण करने के लिए सशक्त न था ।
>
> (3) धारा 190 के अधीन सशक्त किया गया कोई मजिस्ट्रेट पूर्वोक्त प्रकार के अन्वेषण का आदेश कर सकता है ।"

12. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) में "हो सकता है" शब्द प्रयुक्त किया गया है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 (3) "होगा" शब्द का प्रयोग किया गया है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) में "हो सकता है" शब्द का प्रयोग से विधायन का स्पष्ट आशय प्रकट होता है । यदि विधान-मंडल मजिस्ट्रेट के लिए कोई विकल्प देने का आशय रखता है तब "होगा" शब्द का प्रयोग किया जा सकता है । जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 (3) में किया गया है जिसकी वजह हो सकता है

शब्द का प्रयोग किया गया है इसलिए यह अति महत्वपूर्ण है जिससे अति स्पष्ट संकेत मिलता है कि मजिस्ट्रेट के पास मामले में अपना विवेक है जो समुचित मामलों में रजिस्ट्रेशन के आदेश से इनकार कर सकता है ।

13. यहां पर यह उल्लेख किए जाने के लिए इस बात को बाहर नहीं किया जाएगा यदि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के उपबंध को अत्यधिक सुस्पष्ट रीति में प्रारूप बनाया गया है तब ऐसा संविवाद उद्भूत नहीं होता है । यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि मजिस्ट्रेट अपने विवेक से प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रजिस्ट्रेशन का निदेश दे सकता है या यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि उसे समुचित मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रेशन के लिए निदेश देना चाहिए । फ्रांसिस बिन्नीओम कोयलेट के विवेक में यह बात प्रकट हुई है ;

मैं संसदीय ड्राफ्टमैन हूं । मैंने देसी विधि और आधे मुकदमों को कम्पोज किया है । मैं निस्संदेह इस कारण पर विचार करता हूं ।

14. अब यह विनिश्चय करना तात्विक होगा कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन आवेदन को किसी प्रक्रिया के प्रयोजन के लिए परिवाद के रूप में माना जा सकता है जैसा कि अध्याय XV में उपबंधित किया गया है या आवेदक यह अभिकथन करने के लिए स्वतंत्र है यदि धारा 156(3) के अधीन कोई आवेदन पेश किया जाता है तब मजिस्ट्रेट मामले के रजिस्ट्रेशन के लिए और अन्वेषण के लिए आदेश पारित किया जाना चाहिए जब संज्ञेय अपराध का मामला बनता हो और विशेष रूप से जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन आवेदन को परिवाद मामले के रूप में माने जाने के लिए कोई प्रार्थना नहीं की गई है परिवाद प्रारूप में फाइल नहीं किया गया है तब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन आवेदन को परिवाद के रूप में नहीं माना जा सकता । मैं इस स्थिति से असहमत हूं । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन आवेदन को परिवाद के रूप में माना जा सकता है जैसा कि **मोहम्मद युसफ** बनाम **अफाक जहान और एक अन्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है । इस संदर्भ में इस न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ का विनिश्चय भी सुसंगत है । **राम बाबू गुप्ता और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में इस

---

[1] (2006) 54 ए. सी. सी. 530 (एस. सी.) = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 705.
[2] (2001) 43 ए. सी. सी. 50 (आल) = 2001 क्रिमिनल ला जर्नल 3363 (आल).

न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने यह अधिकथित किया है कि मजिस्ट्रेट किसी मामले को रजिस्ट्रीकृत करने और उस पर अन्वेषण करने के लिए पुलिस को निदेश दे सकता है या वह परिवाद मामले के रूप में उस पर विचार कर सकता है तथा संहिता के अध्याय XV में अनुध्यात मामले में कार्यवाही करेगा । उसे अपने न्यायिक विवेक को लागू करना चाहिए । मजिस्ट्रेट यदि संज्ञान लेता है तो संहिता के अध्याय XV में उपबंधित प्रक्रिया का अनुसरण करने के लिए अग्रसर हो सकता है । मजिस्ट्रेट या तो धारा 190 के अधीन संज्ञान ले सकता है या धारा 156(3) के अधीन अन्वेषण के लिए पुलिस को परिवाद भेज सकता है ।

15. **सुखवासी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि मजिस्ट्रेट सभी मामलों में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रजिस्ट्रेशन के लिए आदेश करने हेतु बाध्य नहीं है जहां संज्ञेय अपराध प्रकट किया गया हो वहां पर मजिस्ट्रेट के पास यह प्राधिकार है कि इसे परिवाद के रूप में मानें ।

16. **सुरेश चंद्र जैन** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य**[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय से यह भी स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट के पास यह प्राधिकार है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन किसी आवेदन को परिवाद के रूप में मानें ।

17. आवेदक के विद्वान् काउंसेल ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन पेश किए गए आवेदन 2017 का संख्या 26046, **मंगल प्रसाद** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[3] में तारीख 4 अक्तूबर, 2017 को पारित इस न्यायालय के आदेश को उद्धृत किया है जिसके द्वारा विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट का आदेश जिसमें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन परिवादी द्वारा पेश किए गए आवेदन को परिवाद के रूप में माना और उसे अभिखंडित कर दिया और उसे समुचित आदेश पारित करने के लिए निदेश दिया गया था ।

18. मैंने तारीख 4 अक्तूबर, 2017 के आदेश का परिशीलन किया जैसा कि उत्कथित है । क्योंकि प्रत्येक मामले में हमेशा दूसरे से अलग भिन्न तथ्य होते हैं और प्रत्येक मामले का स्वयं के गुणागुण पर महत्व होता

---

[1] 2008 (1) जे. आई. सी. 792 (आल) = 2008 क्रिमिनल ला जर्नल 472 (आल).
[2] (2001) 42 ए. सी. सी. 459 (एस. सी.).
[3] (2001) 42 ए. सी. सी. 459 (एस. सी.).

है । उपरोक्त मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि संबंधित मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन आवेदन का निपटारा करने के लिए अपने विवेक का प्रयोग किया था जहां उपलब्ध सूचना की विश्वसनीयता या न्याय के हित के महत्व के बारे में, सीधे प्रत्यक्ष अन्वेषण पर समुचित रूप से विचार किया गया था, ऐसे मामले जहां मजिस्ट्रेट संज्ञान लेता है और मामलों में कार्यवाही को जारी करना स्थगित करता है, ऐसे मामले है जहां मजिस्ट्रेट को यह भी निर्धारण करना चाहिए "कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार विद्यमान है ।"

19. उस मामले में अपराध के बारे में संज्ञेय अपराध होना कहा गया था और मजिस्ट्रेट ने कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार की विद्यमानता का अवधारण नहीं किया था क्योंकि परिवाद में स्वतः प्रथमदृष्ट्या पर्याप्त तात्विक तथ्य थे, इसलिए मजिस्ट्रेट को मामले के रजिस्ट्रीकरण तथा उस पर अन्वेषण करने के लिए पुलिस को भेजने हेतु निदेशित किया गया था । इस मामले में प्रथमदृष्ट्या अभिलेख पर कोई अन्य संपुष्ट तात्विक तथ्य नहीं है, मजिस्ट्रेट को भी तो यह अवधारण करना चाहिए "कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार विद्यमान है ।" इसलिए, आवेदक 2017 के आवेदन सं. 26046 में न्यायालय द्वारा तारीख 4 अक्तूबर, 2017 को पारित आदेश का फायदा नहीं ले सकता ।

20. अन्वेषण के लिए मामले को निर्दिष्ट करने हेतु भी न्यायालय को अपना विवेक का प्रयोग करना चाहिए, इस बारे में स्वयं यह समाधान निकालना चाहिए कि क्या परिवाद में पर्याप्त तात्विक तथ्य है जिससे कि अभिकथित अपराध गठित होता हों । सभी मामलों में यह आज्ञापक नहीं है कि पर्याप्त तात्विक तथ्यों के न होते हुए भी बिना सोचे समझे अपराध के अन्वेषण के लिए निदेश करें "**पी. आर. वेणुगोपाल** बनाम **एस. एम. कृष्ण**[1] वाला मामला देखिए ।"

21. उच्चतम न्यायालय द्वारा कई निर्णयों में की गई मताभिव्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए विधि में यह स्पष्ट है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन आवेदन प्राप्त करने पर मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान लेने के लिए तुरंत आदेश पारित कर सकता है और दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XV में अधिकथित प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए कार्यवाही कर सकता है परंतु यदि मजिस्ट्रेट का अपराध का संज्ञान लेने के

---

[1] 2004 क्रिमिनल ला जर्नल (एन. ओ. सी.) 32 केरल.

लिए आशय नहीं है तो वह पुलिस द्वारा अपराध रजिस्ट्रीकरण और अन्वेषण किए जाने के लिए आदेश पारित कर सकता है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन आवेदन को प्राप्त करने पर मजिस्ट्रेट के पास दो विकल्प खुले हुए हैं ।

22. संविवाद का अंत यह होना चाहिए कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन आवेदन केवल मामले के रजिस्ट्रीकरण और अन्वेषण के लिए आदेश पारित करने के लिए आवेदन के रूप में विचार किया जा सकता है और इस पर परिवाद मामले के रूप में विचार नहीं किया जा सकता है । मजिस्ट्रेट अलग-अलग और प्रत्येक मामले में इस बात के लिए बाध्य नहीं है कि मामले के रजिस्ट्रीकरण और अन्वेषण के लिए आदेश पारित करें यदि संज्ञेय अपराध बनता है । मजिस्ट्रेट अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करने के लिए पूर्ण रूप से सक्षम है । यह गलत विचार है कि यदि कोई आवेदन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन प्रस्तुत किया गया है, तब केवल आदेश मामले के रजिस्ट्रीकरण के लिए पारित किया जा सकता है । मजिस्ट्रेट के पास दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 के अधीन विवेक प्रयोग करने की शक्ति है जिस पर प्रत्यक्ष रूप से संज्ञान लेने या आदेश पारित करने की शक्ति है कि पुलिस अन्वेषण कर सकती है और तब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन रिपोर्ट के निवेदन पर संज्ञान ले सकती है । परंतु मजिस्ट्रेट से कुछ दिशानिर्देशों के अंतर्गत कार्यवाही करने की भी आशा कि जाती है इसमें मजिस्ट्रेट के मनमाना विवेक की कोई छूट नहीं होनी चाहिए जिससे कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन मामले के रजिस्ट्रीकरण अन्वेषण करने के लिए आदेश पारित करें या आदेश पारित न करें । **गुलाब चन्द उपाध्याय** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन पेश किए गए आवेदन का विनिश्चय करने के लिए मजिस्ट्रेट के मार्गदर्शन के लिए दिशानिर्देश अभिकथित किए थे और दिशानिर्देशों में विधि के किसी उपबंध या मजिस्ट्रेट के न्यायिक विवेक को रोकने के विरुद्ध कुछ भी नहीं कहा जा सकता है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि मजिस्ट्रेट के पास मामले के रजिस्ट्रीकरण और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन अन्वेषण करने के आदेश को पारित करने का विवेक है या आवेदन पर परिवाद मामले के रूप में विचार करें ।

---

[1] (2001) 44 ए. सी. सी. 670 (एच. सी.) = 2002 क्रिमिनल ला जर्नल 2907 (आल).

23. उपरोक्त उल्लिखित कारणों पर मेरी यह राय है कि मजिस्ट्रेट हमेशा इस बात के लिए बाध्य नहीं है कि मामले के रजिस्ट्रीकरण के लिए और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन आवेदन प्राप्त करने के पश्चात् जिससे संज्ञेय अपराध प्रकट होता है, अन्वेषण के लिए आदेश पारित करें । मजिस्ट्रेट अपने विवेक का न्यायिक रूप से प्रयोग कर सकता है यदि उसकी यह राय है कि मामले की परिस्थिति में यह उचित होगा कि आवेदन को परिवाद मामले के रूप में माना जाए तब वह दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XV के अधीन उपबंधित प्रक्रिया के अनुसार कार्यवाही करेगा । वर्तमान मामले में मजिस्ट्रेट के पास पूर्णतया न्यायिक शक्ति है जिससे कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन आवेदन को परिवाद मामले के रूप में मानें । आक्षेपित आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं है । आवेदन गुणागण रहित है उसे खारिज किया जाता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन पेश किया गया आवेदन खारिज किया जाता है ।

24. इस न्यायालय ने मामले के गुणों पर विचार नहीं किया है । विद्वान् मजिस्ट्रेट ऊपर अभिव्यक्त किसी मत के प्रतिकूल नहीं जाएगा । यहां पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के निर्देश में अभिव्यक्त किए गए मत मजिस्ट्रेट के न्यायिक विवेक के बारे में ही है ।

आवेदन खारिज किया गया ।

आर्य

रशीद खान और एक अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य

तारीख 1 फरवरी, 2018

न्यायमूर्ति बालकृष्णन नारायण

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 401(2) – पुनरीक्षण – ग्रहण किए जाने योग्य अभियुक्त ने दंड संहिता की धारा 153क के अधीन संज्ञान लेने के आदेश को चुनौती दिया जाना – इत्तिलाकर्ता द्वारा यह अभिवाक् किया जाना कि उसे पुनरीक्षण में सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया जाना – संहिता की धारा 401(2) में प्रकट "कोई अन्य व्यक्ति" शब्दों में इत्तिलाकर्ता/परिवादी सम्मिलित नहीं होता है – पुनरीक्षण में अभियुक्त को सुनवाई का अवसर दिया जाना आवश्यक नहीं है ।

इस मामले के संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि आवेदक सं. 1 रशीद खान ने यह अभिकथन करते हुए तारीख 27 जनवरी, 2007 को लगभग 20.45 बजे पुलिस थाना कोतवाली, जिला गोरखपुर में लिखित रिपोर्ट दी कि तारीख 27 जनवरी, 2007 को लगभग 5.00 बजे पूर्वाह्न (सातवीं मोहरम) के अवसर पर सह अभियुक्त आदित्य नाथ हिन्दू संगठन के सदस्य, हिन्दू वाहिनी, ट्रेडर्स एण्ड बिजनेस ने श्याम ट्रेडर्स की दुकान के सामने एकत्र होना प्रारंभ कर दिया था और कुछ ही क्षण में हजारों व्यक्ति वहां पर इकट्ठा हो गए उन्होंने बहुसंख्यक समुदाय के सदस्यों को नारे देकर प्रबोधित किया कि अल्पसंख्यक समुदाय की सदस्यों की संपत्ति और मकानों पर लूटपाट करें और उनकी हत्या करें और उपरोक्त नारों के उत्तर में बहुत बड़ी संख्या में भीड़ लगभग 10.00 बजे पूर्वाह्न कराम स्थान पर घुस गई और जब यह उद्घोषणा की गई कि बाबा शीघ्र पहुंचने वाले हैं तब हिन्दू संगठन के सदस्य इतने उत्तेजित हो गए कि वे जोर-जोर से नारे बाजी करने लगे जिससे मुस्लिम इलाकों के निवासियों में उन्माद उत्पन्न हो गया और योगी जी के पहुंचने पर मुकेश खेमका, भगवती जालान, राम अवतार जालान और दयाशंकर दूबे ने आस्ताने को गिरा दिया तथा उसमें आग लगा दी और धार्मिक पुस्तकों को नुकसान पहुंचाया तथा इमाम चौक

पर विनिष्टकारी क्रियाकलापों में अन्तर्वलित हो गए । यह भी अभिकथन किया गया कि पूर्वोक्त घटना में हर्षवर्धन सिंह निवासी कोहनी पुर, अशोक शुक्ला निवासी विलान्दर पुर और राम लक्ष्मण निवासी बांस गांव ने सक्रिय भूमिका निभाई थी तथा लगभग 5,000/- रुपए की राशि जिसे इमाम चौक के चारा चांदी पंच में चांदगोलक में रखा गया था उसे लूट लिया गया था । ज्येष्ठ पुलिस अधिकारियों द्वारा उक्त घटना को देखा गया था । जिन्होंने हवा में लगभग 100 बार गोलियां चलाई थीं । पूर्वोक्त घटना के परिणमस्वरूप क्षेत्र में आतंक उन्माद फैल गया था । लोगों ने इधर-उधर भागना शुरू कर दिया था । दुकानदारों ने अपनी-अपनी दुकानों के शटर बंद कर दिए थे तथा क्षेत्र के चारों ओर असुरक्षा का माहौल फैल गया था जिस वजह से उस स्थान की शांति भंग हो गई थी । पूर्वोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लिखी गई थी जिसकी प्रति इस आवेदन के साथ शपथपत्र पर उपाबंध-2 के रूप में उपाबद्ध की गई है जिसे विरोधी पक्षकार सं. 2 और सात अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध पुलिस थाना कोतवाली जिला गोरखपुर पर दंड संहिता की धारा 147, 295, 297, 436, 506 और 153क के अधीन 2007 का मामला अपराध सं. 43 रजिस्टर्ड किया गया था । अन्वेषण अभिकरण ने अन्वेषण के दौरान यह पाया कि अन्वेषण के दौरान एकत्रित की गई सामग्री के आधार पर और अन्य अपराधों को जोड़ते हुए दंड संहिता की धारा 153क के अधीन अपराध भी अभियुक्त के विरुद्ध बनता है । तथापि अन्वेषण पूरा करने के पश्चात् उन्होंने इस टिप्पण के साथ दंड संहिता की धारा 147, 295, 297, 436 और 506 के अधीन सभी अभियुक्तों के विरुद्ध तारीख 14 जून, 2007 को आरोप पत्र फाइल किया कि यद्यपि धारा 153क के अधीन अपराध भी बनता है परन्तु ऊपर उल्लिखित धारा के अधीन आरोप पत्र उसके द्वारा फाइल नहीं किया गया था क्योंकि दंड संहिता की धारा 153क अधीन अभियुक्तों को अभियोजित करने के लिए राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी आज्ञापक थी और पूर्वोक्त धारा के अधीन अभियुक्त के विरुद्ध आरोप पत्र अध्यपेक्षित मंजूरी लेने के पश्चात् फाइल की जाएगी । पूर्वोक्त आरोप पत्र पर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गोरखपुर ने उसी तारीख को संज्ञान लिया । राज्य सरकार द्वारा तारीख 23 जनवरी, 2009 को पत्र सं. 441/6-पी. यू. 14.908 ए. बी. एच. आई. 07 (इस आवेदन के साथ शपथपत्र उपाबंध-11 जिसे उत्तर प्रदेश सरकार के गृह विभाग द्वारा जारी किया गया, मंजूरी दिया जाना कहा गया है जिस पर अन्वेषक अधिकारी द्वारा तारीख 28 नवंबर, 2008 को केस डायरी के पर्चा

पर टिप्पण किया गया था । मंजूरी पत्र प्राप्त करने के पश्चात् अन्वेषण अधिकारी ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट गोरखपुर के समक्ष तारीख 28 नवंबर, 2009 को दंड संहिता की धारा 153क के अधीन विरोधी पक्षकार सं. 2 और अन्य सह अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया जिन्होंने विरोधी पक्षकार सं. 2 और अन्य सह अभियुक्तों के विरुद्ध तारीख 22 दिसंबर, 2009 को पूर्वोक्त अपराध के बारे में संज्ञान लिया । तारीख 14 जून, 2007 और 22 दिसंबर, 2009 के आदेशों को विरोधी पक्षकार सं. 2 द्वारा सेशन न्यायाधीश गोरखपुर के समक्ष पूर्वोक्त आदेशों के विरुद्ध पुनरीक्षण फाइल करने मे विलंब की माफी के लिए आवेदन के साथ दांडिक पुनरीक्षण फाइल करके उन आदेशों को चुनौती दी गई थी । तारीख 15 नवंबर, 2014 के आदेश द्वारा विलंब माफी के लिए आवेदन को मंजूर किया गया था । इसके पश्चात् पूर्वोक्त दांडिक पुनरीक्षण में 2014 के नियमित सं. 558 आबंटित किया गया था और अपर सेशन न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम गोरखपुर के समक्ष मामले को निपटारे के लिए अंतरित कर दिया गया था । आवेदक रशीद खान और सैय्यद वाकरर द्वारा अपर सेशन न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम) न्यायालय सं. 2 गोरखपुर के पारित आक्षेपित आदेश को अभिखंडित करने के लिए दं. प्र. सं. की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय में आवेदन फाइल किया । आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – ऊपरगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए और इस मुद्दे पर सुस्थिर विधि का परिशीलन करने पर यह अनुसरण किया गया कि उसी किस्म की अभिव्यक्ति संरचना के सिद्धांत के अर्थ प्रकट करता है जिसके द्वारा संविधि में प्रकट शब्द जो अत्यधिक व्यापक हैं परन्तु पाठ के अन्तर्गत अत्यधिक सीमित शब्दों में सहबद्ध किए गए हैं, उनके प्रभाव से निर्बंधित संक्रिया वर्णित होती है और जो एक वर्ग के मामलों में सीमित हैं यदि कोई सूची या कुटुंब का वर्ग जिसका शब्द में वर्णन किया गया है और उनका व्यापक रूप से अनुसरण किया गया है या उन शब्दों को हटा दिया गया है तब मौखिक संदर्भ और पूर्ववर्ती शब्दों का भाषा विषयक प्रभाव पूर्ववर्ती शब्दों के क्षेत्र को सीमित करता है या उनके अर्थ को निर्बंधित करने की अभिव्यक्ति को प्रकट करता है तब ऐसा अति संवेदनशील मामला होगा जिससे कि वे एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । यदि कोई वर्ग नहीं पाया

जा सका है तो किसी किस्म का नियम लागू नहीं होता है और ऐसा व्यापक अर्थ उन्होंने जैसा कि पश्चात्वर्ती शब्दों में "स्वीकार किया जा सका" है ऐसे शब्द अनुकूल होंगे । अधोरेखांकित सिद्धांत जिसका कानूनी अर्थ में दृष्टिकोण अपनाया जाता है यह है कि पश्चात्वर्ती साधारण शब्दों से कुछ आकस्मिक लोपों के विरुद्ध रक्षोपाय के लिए आशयित है कि जो पूर्ववर्ती उल्लिखित प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं न कि भिन्न-भिन्न किस्म के उद्देश्यों की सीमा तक आशयित नहीं है । यह अवधारणा और उनकी प्रवर्तनशीलता तब तक है जब तक कि कोई प्रतिकूल संकेत न मिलता हो । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 की उपधारा 2 का स्पष्ट रूप से परिशीलन करने पर यह उपदर्शित होता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 की उपधारा 2 में प्रकट कोई अन्य व्यक्ति शब्द "अभियुक्त" शब्द से पूर्व प्रकट हुआ है । पूर्ववर्ती शब्द अभियुक्त एक विशिष्ट वर्ग अर्थात् अभियुक्त का प्रतिनिधित्व करता है और इस प्रकार, यह उपधारणा प्रकट होती है कि कोई अन्य व्यक्ति पश्चात्वर्ती साधारण शब्द में केवल अभियुक्त के प्रवर्ग से संबंधित व्यक्ति सम्मिलित होंगे और यह नहीं कहा जा सकता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 की उपधारा 2 में प्रयुक्त "अभियुक्त" विशिष्ट शब्द में कोई वर्ग नहीं पाया जा सकता और विनिर्दिष्ट शब्द उस वर्ग को समाप्त कर देता है, इसलिए उसी किस्म का सिद्धांत पूरे बल के साथ लागू होगा और सुरक्षित रूप से यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि विधान-मंडल का ऐसा कोई आशय नहीं था कि किसी अन्य व्यक्ति साधारण शब्द में इत्तिलाकर्ता और परिवादी को सम्मिलित करें । जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 की उपधारा 2 में उल्लिखित है जो "अभियुक्त" विनिर्दिष्ट शब्द से पूर्व का है । इस प्रकार आक्षेपित आदेश के बारे में पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा आवेदकों को सुनवाई का अवसर दिए जाने में विफल होने पर दूषित होना नहीं कहा जा सकता है । आक्षेपित आदेश को चुनौती देने के दूसरे आधार पर विचार करते हुए मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि इसमें कोई सार नहीं है । पुनरीक्षण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 91 के अधीन अपने समक्ष विरोधी पक्षकार सं. 2 की ओर से दिए गए आवेदन 16ख को मंजूर करते हुए मुख्य सचिव उत्तर प्रदेश सरकार को यह निदेश दिया था कि आदेश को मंजूर करने वाले प्राधिकृत अधिकारियों के पदनाम को सुनिश्चित करने के लिए यू. पी. रूल्स आफ बिजनेस को उनके समक्ष पेश करें और धारा 153क के अधीन विरोधी पक्षकार सं. 2 और अन्य सह अभियुक्तों पर अभियोजन चलाने के

लिए मंजूरी का आदेश जिस पर डा. जे. बी. सिन्हा, सचिव द्वारा हस्ताक्षर किया गया था जिन्हें राज्यपाल द्वारा प्राधिकृत किया जाना प्रकट हुआ है, उनकी ओर से मंजूरी आदेश पर हस्ताक्षर नहीं हुए हैं क्योंकि पुनरीक्षण न्यायालय ने यह उल्लेख किया है कि मंजूरी आदेश यद्यपि डा. जे. बी. सिन्हा द्वारा उस पर हस्ताक्षर किया जाना आशयित था परन्तु आदेश में खाली जगह छोड़ी गई थी और आदेश पर किसी हस्ताक्षर करने वाले प्राधिकारी के हस्ताक्षर नहीं हुए थे और आदेश के पश्चात् तथा "आवश्यक अनुपालन और सूचना देने के लिए प्रति अग्रेषित की गई" इस शीर्षक से, राम:हित नामक अवर सचिव ने इस पर अपने हस्ताक्षर किए थे । पुनरीक्षण न्यायालय ने अपने आदेश तारीख 10 अप्रैल, 2015 में स्पष्ट रूप से यह मत व्यक्त किया है कि यह स्पष्ट है कि मंजूरी के मुख्य आदेश में किसी प्राधिकृत हस्ताक्षरित द्वारा हस्ताक्षर नहीं किया गया था, राज्यपाल के आदेश पर किसी प्राधिकृत हस्ताक्षरित प्राधिकारी द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए थे, यह मुश्किल से अभियोजन पक्ष के लिए मंजूरी की शब्दावली के अन्तर्गत आ सकता है । इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि अपर सेशन न्यायाधीश गोरखपुर द्वारा तारीख 10 अप्रैल, 2015 को आदेश पारित किया गया था जिसकी प्रति अभिलेख पर लाई गई है क्योंकि उपाबंध एस.ए. 4 से पूरक शपथपत्र जिसमें अन्य दस्तावेज को भी एकत्रित किया गया है, अपनी वैधानिकता पर अंतिम हो गए हैं जिन्हें किसी वरिष्ठ न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई थी । अभिलेख पर लाई गई सामग्री से यह भी स्पष्ट होता है कि तारीख 10 अप्रैल, 2015 का आदेश का अनुपालन नहीं किया गया था, परिणामस्वरूप विरोधी पक्षकार सं. 2 को तारीख 4 अप्रैल, 2015 और 14 जुलाई, 2015 को पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष दो आवेदन 24ख और 18ख पेश करने के लिए बाध्य किया गया था जिनका पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तारीख 17 मार्च, 2016 को आदेश पारित करके निपटारा कर दिया गया था । तारीख 17 मार्च, 2016 के आदेश का परिशीलन करने पर यह उपदर्शित होता है कि पुनरीक्षण न्यायालय ने आवेदन 24ख और 16ख को अस्वीकार करते हुए उक्त आदेश में इस प्रभाव की मताभिव्यक्ति की थी कि राज्यपाल से उत्तर प्रदेश प्रशासन द्वारा अभियोजन चलाने के लिए पूर्व मंजूरी प्राप्त की गई थी और पूर्वोक्त मंजूरी आदेश की प्रति संबंधित पुलिस थाने को भेजी गई थी, जिस पर, अवर सचिव के हस्ताक्षर थे और जिसका परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हुआ था कि पूर्वोक्त मंजूरी की प्रति डी. आई. जी. गोरखपुर रेंज को भेजी गई थी तथा मंजूरी आदेश

की चार प्रतियां अभिलेख पर रखी गई थी । तथापि, मैंने तारीख 17 मार्च, 2016 के आदेश में ऐसी कोई बात नहीं पाई है जिससे यह उपदर्शित होता हो कि पुनरीक्षण न्यायालय ने या तो इस आधार की परीक्षा की थी जिस पर विरोधी पक्षकार सं. 2 ने आदेश की विधिमान्यता को चुनौती दी थी जिसके द्वारा विरोधी पक्षकार सं. 2 अन्य सह अभियुक्तों का अभियोजन चलाने मंजूरी राज्यपाल द्वारा मंजूर की गई थी या इसे आधारहीन पाया गया था या नियमों के सुसंगत सार की फोटो प्रतियों को राज्य सरकार द्वारा तारीख 10 अप्रैल, 2015 के पुनरीक्षण न्यायालय के पूर्ववर्ती आदेश के अनुपालन में पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष पेश किया गया था । आक्षेपित आदेश को चुनौती देने का अंतिम आधार भी गुणागुण रहित है । पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण मंजूर करते हुए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को मामला प्रतिप्रेषित किया गया जिसमें कि नए सिरे से मंजूरी के आदेश की विधिमान्यता पर विरोधी पक्षकार सं. 2 के आक्षेप का विनिश्चय करें, पुनरीक्षण न्यायालय ने उसे केवल यह निदेश दिया है कि उसके आदेश में की गई मताभिव्यक्तियों के प्रकाश में मामले का विनिश्चय करे । यह नहीं कहा जा सकता है कि पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश में की गई मताभिव्यक्तियां इतनी अभिभूत थीं कि वे मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट गोरखपुर के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ती है जिससे कि स्वतंत्र विवेक का प्रयोग करके मामले का स्वच्छंद होकर विनिश्चय करे पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए आक्षेपित आदेश में कोई हस्तक्षेप किया जाना आवश्यक नहीं है । आवेदन में गुणागुण की कमी है और तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है । तथापि, पर्याप्त सावधानी बरतते हुए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट गोरखपुर को यह निदेश दिया जाता है कि विधि के अनुसरण में पूर्णतया प्रतिप्रेषित आक्षेपित आदेश के अनुसरण में नए सिरे से मामले का विनिश्चय करें, ऐसी मताभिव्यक्तियों से प्रभावित हुए बिना स्वतंत्र विवेक का प्रयोग करें जो कोई पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश में की गई हैं । (पैरा 20, 21, 27, 28, 29 और 30)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	(2009) 2 एस. सी. सी. 363 = ए. आई. आर. 2008 एस. सी. (सप्ली.) 7061 : **रघुराज सिंह रौशा** बनाम **शिव सुन्दरम प्रामोटर्स प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य** ;	11

[2001] (2001) 3 एस. सी. सी. 462 = ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 1142 : **जे. के. इन्टरनेशनल** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र, दिल्ली सरकार) और अन्य** ; 11

[1989] ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 1019 : **ए. के. सुब्बाभाई और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** ; 13

[1987] (1987) 4 एस. सी. सी. 557 : **एस. एस. मुगलांद (स्वामी)** बनाम **मेसिन्टायर ब्रादर्स कंपनी** ; 13

[1980] 1980 इलाहाबाद ला जर्नल 554 : **मैसर्स सिद्धेश्वरी कॉटन मिल्स** बनाम **भारत संघ और एक अन्य** ; 13,20

[1970] [1970] 2 एस. सी. आर. 732 = ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 65 : **यू. पी. एस. सी. बोर्ड** बनाम **हरि शंकर** ; 13

[1920] (1920) 3 के. बी. 321 : **त्रिभुवन प्रकाश नय्यर** बनाम **भारत संघ** । 13

प्रकीर्ण (दांडिक) अधिकारिता : 2017 का प्रकीर्ण आवेदन सं. 35886.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन आवेदन ।

आवेदक की ओर से सर्वश्री सय्यद अहमद फैजान और सय्यद फरमन अहमद नकवी

विरोधी पक्षकार की ओर से सरकारी अधिवक्ता

न्यायमूर्ति बालकृष्णन नारायण – दंड प्रक्रिया संहिता 482 के अधीन इस आवेदन के माध्यम से आवेदक रशीद खान और सय्यद वकर आलम ने यह अनुरोध करते हुए इस न्यायालय की अन्तर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है कि अपर सेशन न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम) न्यायालय सं. 2, गोरखपुर द्वारा पुलिस थाना कोतवाली जिला गोरखपुर में दंड संहिता की धारा 147, 295, 297, 436, 506 और 153क के अधीन 2007 के मामला अपराध सं. 43 से उद्भूत महेश खेमका बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2014 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 558 में तारीख 28 जनवरी 2017 को पारित आक्षेपित आदेश को अभिखंडित करना

चाहा गया है (इस मामले में इस आवेदन के साथ शपथपत्र उपाबंध 1 भी फाइल किया गया है) ।

2. आवेदकों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री एस. एफ. ए. नकवी जिनकी श्री एफ. हुसैन द्वारा सहायता की गई और उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से श्री राघवेन्द्र सिंह विद्वान् महाधिवक्ता जिनकी श्री अभिषेक सिंह अधिवक्ता, श्री मनीष गोयल, श्री विनोद कांत, विद्वान् महाधिवक्ता और श्री ए. के. सांघ विद्वान् अपर सरकारी अधिवक्ता द्वारा सहायता की गई, को सुना ।

3. चूंकि मामले के तथ्य विवादित नहीं हैं । उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् महाधिवक्ता श्री राघवेन्द्र सिंह ने अति स्पष्ट रूप से न्यायालय में यह कथन किया है कि उसका कोई प्रति शपथपत्र फाइल करने का प्रयोजन नहीं है और इसलिए पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल की सहमति से इस मामले का दाखिले के प्रक्रम पर अंतिम रूप से विनिश्चय किया किया जा रहा है ।

4. इस मामले के संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि आवेदक सं. 1 रशीद खान ने यह अभिकथन करते हुए तारीख 27 जनवरी, 2007 को लगभग 20.45 बजे पुलिस थाना कोतवाली, जिला गोरखपुर में लिखित रिपोर्ट दी कि तारीख 27 जनवरी, 2007 को लगभग 5.00 बजे पूर्वाह्न (सातवीं मोहरम) के अवसर पर सह अभियुक्त आदित्य नाथ हिन्दू संगठन के सदस्य, हिन्दू वाहिनी, ट्रेडर्स एण्ड बिजनेस ने श्याम ट्रेडर्स की दुकान के सामने एकत्र होना प्रारंभ कर दिया था और कुछ ही क्षण में हजारों व्यक्ति वहां पर इकट्ठा हो गए उन्होंने बहुसंख्यक समुदाय के सदस्यों को नारे देकर प्रबोधित किया कि अल्पसंख्यक समुदाय की सदस्यों की संपत्ति और मकानों पर लूटपाट करें और उनकी हत्या करें और उपरोक्त नारों के उत्तर में बहुत बड़ी संख्या में भीड़ लगभग 10.00 बजे पूर्वाह्न कराम स्थान पर घुस गई और जब यह उद्घोषणा की गई कि बाबा शीघ्र पहुंचने वाले हैं तब हिन्दू संगठन के सदस्य इतने उत्तेजित हो गए कि वे जोर-जोर से नारे बाजी करने लगे जिससे मुस्लिम इलाकों के निवासियों में उन्माद उत्पन्न हो गया और योगी जी के पहुंचने पर मुकेश खेमका, भगवती जालान, राम अवतार जालान और दयाशंकर दूबे ने आस्ताने को गिरा दिया तथा उसमें आग लगा दी और धार्मिक पुस्तकों को नुकसान पहुंचाया तथा इमाम चौक पर विनिष्टकारी क्रियाकलापों में अन्तर्वलित हो गए । यह भी अभिकथन किया गया कि पूर्वोक्त घटना में हर्षवर्धन सिंह निवासी कोहनी पुर, अशोक

शुक्ला निवासी विलान्दर पुर और राम लक्ष्मण निवासी बास गांव ने सक्रिय भूमिका निभाई थी तथा लगभग 5,000/- रुपए की राशि जिसे इमाम चौक के चारा चांदी पंच में चांदगोलक में रखा गया था उसे लूट लिया गया था । ज्येष्ठ पुलिस अधिकारियों द्वारा उक्त घटना को देखा गया था । जिन्होंने हवा में लगभग 100 बार गोलियां चलाई थीं । पूर्वोक्त घटना के परिणमस्वरूप क्षेत्र में आतंक उन्माद फैल गया था । लोगों ने इधर उधर भागना शुरू कर दिया था । दुकानदारों ने अपनी-अपनी दुकानों के शटर बंद कर दिए थे तथा क्षेत्र के चारों ओर असुरक्षा का माहौल फैल गया था जिस वजह से उस स्थान की शांति भंग हो गई थी । पूर्वोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लिखी गई थी जिसकी प्रति इस आवेदन के साथ शपथपत्र पर उपाबंध 2 के रूप में उपाबद्ध की गई है जिसे विरोधी पक्षकार सं. 2 और 7 अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध पुलिस थाना कोतवाली जिला गोरखपुर पर दंड संहिता की धारा 147, 295, 297, 436, 506 और 153क के अधीन 2007 का मामला अपराध सं. 43 रजिस्टर्ड किया गया था । अन्वेषण अभिकरण ने अन्वेषण के दौरान यह पाया कि अन्वेषण के दौरान एकत्रित की गई सामग्री के आधार पर और अन्य अपराधों को जोड़ते हुए दंड संहिता की धारा 153क के अधीन अपराध भी अभियुक्त के विरुद्ध बनता है । तथापि, अन्वेषण पूरा करने के पश्चात् उन्होंने इस टिप्पण के साथ दंड संहिता की धारा 147, 295, 297, 436 और 506 के अधीन सभी अभियुक्तों के विरुद्ध तारीख 14 जून, 2007 को आरोप पत्र फाइल किया कि यद्यपि धारा 153क के अधीन अपराध भी बनता है परन्तु ऊपर उल्लिखित धारा के अधीन आरोप पत्र उसके द्वारा फाइल नहीं किया गया था क्योंकि दंड संहिता की धारा 153क अधीन अभियुक्तों को अभियोजित करने के लिए राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी आज्ञापक थी और पूर्वोक्त धारा के अधीन अभियुक्त के विरुद्ध आरोप पत्र अध्यपेक्षित मंजूरी लेने के पश्चात् फाइल की जाएगी । पूर्वोक्त आरोप पत्र पर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गोरखपुर ने उसी तारीख को संज्ञान लिया । राज्य सरकार द्वारा तारीख 23 जनवरी, 2009 को पत्र सं. 441/6-पी. यू. 14.908 ए. बी. एच. आई. 07 (इस आवेदन के साथ शपथपत्र उपाबंध 11) जिसे उत्तर प्रदेश सरकार के गृह विभाग द्वारा जारी किया गया, मंजूरी दिया जाना कहा गया है जिस पर अन्वेषक अधिकारी द्वारा तारीख 28 नवंबर, 2008 को केस डायरी के पर्चों पर टिप्पण किया गया था । मंजूरी पत्र प्राप्त करने के पश्चात् अन्वेषण अधिकारी ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट गोरखपुर के समक्ष तारीख 28 नवंबर, 2009 को दंड संहिता की धारा 153क के अधीन विरोधी पक्षकार सं. 2

और अन्य सह अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया जिन्होंने विरोधी पक्षकार सं. 2 और अन्य सह अभियुक्तों के विरुद्ध तारीख 22 दिसंबर, 2009 को पूर्वोक्त अपराध के बारे में संज्ञान लिया ।

5. तारीख 14 जून, 2007 और 22 दिसंबर, 2009 के आदेशों को विरोधी पक्षकार सं. 2 द्वारा सेशन न्यायाधीश गोरखपुर के समक्ष पूर्वोक्त आदेशों के विरुद्ध पुनरीक्षण फाइल करने मे विलंब की माफी के लिए आवेदन के साथ दांडिक पुनरीक्षण फाइल करके उन आदेशों को चुनौती दी गई थी । तारीख 15 नवंबर, 2014 के आदेश द्वारा विलंब माफी के लिए आवेदन को मंजूर किया गया था । इसके पश्चात् पूर्वोक्त दांडिक पुनरीक्षण में 2014 के नियमित सं. 558 आबंटित किया गया था और अपर सेशन न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम गोरखपुर के समक्ष मामले को निपटारे के लिए अंतरित कर दिया गया था ।

6. अन्य आधारों से अलग आक्षेपित आदेशों को विरोधी पक्षकार सं. 2 द्वारा विशेष रूप से इस आधार पर पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष भी चुनौती दी गई कि आदेश जिसके द्वारा अभियुक्तों का अभियोजन चलाने के लिए राज्य सरकार द्वारा मंजूरी प्रदान की गई थी उसमें प्राधिकारी द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए थे जिसे माननीय राज्यपाल द्वारा प्राधिकृत किया गया था जिसमें मंजूरी आदेश पर हस्ताक्षर करना था और इसलिए दंड संहिता की धारा 153क के अधीन अपराध का मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गोरखपुर द्वारा संज्ञान लिया जाना विधि में गलत और बिना अधिकारिता के था ।

7. यह भी प्रकट हुआ है कि विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम) के समक्ष 2014 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 558 के लंबित रहने के दौरान तारीख 4 अप्रैल, 2015 को विरोधी पक्षकार सं. 2 की ओर से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 91 के अधीन एक आवेदन (16-ख) प्रस्तुत किया गया था जिसमें कारबर संबंधी उत्तर प्रदेश सरकार के उन नियमों को समन करने का निवेदन किया गया जिनके अधीन उत्तर प्रदेश के राज्यपाल की ओर से मंजूरी आदेश पर हस्ताक्षर करने के लिए प्राधिकृत अधिकारी का पदनाम सुनिश्चित किया जाता है ।

8. पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तारीख 10 अप्रैल, 2015 को आदेश पारित करके आवेदन 16-ख मंजूर किया गया था जिसके द्वारा मुख्य सचिव उत्तर प्रदेश सरकार को उ. प्र. सरकार बिजनेस को पेश करने और (इसमें इसके पश्चात् "नियम" कहा गया है) तथा स्पष्टीकरण देने के लिए

न्यायालय के समक्ष निदेश दिया गया था । नियमों को न्यायालय के समक्ष पेश किए जाने पर उनका परिशीलन करने के पश्चात् उन्हें वापस कर दिया गया था । आदेश से यह भी उपदर्शित होता है कि न्यायालय के प्रयोजन के लिए यह पर्याप्त होगा, यदि नियमों की फोटो प्रति न्यायालय के समक्ष पेश कर दी जाए । जब तारीख 10 अप्रैल, 2015 का आदेश का अनुपालन किया गया तब विरोधी पक्षकार सं. 2 द्वारा इस अनुरोध के साथ तारीख 14 जुलाई, 2015 को पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष आवेदन 18-ख प्रस्तुत किया गया था जिसमें राज्य सरकार को यह निदेश देने के लिए कहा गया कि वह अपने द्वारा तारीख 10 अप्रैल, 2015 को पारित किए गए आदेश का अनुपालन करे । तथापि, जब राज्य सरकार ने पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष उत्तर प्रदेश रूल्स ऑफ बिजनेस को पेश करने के बजाय राज्य सरकार ने दस्तावेज फाइल किए जो मामले से पूर्णतया असंबन्धित थे, तब एक अन्य आवेदन 24-ख विरोधी पक्षकार सं. 2 द्वारा तारीख 14 जुलाई, 2015 को पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष पेश किया गया था जिसमें न्यायालय की जानकारी में पूर्वोक्त तथ्य को लाने का अनुरोध करते हुए राज्य सरकार को यह निदेश दिया जाए कि वह अपने तारीख 10 अप्रैल, 2015 के आदेश का अनुपालन करे । आवेदन 18-ख और 24-ख का पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तारीख 17 मार्च, 2016 को आदेश पारित करके यह अभिनिर्धारित करते हुए निपटारा कर दिया गया था कि विरोधी पक्षकार सं. 2 द्वारा अपने आवेदन 18-ख में की गई प्रार्थना भ्रामक है ।

9. वस्तुतः पुनरीक्षण न्यायालय ने तारीख 28 जनवरी, 2017 को आक्षेपित आदेश पारित करके 2014 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 558 को मंजूर कर दिया और 2007 के मामले सं. 43 अर्थात् राज्य बनाम योगी आदित्य नाथ और अन्य वाले मामले में तारीख 14 जून, 2007 और 22 दिसंबर, 2009 के आदेशों को अपास्त किया और यह निदेश देते हुए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट गोरखपुर को इस निदेश के साथ प्रतिप्रेषित कर दिया कि संज्ञान लेने के मुद्दे पर विधि के अनुसरण में नए सिरे से आदेश पारित किया जाए ।

10. आवेदकों के विद्वान् काउंसेल श्री एस. एफ. ए. नकवी ने अन्य बातों के साथ-साथ इन आधारों पर आक्षेपित आदेश को चुनौती दी कि पुनरीक्षण न्यायालय ने नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का गंभीरता से अतिक्रमण करके आक्षेपित आदेश पारित किया है क्योंकि आक्षेपित आदेश पूरी तरह पारित करने से पूर्व न तो कोई नोटिस आवेदकों को जारी किया

गया था और न ही उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401(2) में यथा अपेक्षित सुनवाई का कोई अवसर दिया गया ; कि पुनरीक्षण न्यायालय ने तारीख 17 मार्च, 2016 के अपने आदेश का न्यायनिर्णयन किया गया कि दंड संहिता की धारा 153क अधीन विरोधी पक्षकार सं. 2 और अन्य सह युक्त अभियुक्तों का अभियोजन चलाने के लिए मंजूरी प्राप्त की गई थी जो विधिमान्य थी और उक्त आदेश अंतिम हो गया था, इसलिए पुनरीक्षण न्यायालय इस बात के लिए स्वतंत्र नहीं था कि कोई प्रतिकूल मत अपनाता जो उसके द्वारा तारीख 17 मार्च, 2016 को अपने आदेश में यह अभिनिर्धारित करते हुए अपनाया गया था और विरोधी पक्षकार सं. 2 और अन्य अभियुक्तों का अभियोजन चलाने के लिए मंजूरी का आदेश अविधिमान्य है तथा पुनरीक्षण न्यायालय ने अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए तात्विक अनियमितता बरती है ; और पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा मामले के गुणागुण पर की गई मताव्यक्तियों पर आक्षेपित आदेश इस विकल्प के साथ मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के विवेक पर नहीं छोड़ा जाता है कि अपने स्वतंत्र विवेक का प्रयोग करके नए सिरे से मामले का विनिश्चय करें और पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश मे लिए गए मत के प्रतिकूल मत व्यक्त करें ।

11. आवेदकों के विद्वान् काउंसेल ने अपने निवेदन के समर्थन में **जे. के. इन्टरनेशनल** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र, दिल्ली सरकार) और अन्य**[1] तथा **रघुराज सिंह रौशा** बनाम **शिवम सुन्दरम प्रामोटर्स प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य**[2] वाले मामलों का अवलंब लिया ।

12. इसके प्रतिकूल, उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् महाधिवक्ता श्री राघवेन्द्र सिंह ने आक्षेपित आदेश के समर्थन में अपनी दलीलें दीं । उन्होंने पुरजोर यह निवेदन किया कि न तो इत्तिला देने वाला आवेदक सं. 1 और न आवेदक जिन्होंने घटना क्षतियों के होने का दावा किया है, उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401(2) को ध्यान में रखते हुए कोई अवसर दिया जाना अपेक्षित था और आक्षेपित आदेश के बारे में पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा उन्हें कोई अवसर दिए जाने पर विफल होने पर, दूषित होगा कहा जा सकता है । यह मुद्दा अधिक समय तक अनिर्णीत नहीं रहा है और इस न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के विनिश्चयों की शृंखला द्वारा इन्हें सुस्थापित किया गया है ।

---

[1] (2001) 3 एस. सी. सी. 462 = ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 1142.

[2] (2009) 2 एस. सी. सी. 363 = ए. आई. आर. 2008 एस. सी. (सप्ली.) 7061.

13. इस संबंध में उनके द्वारा किए गए निवेदन पर उन्होंने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401(2) की ओर हमारा ध्यान दिलाया और इस उपबंध के आधार पर यह दलील दी कि दंड प्रक्रिया संहिता में ऐसा कोई उपबंध नहीं है जिसमें यह अपेक्षित हो कि पुनरीक्षण में परिवादी को नोटिस दिए जाने की ईप्सा की गई । उन्होंने यह भी निवेदन किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401(2) में प्रयुक्त "अन्य व्यक्ति" शब्द से कोई व्यक्ति जैसे अभियुक्त का होना प्रकट है और इत्तिलाकर्ता के लिए ऐसा कोई प्रश्न नहीं हो सकता कि वह उसके द्वारा प्रारंभ मामले में अपनी प्रतिरक्षा दे और उसी किस्म का जिससे यह अभिप्रेत है कि उसी प्रकार वर्तमान मामला पूर्ण बल के साथ लागू होता है । अपनी पूर्वोक्त दलील के समर्थन में उन्होंने **रणवीर सिंह (शिकायत कर्ता) मैसर्स सिद्धेश्वरी कॉटन मिल्स** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[1], **ए. के. सुब्बाभाई और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य**[2], **एस. एस. मुगलांद (स्वामी)** बनाम **मेसिन्टायर ब्रादर्स कंपनी**[3] **त्रिभुवन प्रकाश नय्यर** बनाम **भारत संघ**[4] तथा **यू. पी. एस. सी. बोर्ड** बनाम **हरि शंकर**[5] वाले मामलों का अवलंब लिया ।

14. उसने दूसरी यह दलील दी कि पुनरीक्षण न्यायालय ने अपने तारीख 17 मार्च, 2016 के आदेश में मंजूरी की विधिमान्यता को कायम रखने के किसी निष्कर्ष को भी अभिलिखित नहीं किया और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि पुनरीक्षण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालने में कोई अवैधानिकता या विधिक दुर्बलता बरती थी कि विधिमान्यता के संबंध में प्रश्न या राज्य सरकार द्वारा विरोधी पक्षकार सं. 2 और अन्य अभियुक्तों पर अभियोजन चलाने के लिए कोई मंजूरी प्रदान की जिस बात की मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट गोरखपुर द्वारा पुनर्विचार किया जाना अपेक्षित था । उन्होंने अंत में यह निवेदन किया कि पुनरीक्षण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में कोई मताभिव्यक्ति नहीं की है जो मामले के गुणागुण पर प्रकट हुआ हो या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के विवेक को प्रभावित करता हो कि अपने न्यायिक विवेक को स्वतंत्र रूप से प्रयोग करने में उस प्रश्न का विनिश्चय करें । आक्षेपित आदेश में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने की

---

[1] 1980 इलाहाबाद ला जर्नल 554.

[2] ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 1019.

[3] (1987) 4 एस. सी. सी. 557.

[4] (1920) 3 के. बी. 321.

[5] [1970] 2 एस. सी. आर. 732 = ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 65.

कोई आवश्यकता नहीं है ।

15. मैंने मौजूद पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को अति सावधानी से सुना तथा आक्षेपित आदेशों और अभिलेख पर प्रकट अन्य सामग्री तथा मेरे समक्ष अपनी-अपनी दलीलों के समर्थन में पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल के विधि रिपोर्टों का परिशीलन किया ।

16. प्रथम आधार का मूल्यांकन करने पर जिस पर आवेदकों के विद्वान् काउंसेल ने पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश को आक्षेपित किया है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401(2) को प्रस्तुत करना यहां पर लाभदायक होगा जो इस प्रकार है :–

> "401. उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण की शक्तियां – (2) इस धारा के अधीन कोई आदेश जो अभियुक्त या अन्य व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है तब तक न किया जाएगा जब तक उसे अपनी प्रतिरक्षा में या तो स्वयं या प्लीडर द्वारा सुने जाने का अवसर न मिल चुका हो ।"

17. आवेदकों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 की उपधारा 2 में "कोई अन्य व्यक्ति" शब्दों का प्रयोग इन शब्दों के पश्चात् अभियुक्त के रूप में परिवादी या इत्तिलाकर्ता को सम्मिलित करना आवश्यक है और इस प्रकार पुनरीक्षण न्यायालय के लिए यह लाजिमी है कि आक्षेपित आदेश पारित करने से पूर्व आवेदकों को सुनवाई का अवसर दिया जाए ।

18. मैं यह परीक्षा करने के लिए अग्रसर होता हूं कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 की उपधारा 2 में उल्लिखित "कोई अन्य व्यक्ति" शब्दों को सुनिश्चित करने के लिए ..... का सिद्धांत लागू होता है जैसा कि श्री राघवेन्द्र सिंह महाधिवक्ता द्वारा दलील दी गई और आवेदकों के विद्वान् काउंसेल की दलील की कायम योग्यता की परीक्षा के बारे में ।

19. मामले के पूर्वोक्त पहलू की समीक्षा करने के पूर्व फ्रेंसिस बेनियन द्वारा अपनी कानूनी संरचना में की गई मताभिव्यक्तियों का उल्लेख करना लाभदायक होगा और इसके साथ इस मुद्दे पर विधि की सुस्थिर को प्रकट करना होगा ।

फ्रांसिस बेनियन ने अपने कानूनी संरचना पर यह मत व्यक्त किया है :–

"मामले में लागू करने के लिए किसी किस्म का सिद्धांत जिससे किसी प्रवर्ग के बारे में पर्याप्त संकेत मिलता है कि जिसमें वर्ग के रूप में उचित रूप से वर्णित किया जा सकता है यद्यपि अधिनियम में इसके बारे में कुछ भी निर्दिष्ट नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त शब्दों की अपेक्षा वर्ग को संकुचित किया गया है इसके बारे में विनियमित किया जाना कहा जा सकता है । वर्ग की प्रकृति अभिव्यक्त शब्दों से विवक्षित करके एकत्र किया गया है । जिससे यह इंगित होता है ....."

[पृष्ठ 830]

"यह आवश्यक है कि यह वर्ग को विरचित करने में समर्थ हो यदि इसे विरचित नहीं किया जा सका है तो यह विद्यमान नहीं है । 'जब तक कि किसी प्रवर्ग को आप प्राप्त नहीं कर सकते' फेयरवेल एल. जे. ने यह भी कहा है कि "किसी किस्म के सिद्धांत को लागू करने की कोई गुंजाइश नहीं है ।"

[पृष्ठ 831]

एस. एस. मुगलांद (स्वामी) **बनाम** मेसिन्टायर ब्रादर्स कंपनी (1987) 4 एस. सी. सी. 557 वाले मामले में कारडे जे. ने यह कहा :

"जहां तक मैं केवल इस कसौटी पर विचार कर सकता हूं कि क्या विनिर्दिष्ट बातें जिसमें साधारण शब्द को सामान्य प्रवर्ग के अधीन रखा जा सकता है इससे मैं यह समझता हूं कि विनिर्दिष्ट बातें को सामान्य रूप से और प्रमुख लक्षणों के साथ रखा जा सकता है ।"

त्रिभुवन प्रकाश नय्यर **बनाम** भारत संघ (1920) 3 के. बी. 321 वाले मामले में न्यायालय ने यह कहा है :

"इस नियम से विनिर्दिष्ट और साधारण शब्दों के बीच असंगति से निपटने का प्रयास परिरक्षित होता है, निर्वचन के अन्य नियमों को ध्यान में रखते हुए कि कानून में सभी शब्द यथासंभव प्रभाव देते हैं कि कई कानून जिसका संपूर्ण रूप से अर्थान्वयन किया जाता है और कानून में कोई शब्द प्रकट न हो तब उसकी अनावश्यक रूप से अवधारणा की जाएगी ।"

[पृष्ठ 740]

यू. पी. एस. सी. बोर्ड बनाम हरि शंकर, ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 65 में यह मत व्यक्त किया गया था :

"..... 'उसी किस्म का' के नियम का सही क्षेत्र यह है कि सामान्य प्रकृति के शब्द जो निम्नलिखित और विनिर्दिष्ट शब्दों से उनका अर्थान्वयन किया जाता है जो सीमित हैं जिनकी एक सी प्रकृति नहीं है जो निर्दिष्ट किए गए हैं । परन्तु उन सबका एक नियम है जिन्हें सावधानी के साथ लागू किया जाना चाहिए न कि दबाव में ..... [पृष्ठ 73]"

20. **मैसर्स सिद्धेश्वरी काटन मिल्स** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[1] वाले मामले में वही मत अपनाया गया था ।

ऊपरगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए और इस मुद्दे पर सुस्थिर विधि का परिशीलन करने पर यह अनुसरण किया गया कि उसी किस्म की अभिव्यक्ति संरचना के सिद्धांत के अर्थ प्रकट करता है जिसके द्वारा संविधि में प्रकट शब्द जो अत्यधिक व्यापक हैं परन्तु पाठ के अन्तर्गत अत्यधिक सीमित शब्दों में सहबद्ध किए गए हैं, उनके प्रभाव से निर्बंधित संक्रिया वर्णित होती है और जो एक वर्ग के मामलों में सीमित हैं यदि कोई सूची या कुटुंब का वर्ग जिसका शब्द में वर्णन किया गया है और उनका व्यापक रूप से अनुसरण किया गया है या उन शब्दों को हटा दिया गया है तब मौखिक संदर्भ और पूर्ववर्ती शब्दों का भाषा विषयक प्रभाव पूर्ववर्ती शब्दों के क्षेत्र को सीमित करता है या उनके अर्थ को निर्बंधित करने की अभिव्यक्ति को प्रकट करता है तब ऐसा अति संवेदनशील मामला होगा जिससे कि वे एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । यदि कोई वर्ग नहीं पाया जा सका है तो किसी किस्म का नियम लागू नहीं होता है और ऐसा व्यापक अर्थ उन्होंने जैसा कि पश्चात्वर्ती शब्दों में "स्वीकार किया जा सका" है ऐसे शब्द अनुकूल होंगे । अधोरेखांकित सिद्धांत जिसका कानूनी अर्थ में दृष्टिकोण अपनाया जाता है यह है कि पश्चात्वर्ती साधारण शब्दों से कुछ आकस्मिक लोपों के विरुद्ध रक्षोपाय के लिए आशयित है कि जो पूर्ववर्ती उल्लिखित प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं न कि भिन्न-भिन्न किस्म के उद्देश्यों की सीमा तक आशयित नहीं है । यह एक अवधारणा है और यह तब तक लागू होगी जब तक कि कोई प्रतिकूल संकेत न मिलता हो ।

---

[1] 1980 इलाहाबाद ला जर्नल 554.

21. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 की उपधारा 2 का स्पष्ट रूप से परिशीलन करने पर यह उपदर्शित होता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 की उपधारा 2 में प्रकट कोई अन्य व्यक्ति शब्द "अभियुक्त" शब्द से पूर्व प्रकट हुआ है । पूर्ववर्ती शब्द अभियुक्त एक विशिष्ट वर्ग अर्थात् अभियुक्त का प्रतिनिधित्व करता है और इस प्रकार, यह उपधारणा प्रकट होती है कि कोई अन्य व्यक्ति पश्चात्वर्ती साधारण शब्द में केवल अभियुक्त के प्रवर्ग से संबंधित व्यक्ति सम्मिलित होंगे और यह नहीं कहा जा सकता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 की उपधारा 2 में प्रयुक्त "अभियुक्त" विशिष्ट शब्द में कोई वर्ग नहीं पाया जा सकता और विनिर्दिष्ट शब्द उस वर्ग को समाप्त कर देता है, इसलिए उसी किस्म का सिद्धांत पूरे बल के साथ लागू होगा और सुरक्षित रूप से यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि विधान-मंडल का ऐसा कोई आशय नहीं था कि किसी अन्य व्यक्ति साधारण शब्द में इत्तिलाकर्ता और परिवादी को सम्मिलित करें । जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 की उपधारा 2 में उल्लिखित है जो "अभियुक्त" विनिर्दिष्ट शब्द से पूर्व का है ।

22. प्रश्न यह है कि क्या कोई इत्तिलाकर्ता दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के अधीन फाइल किए गए दांडिक पुनरीक्षण में आवश्यक पक्षकार है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401(2) में प्रयुक्त अन्य व्यक्ति क्षेत्र की भी परीक्षा की गई थी और रणवीर सिंह, आवेदक (परिवादी) वाले मामले में जिसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आवेदन पर इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा मामले का निर्वचन किया गया था । पूर्वोक्त मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश ने विचारण न्यायालय ने पारित किए गए निर्णय के विरुद्ध अभियुक्त द्वारा फाइल किए गए पुनरीक्षण आवेदन को मंजूर कर लिया था जिसके द्वारा उन्हें दंड संहिता की धारा 397 के अधीन दोषसिद्ध किया था और तीन महीने का कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया और उसके पश्चात् इत्तिलाकर्ता इस आधार पर तारीख 8 मई, 1979 को दांडिक पुनरीक्षण आवेदन में तारीख 8 मई, 1979 को पारित आदेश को मंगाने का अनुरोध करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इत्तिलाकर्ता द्वारा आवेदन प्रस्तुत किया गया था कि पुनरीक्षण में उसे सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था और इस प्रकार आदेश दूषित है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने संपूर्ण विधि की परीक्षा करने के पश्चात् और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401(2) का परिशीलन करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित

करते हुए आवेदन को पुनः मंगाने के विचार को अस्वीकार कर दिया कि परिवादी पुनरीक्षण में आवश्यक पक्षकार नहीं था । पूर्वोक्त निर्णय का पैरा 5 और 6 जो सुसंगत है इसमें निम्न प्रकार उसको दिया जा रहा है :–

"विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि उपरोक्त उपखंड में प्रयुक्त किए गए "अन्य व्यक्ति" शब्दों में परिवादी भी सम्मिलित होना चाहिए, और इसलिए इस न्यायालय की ओर से यह लाजिमी था कि आवेदक को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए था । मैंने विद्वान् काउंसेल के इस निवेदन पर उत्सुक्ता के साथ विचार किया है और मेरा मत यह है कि "अन्य व्यक्ति" शब्द में परिवादी को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए "अन्य व्यक्ति" में अभियुक्त व्यक्ति को रखा जाना चाहिए । मैं इसलिए इस बात को कहता हूं कि केवल अभियुक्त या कोई व्यक्ति ही उस जैसा कर सकता है । "ऐसी प्रतिरक्षा" को वह या तो वैयक्तिक रूप से या प्लीडर के माध्यम से दे सकता है । परिवादी की ओर से ऐसा कोई प्रश्न उद्भूत नहीं हो सका है जो उसके द्वारा प्रारंभ के मामले में प्रतिरक्षा दे सकता हो ।

आवेदक के विद्वान् काउंसेल ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के उपखंड का अवलंब लिया और यह दलील दी कि पुनरीक्षण को सुनने का और उच्च न्यायालय की शक्ति न्यूनाधिक रूप से अपील के सुनने की शक्ति के सदृश है या अनुकूली है, यह आवश्यक था कि उसे पुनरीक्षण की सुनवाई के लिए नोटिस आवेदक को दिया जाना चाहिए जैसा कि परिवादी को नोटिस दिया गया है जबकि परिवाद पर संस्थित मामले से उद्भूत अपील की सुनवाई होनी थी । पुनरीक्षण की सुनवाई में उच्च न्यायालय की शक्ति अपील की सुनवाई की उसकी शक्ति के अनुरूप है परन्तु पुनरीक्षण की सुनवाई के लिए विहित की गई प्रक्रिया अपील की सुनवाई के लिए विहित की गई प्रक्रिया से पूर्णतया भिन्न है । दंड प्रक्रिया संहिता में अपील की सुनवाई के लिए एक प्रक्रिया विहित की गई है और दूसरी पुनरीक्षण सुनवाई के लिए । अपील के लिए विहित की गई प्रक्रिया का प्रयोगन पुनरीक्षण के लिए नहीं किया जा सकता । परिवाद पर संस्थित किसी मामले से उद्भूत अपील की सुनवाई के बारे में परिवादी को नोटिस भेजा जाना आवश्यक है और, इसलिए, अपील से पूर्व उसे नोटिस भेजा गया था जिससे कि उसे सुना जा सके । ऐसा उपबंध पुनरीक्षण की सुनवाई के बारे में विद्यमान नहीं है, और,

इसलिए, या तनिक भी आवश्यक नहीं है कि परिवादी को सुनवाई का नोटिस दिया जाना चाहिए ।

23. **ए. के. सुब्बाभाई और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए पैरा 12 और 13 द्वारा उच्चतम न्यायालय द्वारा उस मुद्दे की परीक्षा करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है :–

"12. यह विवाद नहीं किया गया है कि इन प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 को निचले न्यायालय के समक्ष पक्षकार नहीं बनाया गया था । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से राज्य सरकार द्वारा प्रारंभ की गई कार्यवाहियां और इसलिए प्रत्यर्थी सं. 2 अप्रत्यक्ष रूप से परिवादी रहते हुए कार्यवाहियों का पक्षकार है । यह अनुचित प्रतिपादना है । राज्य सरकार द्वारा निचले न्यायालय के समक्ष अर्थात् विचारण न्यायालय के समक्ष अभियोजन कार्यवाहियां प्रारंभ की गईं । उसमें केवल याची पक्षकार थे जो अभियुक्त व्यक्ति हैं और राज्य सरकार को जिसे परिवादी की ओर से रखा गया है । मामले में अभियोजन साक्षी हैं और प्रतिरक्षा साक्षी भी है परन्तु साक्षियों को कार्यवाहियों में पक्षकार नहीं बनाया गया है और स्वीकृततः इन दो प्रत्यर्थियों जिन्हें उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश द्वारा विलोपित किया गया है, निचले न्यायालय के समक्ष पक्षकार नहीं बनाया गया है ।

13. विद्वान् काउंसेल ने धारा 401 के उपखंड (2) में अन्तर्विष्ट उपबंधों पर अत्यधिक जोर दिया गया है । धारा 401 का परिशीलन करने पर इस प्रकार है ।

401. **उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण की शक्तियां** – (1) ऐसी किसी कार्यवाही के मामले में, जिसका अभिलेख उच्च न्यायालय ने स्वयं मंगवाया है या जिसकी उसे अन्यथा जानकारी हुई है, वह धाराएं 386, 389, 390 और 391 द्वारा अपील न्यायालय को या धारा 307 द्वारा सेशन न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों में से किसी का स्वविवेकानुसार प्रयोग कर सकता है और जब वे न्यायाधीश, जो पुनरीक्षण न्यायालय में पीठासीन है, राय में समान रूप से विभाजित है तब मामले का निपटारा धारा 392 द्वारा उपबंधित रीति से किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन कोई आदेश, जो अभियुक्त या अन्य

व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, तब तक न किया जाएगा जब तक उसे अपनी प्रतिरक्षा में या तो स्वयं या प्लीडर द्वारा सुने जाने का अवसर न मिल चुका हो ।

(3) इस धारा की कोई बात उच्च न्यायालय को दोषमुक्ति के निष्कर्ष को दोषसिद्धि के निष्कर्ष में संपरिवर्तित करने के लिए प्राधिकृत करने वाली न समझी जाएगी ।

(4) जहां संहिता के अधीन अपील हो सकती है किन्तु कोई अपील की नहीं जाती है वहां उस पक्षकार की प्रेरणा पर, जो अपील कर सकता था, पुनरीक्षण की कोई कार्यवाही ग्रहण न की जाएगी ।

(5) जहां इस संहिता के अधीन अपील होती है किन्तु उच्च न्यायालय को किसी व्यक्ति द्वारा पुनरीक्षण के लिए आवेदन किया गया है और उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि ऐसा आवेदन इस गलत विश्वास के आधार पर किया गया था कि उससे कोई अपील नहीं होती है और न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक है तो उच्च न्यायालय पुनरीक्षण के लिए आवेदन को अपील की अर्जी मान सकता है और उस पर तद्नुसार कार्यवाही कर सकता है ।"

इस धारा की उपधारा 2 में इस स्थिति के बारे में बताया गया है जहां किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई आदेश पारित किया जा रहा है और विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई थी कि इस धारा में न केवल अभियुक्त व्यक्तियों के बारे में बताया गया है बल्कि "अन्य व्यक्तियों के बारे में भी बताया गया है जब तक कि उसे सुने जाने का अवसर नहीं दिया गया था ।" प्रकटतः इस स्थिति में यह उपखंड अनुध्यात किया गया है जहां कोई व्यक्ति निचले न्यायालय के समक्ष अभियुक्त नहीं हो सकता परन्तु जिसे उन्मोचित किया जा सकता है और इसलिए, यदि पुनरीक्षण न्यायालय धारा 401 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने के पश्चात् ऐसे व्यक्ति के प्रतिकूल कोई आदेश पारित करना चाहता है तब यह आवश्यक है कि उस व्यक्ति को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए परन्तु किसी व्यक्ति की सुनवाई की कोई आकस्मिकता को अनुध्यात नहीं करता है जो निचले न्यायालय की कार्यवाहियों में न तो पक्षकार है और न किसी प्रक्रम पर यह आशा की गई हो कि वह पक्षकार के रूप में पुनरीक्षण के पश्चात् सम्मिलित किया जाएगा । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल

यह दलील देने की स्थिति में नहीं थे कि यद्यपि अपीलार्थियों की कोई दलील को स्वीकार किया जाता है और उच्च न्यायालय पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार करता है तब ऐसी स्थिति होगी जहां इन दो प्रत्यर्थियों के विरुद्ध आदेश पारित किया जा सकता है या उन्हें कार्यवाहियों में पक्षकारों के रूप में सम्मिलित किया जा सकता है । धारा 401(2) का निर्देश जहां तक दो प्रत्यर्थियों का संबंध है, का कोई परिणाम नहीं होता ।

24. आवेदकों के विद्वान् काउंसेल द्वारा अपनी दलील के समर्थन में अवलंब लिए गए दो नजीरों पर विचार करते हैं कि आवेदक सं. 1 जो इत्तिलाकर्ता था और आवेदक सं. 2 जिसे घटना में क्षति पहुंची थीं, वे पुनरीक्षण में आवश्यक पक्षकार थे और इसलिए उन्हें आक्षेपित आदेश पारित करने से पूर्व सुना जाना आवश्यक था । मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि आवेदक के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिए गए दोनों विनिश्चय तथ्यों पर स्पष्ट रूप से विभेद प्रकट करते हैं और इस मुद्दे पर उन्हें पूर्व निर्णयों के रूप में बाध्यकारी नहीं कहा जा सकता ।

आवेदकों के विद्वान् काउंसेल द्वारा **जे. के. इन्टरनेशनल** (उपरोक्त) वाले मामले का अवलंब लिया गया । यह एक ऐसा मामला था जिसमें अभियुक्त द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष अपने विरुद्ध रिट याचिका में संस्थित दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए याचिका फाइल की थी । इत्तिलकर्ता को पक्षकार नहीं बनाया गया था और इसलिए उसके द्वारा यह अनुरोध करते हुए उसे पक्षकार बनाने के लिए आवेदन फाइल किया गया था कि दांडिक कार्यवाहियां जो उसकी ओर से प्रारंभ की गई थीं इसलिए दांडिक कार्यवाहियों को अपास्त करने से पूर्व उसे भी सुना जाना चाहिए । उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने इत्तिलाकर्ता द्वारा फाइल किए गए आवेदन को अस्वीकार कर दिया और यह विचार व्यक्त किया कि सुने जाने के लिए इत्तिलाकर्ता का अधिकार जब एक बार संज्ञान ले लिया गया है तो समाप्त हो गया है और उसके पश्चात् वह निरंतर कार्यवाहियों में भाग नहीं ले सकता है यद्यपि वह व्यथित पक्षकार था जिस बात को उसने कार्यवाहियों में कहना चाहिए था । उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध इत्तिलाकर्ता द्वारा फाइल की गई अपील को मंजूर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया जो इस प्रकार है :–

"विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपीलार्थी के साथ गलत किया है जब उन्होंने यह कहते हुए उसके लिए उच्च न्यायालय में जाने के

दरवाजे बंद कर दिए कि उच्च न्यायालय इस बात पर विचार करता है कि क्या उसकी ओर से दांडिक कार्यवाहियां प्रारंभ की गईं जिन्हें पूरी तरह से अभिखंडित कर देना चाहिए और कि परिवादी को तनिक भी नहीं सुना जाएगा यद्यपि वह सुना जाना चाहता हो ।"

25. मुझे बड़ा खेद है कि पूर्वोक्त मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि की प्रतिपादना अपीलार्थी की कोई सहायता नहीं करता है क्योंकि उच्चतम न्यायालय ने पूर्वोक्त निर्णय में कहीं भी यह अभिनिर्धारित नहीं किया है कि इत्तिलाकर्ता या परिवादी अभियुक्त द्वारा फाइल किए गए पुनरीक्षण में आवश्यक पक्षकार है । उच्चतम न्यायालय ने केवल यह अभिनिर्धारित किया है कि परिवादी को सुने जाने के लिए तनिक भी विवर्जित नहीं किया जा सकता यद्यपि वह सुनवाई चाहता हो । वर्तमान मामले में स्थिति पूर्णतया भिन्न है । आवेदकों का मामला ऐसा नहीं है कि उन्होंने प्रत्यर्थी के रूप में शामिल होने के लिए पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष कोई आवेदन पेश किया था और उक्त आवेदन को पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था ।

26. दूसरा मामला जिसका आवेदकों के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिया गया है, उक्त मामला **रघुराज सिंह रौशा**(उपरोक्त) उसकी कोई भी सहायता नहीं करता । **रघुराज सिंह रौशा** (उपरोक्त) वाले मामले में मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदक शिवम सुन्दरम प्रमोटर्स प्राइवेट लिमिटेड द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन आवेदन पेश किया गया था जिसे उसके द्वारा तारीख 2 फरवरी, 2008 का आदेश पारित करके अस्वीकार कर दिया गया था जिसे परिवादी द्वारा पक्षकार के रूप में केवल राज्य पर मुकदमा चलाने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन फाइल करके चुनौती दी गई थी । उच्च न्यायालय ने तारीख 25 फरवरी, 2008 के आदेश द्वारा सुनवाई की प्रथम तारीख पर पूर्वोक्त पुनरीक्षण मंजूर कर लिया था जिसे रघुराज सिंह रोउसा द्वारा उच्चतम न्यायालय के समक्ष दांडिक अपील फाइल करके चुनौती दी गई थी । उच्चतम न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 और 401 के उपबंधों का अति बारीकी से परीक्षा करने के पश्चात् और इस मुद्दे पर नजीरों के समूहों के आधार पर अपील मंजूर कर ली थी और उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करने के पश्चात् मामले को इस निदेश के साथ उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित कर दिया गया कि अपीलार्थी रघुराज सिंह रोउसा पर मुकदमा चलाने के पश्चात् मामले को सुना जाए और

समुचित आदेश पारित किया जाए । रघुराज सिंह रोउसा वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष इस मुद्दे को उठाया गया था कि क्या अभियुक्त के पास दांडिक कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार है जब तक कि प्रक्रिया को जारी नहीं कर दिया जाए । उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने से इनकार करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि पुलिस अन्वेषण आवश्यक नहीं था और परिवादी तथा साक्षियों को परीक्षा करने के लिए निदेश दिया गया जिससे कि दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XV के अधीन अधिकथित प्रक्रिया प्रारंभ हो जाए, उन्होंने संज्ञान लिया था और इसलिए प्रस्तावित अभियुक्त को ऐसे आदेश के विरुद्ध फाइल की गई पुनरीक्षण में आवश्यक पक्षकार बनाया था । पूर्वोक्त नजीर में ऐसा कुछ भी नहीं था जिससे दूरस्थ रूप से यह उपदर्शित हो सकता हो कि परिवादी, अभियुक्त द्वारा दांडिक न्यायालय के आदेश के विरुद्ध फाइल की गई पुनरीक्षण में आवश्यक पक्षकार है ।

27. इस प्रकार आक्षेपित आदेश के बारे में पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा आवेदकों को सुनवाई का अवसर दिए जाने में विफल होने पर दूषित होना नहीं कहा जा सकता है ।

28. आक्षेपित आदेश को चुनौती देने के दूसरे आधार पर विचार करते हुए मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि इसमें कोई सार नहीं है । पुनरीक्षण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 91 के अधीन अपने समक्ष विरोधी पक्षकार सं. 2 की ओर से दिए गए आवेदन 16ख को मंजूर करते हुए मुख्य सचिव उत्तर प्रदेश सरकार को यह निदेश दिया था कि आदेश को मंजूर करने वाले प्राधिकृत अधिकारियों के पदनाम को सुनिश्चित करने के लिए यू. पी. रूल्स आफ बिजनेस को उनके समक्ष पेश करें और धारा 153क के अधीन विरोधी पक्षकार सं. 2 और अन्य सह अभियुक्तों पर अभियोजन चलाने के लिए मंजूरी का आदेश जिस पर डा. जे. बी. सिन्हा, सचिव द्वारा हस्ताक्षर किया गया था जिन्हें राज्यपाल द्वारा प्राधिकृत किया जाना प्रकट हुआ है, उनकी ओर से मंजूरी आदेश पर हस्ताक्षर नहीं हुए हैं क्योंकि पुनरीक्षण न्यायालय ने यह उल्लेख किया है कि मंजूरी आदेश यद्यपि डा. जे. बी. सिन्हा द्वारा उस पर हस्ताक्षर किया जाना आशयित था परन्तु आदेश में खाली जगह छोड़ी गई थी और आदेश पर किसी हस्ताक्षर करने वाले प्राधिकारी के हस्ताक्षर नहीं हुए थे और आदेश के पश्चात् तथा "आवश्यक अनुपालन और सूचना देने के लिए प्रति अग्रेषित की गई" इस

शीर्षक से, राम हित नामक अवर सचिव ने इस पर अपने हस्ताक्षर किए थे । पुनरीक्षण न्यायालय ने अपने आदेश तारीख 10 अप्रैल, 2015 में स्पष्ट रूप से यह मत व्यक्त किया है कि यह स्पष्ट है कि मंजूरी के मुख्य आदेश में किसी प्राधिकृत हस्ताक्षरित द्वारा हस्ताक्षर नहीं किया गया था, राज्यपाल का आदेश पर किसी प्राधिकृत हस्ताक्षरित प्राधिकारी द्वारा हस्ताक्षर नहीं किया गया था, यह मुश्किल से अभियोजन पक्ष के लिए मंजूरी की शब्दावली के अन्तर्गत आ सकता है । इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि अपर सेशन न्यायाधीश गोरखपुर द्वारा तारीख 10 अप्रैल, 2015 को आदेश पारित किया गया था जिसकी प्रति अभिलेख पर लाई गई है क्योंकि उपाबंध एस. ए. 4 से पूरक शपथपत्र जिसमें अन्य दस्तावेज को भी एकत्रित किया गया है, अपनी वैधानिकता पर अंतिम हो गए हैं जिन्हें किसी वरिष्ठ न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई थी । अभिलेख पर लाई गई सामग्री से यह भी स्पष्ट होता है कि तारीख 10 अप्रैल, 2015 का आदेश का अनुपालन नहीं किया गया था, परिणामस्वरूप विरोधी पक्षकार सं. 2 को तारीख 4 अप्रैल, 2015 और 14 जुलाई, 2015 को पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष दो आवेदन 24ख और 18ख पेश करने के लिए बाध्य किया गया था जिनका पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तारीख 17 मार्च, 2016 को आदेश पारित करके निपटारा कर दिया गया था । तारीख 17 मार्च, 2016 के आदेश का परिशीलन करने पर यह उपदर्शित होता है कि पुनरीक्षण न्यायालय ने आवेदन 24ख और 16ख को अस्वीकार करते हुए उक्त आदेश में इस प्रभाव की मताभिव्यक्ति की थी कि राज्यपाल से उत्तर प्रदेश प्रशासन द्वारा अभियोजन चलाने के लिए पूर्व मंजूरी प्राप्त की गई थी और पूर्वोक्त मंजूरी आदेश की प्रति संबंधित पुलिस थाने को भेजी गई थी, जिस पर, अवर सचिव के हस्ताक्षर थे और जिसका परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हुआ था कि पूर्वोक्त मंजूरी की प्रति डी. आई. जी. गोरखपुर रेंज को भेजी गई थी तथा मंजूरी आदेश की चार प्रतियां अभिलेख पर रखी गई थीं । तथापि, मैंने तारीख 17 मार्च, 2016 के आदेश में ऐसी कोई बात नहीं पाई है जिससे यह उपदर्शित होता हो कि पुनरीक्षण न्यायालय ने या तो इस आधार की परीक्षा की थी जिस पर विरोधी पक्षकार सं. 2 ने आदेश की विधिमान्यता को चुनौती दी थी जिसके द्वारा विरोधी पक्षकार सं. 2 अन्य सह अभियुक्तों का अभियोजन चलाने मंजूरी राज्यपाल द्वारा मंजूर की गई थी या इसे आधारहीन पाया गया था या नियमों के सुसंगत सार की फोटो प्रतियों को राज्य सरकार द्वारा तारीख 10 अप्रैल, 2015 के पुनरीक्षण न्यायालय के पूर्ववर्ती आदेश के अनुपालन में पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष पेश किया गया था ।

29. आक्षेपित आदेश को चुनौती देने का अंतिम आधार भी गुणागुण रहित है । पुनरीक्षण न्यायालय पुनरीक्षण मंजूर करते हुए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को मामला प्रतिप्रेषित किया गया जिसमें कि नए सिरे से मंजूरी के आदेश की विधिमान्यता पर विरोधी पक्षकार सं. 2 के आक्षेप का विनिश्चय करें, पुनरीक्षण न्यायालय ने उसे केवल यह निदेश दिया है कि उसके आदेश में की गई मताभिव्यक्तियों के प्रकाश में मामले का विनिश्चय करे । यह नहीं कहा जा सकता है कि पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश में की गई मताभिव्यक्तियां इतनी अभिभूत थीं कि वे मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट गोरखपुर के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ती हैं जिससे कि स्वतंत्र विवेक का प्रयोग करके मामले का स्वच्छंद होकर विनिश्चय करें ।

30. पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए आक्षेपित आदेश में कोई हस्तक्षेप किया जाना आवश्यक नहीं है । आवेदन में गुणागुण की कमी है और तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है । तथापि, पर्याप्त सावधानी बरतते हुए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट गोरखपुर को यह निदेश दिया जाता है कि विधि के अनुसरण में पूर्णतया प्रतिप्रेषित आक्षेपित आदेश के अनुसरण में नए सिरे से मामले 5 का विनिश्चय करें, ऐसी मताभिव्यक्तियों से प्रभावित हुए बिना स्वतंत्र विवेक का प्रयोग करें जो कोई पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश में की गई हैं ।

आवेदन खारिज करते हुए ।

आर्य

बिनोद बिहारी नाईक (डा.)

बनाम

ओडिशा राज्य

तारीख 2 जनवरी, 2018

न्यायमूर्ति एस. के. साहू

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 313 [सपठित गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम, 1971 की धारा 3, 4 और 5] – गर्भ का समापन – जहां गर्भ के समापन के लिए गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम की धारा 3, 4 और 5 के अधीन अधिकथित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया और न ही छह माह के गर्भ को समाप्त करने के लिए पीड़ित की सहमति ली गई, वहां कुछ दवाइयां खिलाकर पीड़ित को बेहोश कर प्रछन्न ढंग से किए गए गर्भपात के लिए रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी को दोषसिद्ध ठहराना उचित और न्यायसंगत है ।

कुचिंदा पुलिस थाने में प्रभारी अधिकारी के समक्ष तारीख 16 अगस्त, 2002 को पीड़ित द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुसार यह अभियोजन पक्षकथन है कि उसकी उम्र लगभग 20 वर्ष है और सह-अभियुक्त लोचन पुजारी ने विवाह के आश्वासन पर उसके साथ शारीरिक संबंध बनाया, जिससे वह गर्भवती हो गई । आगे यह कहा गया है कि सह-अभियुक्त लोचन पुजारी, उसके बड़े भाई गोविन्दा, उसकी माता और उसके साले द्वारा गर्भ में बच्चे के औपचारिक जांच के लिए उसके मिथ्या प्रभाव से उनके पूर्व योजना के अनुसार उसे चिकित्सक के पास ले जाया गया । सह-अभियुक्त व्यक्तियों ने चिकित्सक से बात की और पीड़ित को चिकित्सक के पास छोड़ दिया जिसने उसे कुछ दवाइयां दीं जिससे वह संवेदनशून्य हो गई और एक घंटे के पश्चात् जब उसे पुनः होश आया तो उसे पता चला कि उसके छह मास के गर्भ को समाप्त कर दिया गया है । सह-अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा किसी से इसके बारे में प्रकट न करने के लिए कहा गया और गंभीर परिणाम की धमकी दी गई । ऐसी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर 2002 को कुचिंदा थाना, मामला सं. 85, भारतीय दंड संहिता की धारा 493/506/313/34 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3 के अधीन 16 अगस्त, 2002 को दर्ज किया गया और अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् याची और

सह-अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 493/506/313/34 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3 के अधीन 24 अगस्त, 2003 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था । यह प्रतीत होता है कि याची ने इस आधार पर अपने विरुद्ध चलाए गए अभियोजन को विखंडित करने के लिए कुचिंदा के विद्वान् उपखंड न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन फाइल किया कि वह केवल रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी नहीं है बल्कि वह सरकारी चिकित्सक है अतः, वह लोक सेवक है और चूंकि गर्भपात के समापन का अभिकथित कार्य उसके पदीय कर्तव्य के सम्यक् निर्वहन के दौरान उसके द्वारा किया गया है, इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन अनुशास्ति के बिना मामला विधि की दृष्टि से संधार्य नहीं है । कुचिंदा के विद्वान् उपखंड न्यायिक मजिस्ट्रेट ने ऐसी याचिका पर विचार किया और तारीख 30 सितंबर, 2004 के आदेश द्वारा उन्होंने यह अभिनिर्धारित किया कि यह साबित करने के लिए कोई स्पष्ट मामला नहीं बनता है कि याची दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन संरक्षण का अधिकार है, तद्नुसार, याची द्वारा फाइल की गई याचिका खारिज कर दी गई है । तारीख 30 सितंबर, 2004 के उक्त आदेश की चुनौती इस न्यायालय के समक्ष दी गई है । उच्च न्यायालय द्वारा याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – धारा 3 की उपधारा (2) को ध्यान में रखते हुए, यह बहुत स्पष्ट है कि यदि गर्भ 12 सप्ताह से अधिक नहीं है तो भी केवल इस आधार पर कि गर्भ के बने रहने से गर्भवती स्त्री के जीवन में जोखिम होगा या उसके शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य को गंभीर क्षति या पर्याप्त जोखिम है कि यदि बच्चा पैदा हुआ तो वह शारीरिक या मानसिक अप्रसामान्यताओं से पीड़ित होगा कि वह गंभीर रूप से विकलांग होगा तो गर्भ को रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा समाप्त किया जा सकेगा । यदि यह 12 सप्ताह से अधिक है किंतु 20 सप्ताह से अधिक नहीं है तो भी दो रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायियों से अनून्य की ऐसी राय आवश्यक है । गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम की धारा 4 ऐसे स्थान के बारे में है जहां गर्भ समाप्त किया जा सकता है । गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम की धारा 5 में यह अधिकथन है कि धारा 3 की उपधारा (2) में यथा अभिकथित गर्भ की अवधि और दो रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायियों से अन्यून की राय और धारा 4 के अधीन यथा उपबंधित गर्भ के समापन

का स्थान भी ऐसी दशा में रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा गर्भ के समापन को लागू नहीं होगा, जहां राय सद्भाव में गठित की गई है कि ऐसे गर्भ का समापन गर्भवती महिला के जीवन को बचाने के लिए तत्काल आवश्यक है । गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) को ध्यान में रखते हुए, गर्भ का कोई समापन नहीं किया जा सकता है यदि गर्भ की अवधि 20 सप्ताह से अधिक है । गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम की धारा 5 में केवल यह अपवाद है, जिसके अधीन गर्भ को, गर्भ के किसी प्रक्रम पर गर्भवती महिला के प्राण को बचाने के लिए तत्काल समाप्त किया जा सकता है यदि रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी की राय सद्भाव में गठित की गई है । गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम की धारा 5 कठोरतः ऐसे मामलों को निर्बंधित करता है जहां, गर्भवती महिला के प्राण खतरे में होंगे यदि गर्भ का समापन नहीं किया जाता और किसी अन्य परिस्थिति को निर्दिष्ट नहीं करता । निःसंदेह, उस बाबत राय रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा गठित की जानी चाहिए और ऐसी राय सद्भाव में होनी चाहिए । 'सद्भाव' पद यह प्रकट करता है कि ऐसी राय गठित करने के लिए आवश्यक अपेक्षित परीक्षा पर आधारित होनी चाहिए । इस मामले में, न केवल पीड़ित की गर्भ अवधि छह मास थी अतः, 20 सप्ताह से अधिक हो गई थी बल्कि बिल्कुल कोई सामग्री नहीं है कि पीड़ित के प्राण को बचाने के लिए गर्भ का समापन आवश्यक था । पीड़ित ने स्पष्टतः यह कहा है कि उसे गर्भ में बच्चे के औपचारिक जांच का बहाना लेकर सह-अभियुक्त लोचन पुजारी के कुटुम्ब के सदस्यों द्वारा मचीपल्ली स्थित प्राइवेट क्लिनिक पर ले जाया गया था जहां चिकित्सक ने उसे कुछ दवाइयां दी जिससे वह बेहोश हो गई और एक घंटे के पश्चात् जब उसे होश आया तो उसे पता चला कि उसका गर्भ समाप्त कर दिया गया है । जब उसने सह-अभियुक्त व्यक्तियों से ऐसे समापन के बारे में पूछा तो उन लोगों ने किसी के समक्ष घटना को न प्रकट करने के लिए कहा और उसे घोर परिणाम की धमकी दी । अतः पीड़ित के कथन से यह प्रकट है कि गर्भ के समापन के पूर्व उसकी सहमति नहीं ली गई थी । अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से प्रथमदृष्ट्या यह स्पष्ट है कि न तो गर्भ का समापन अधिनियम की धारा 3, 4 और 5 के अधीन अधिकथित प्रक्रिया का पालन किया गया न ही उसके छह माह के गर्भ को समाप्त करने के लिए पीड़ित की सहमति ली गई । अतः, जब ऐसी कोई सामग्री नहीं है कि पीड़ित के प्राण को बचाने के प्रयोजन के

लिए सद्भाव में गर्भपात किया गया और ऐसे गर्भपात के लिए पीड़ित की सहमति प्राप्त नहीं की गई है किंतु कुछ दवाइयां खिलाकर पीड़ित को बेहोश कर प्रछन्न ढंग से यह किया गया, हमारा यह मत है कि जहां तक याची का संबंध है, भारतीय दंड संहिता की धारा 313 के अधीन अपराध के प्रथमदृष्ट्या तत्व बनते हैं । (पैरा 6 और 7)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1994] (1994) 3 एस. सी. सी. 430 = 1994 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 228 :
डा. जैकब जार्ज बनाम केरल राज्य । 1

आरंभिक (दांडिक) अधिकारिता : 2004 की दांडिक प्रकीर्ण मामला सं. 2264.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री जे. आर. दास, के. एल. दास, और सी. एन. जेना

विपक्षी पक्षकार की ओर से श्री प्रेम कुमार पटनायक, अपर सरकारी अधिवक्ता

आदेश

एक चिकित्सक प्रायः निर्माता, कष्ट निवारक और प्राण रक्षक की भूमिका निभाता है । यह माना जाता है कि वह अपने उत्तरदायित्व को समझता है और अपनी पूरी क्षमता के साथ रोगी के चेहरे पर मुस्कान वापस लाने का प्रयास करता है । अरस्तू ने यह कहा : 'जब कभी कोई चिकित्सक सदकार्य नहीं कर सकता, उसे नुकसान पहुंचाने से बचना चाहिए ।' यहां एक ऐसे दुर्भाग्यपूर्ण पीड़ित का मामला है जिसने जानबूझकर अपने प्रेमी द्वारा विवाह के आश्वासन और अपने स्वप्न को वास्तविक होने की संभावना की प्रत्याशा पर माता बनने का चयन किया । जब अजन्मा उत्सुकतापूर्वक नए विश्व को देखने, अपनी छोटी-छोटी अंगुलियों से माता को स्पर्श करने की प्रतीक्षा कर रहा था तो चिकित्सक ने प्रेमी द्वारा गंदे चालबाज भूमिका के सामने घुटने टेक दिए, विनाशक की भूमिका निभाई और पीड़ित की जानकारी और सहमति के बिना उसे

निश्तेज, स्तंभित और बरबाद करते हुए, गर्भ के भीतर ही प्राण के संचरण को रोक दिया ।

डा. जैकब जार्ज बनाम केरल राज्य[1] वाले मामले में यह इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "1. जीवन को ईश्वर का सर्वाधिक उत्कृष्ट सृजन कहा गया है । यह इस आस्था और विश्वास पर है, जो तर्क की जड़ है और कई धार्मिक संप्रदायों द्वारा यह धारणा कि मानव प्रणाली प्राण नहीं ले सकते हैं क्योंकि वे प्राण नहीं दे सकते । कुछ धार्मिक नेताओं में यह धारणा इतनी गहन है कि वे जन्म नियंत्रण के किसी उपाय का भी विरोध करते हैं । गर्भस्राव या गर्भपात का इन व्यक्तियों द्वारा प्रबलता से विरोध किया जाता है ।
>
> 2. राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने काफी पहले हरिजन में यह तर्क किया कि अकेले ईश्वर ही प्राण ले सकता है क्योंकि अकेले वही प्राण प्रदान करता है । जैनियों द्वारा पशु का भी प्राण लेना पाप है क्योंकि उनके अनुसार पशु भी उतने ही ईश्वर के भाग हैं जितना मानव प्राणी । बौद्ध भी अहिंसा का उपदेश देते हैं ।
>
> 3. हमारे ऋग्वेद ।। में यह वर्णन है :–
>
> "हमें शत बसंत ऋतु प्रदान करें जिससे हम रंगीन दुनिया देख सकें । हमें लंबा जीवन प्राप्त हो, जो हमने आपसे प्राप्त किया है ।"
>
> अथर्ववेद । में यह वर्णन है –
>
> "हम लंबे समय तक सूर्य को देखने में समर्थ रहे हैं ।"
>
> पूर्वोक्त से यह दर्शित होता है कि प्राण अमूल्य है और अवैध रूप से प्राण लेना न केवल विधिक दोष है बल्कि नैतिक पाप भी है ।"

2. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस आवेदन में याची डा. बिनोद बिहारी नायक ने भारतीय दंड संहिता की धारा 493/503/313/34 के अधीन अपराधों का संज्ञान लेने में 2002 के जी.आर. मामला सं. 281 में पारित कुचिंदा के विद्वान् उपखंड न्यायिक मजिस्ट्रेट के तारीख 6

---

[1] (1994) 3 एस. सी. सी. 430 = 1994 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 228.

सितंबर, 2003 के आक्षेपित आदेश और उनके विरुद्ध जारी प्रक्रिया आदेश की चुनौती दी है । उक्त मामला 2002 के कुचिंदा थाना मामला सं. 85 से उद्भूत होता है ।

यह प्रतीत होता है कि याची ने इस आधार पर अपने विरुद्ध चलाए गए अभियोजन को विखंडित करने के लिए कुचिंदा के विद्वान् उपखंड न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन फाइल किया कि वह केवल रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी नहीं है बल्कि वह सरकारी चिकित्सक है अतः, वह लोक सेवक है और चूंकि गर्भपात के समापन का अभिकथित कार्य उसके पदीय कर्तव्य के सम्यक् निर्वहन के दौरान उसके द्वारा किया गया है, इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन अनुशास्ति के बिना मामला विधि की दृष्टि से संधार्य नहीं है ।

कुचिंदा के विद्वान् उपखंड न्यायिक मजिस्ट्रेट ने ऐसी याचिका पर विचार किया और तारीख 30 सितंबर, 2004 के आदेश द्वारा उन्होंने यह अभिनिर्धारित किया कि यह साबित करने के लिए कोई स्पष्ट मामला नहीं बनता है कि याची दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन संरक्षण का अधिकार है, तद्नुसार, याची द्वारा फाइल की गई याचिका खारिज कर दी गई है ।

तारीख 30 सितंबर, 2004 के उक्त आदेश की चुनौती इस न्यायालय के समक्ष दी गई है ।

3. कुचिंदा पुलिस थाने में प्रभारी अधिकारी के समक्ष तारीख 16 अगस्त, 2002 को पीड़ित द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुसार यह अभियोजन पक्षकथन है कि उसकी उम्र लगभग 20 वर्ष है और सह-अभियुक्त लोचन पुजारी ने विवाह के आश्वासन पर उसके साथ शारीरिक संबंध बनाया, जिससे वह गर्भवती हो गई । आगे यह कहा गया है कि सह-अभियुक्त लोचन पुजारी, उसके बड़े भाई गोविन्दा, उसकी माता और उसके साले द्वारा गर्भ में बच्चे के औपचारिक जांच के लिए उसके मिथ्या प्रभाव से उनके पूर्व योजना के अनुसार उसे चिकित्सक के पास ले जाया गया । सह-अभियुक्त व्यक्तियों ने चिकित्सक से बात की और पीड़ित को चिकित्सक के पास छोड़ दिया जिसने उसे कुछ दवाइयां दीं जिससे वह संवेदनशून्य हो गई और एक घंटे के पश्चात् जब उसे पुनः होश आया तो उसे पता चला कि उसके छह मास के गर्भ को समाप्त कर दिया गया है । सह-अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा किसी से इसके बारे में प्रकट न करने के

लिए कहा गया और गंभीर परिणाम की धमकी दी गई ।

ऐसी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर 2002 को कुचिंदा थाना, मामला सं. 85, भारतीय दंड संहिता की धारा 493/506/313/34 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3 के अधीन 16 अगस्त, 2002 को दर्ज किया गया और अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् याची और सह-अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 493/506/313/34 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3 के अधीन 24 अगस्त, 2003 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था ।

4. याची की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री जे. आर. दास ने ऋजुतः यह निवेदन किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन उपबंध मामले में लागू नहीं होगा क्योंकि याची के विरुद्ध अभिकथन यह है कि एक प्राइवेट क्लिनिक में उसने पीड़ित का गर्भपात कराया, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कार्य लोक सेवक के रूप में अपने पदीय कर्तव्य के सम्यक् निर्वहन में किया गया था । तथापि, याची के विद्वान् काउंसेल की यह दलील है कि पीड़ित को याची की क्लिनिक पर लाया गया, जहां उसके प्रेमी सहित अन्य लोग उसके साथ थे और पीड़ित की सहमति से गर्भपात कराया गया था । अतः, भारतीय दंड संहिता की धारा 313 के अधीन अपराध के तत्व लागू नहीं होते ।

दूसरी ओर राज्य की ओर से विद्वान् अपर सरकारी अधिवक्ता श्री प्रेम कुमार पटनायक का यह निवेदन है कि यद्यपि भारतीय दंड संहिता की धारा 493 और 506 के अधीन जैसे अन्य अपराध याची के विरुद्ध लागू नहीं होते किंतु पीड़ित के कथन और अन्य सामग्री से स्पष्टतः यह प्रकट होता है कि सुसंगत समय पर पीड़ित छह माह का गर्भ धारण की हुई थी और पीड़ित ने स्पष्टतः यह कहा है कि उसे कुछ दवाई दी गई जिससे वह बेहोश हो गई और एक घंटे के पश्चात् जब पुनः उसे होश आया तो गर्भपात पहले ही पूरा हो चुका था । अतः, अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है कि पीड़ित ने गर्भपात कारित कराने के लिए सहमति दी । इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 313 के अधीन तत्व याची के विरुद्ध स्पष्टतः लागू होते हैं ।

5. अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन से कतिपय तथ्यात्मक पहलू अर्थात्, (i) पीड़ित छह माह से गर्भवती थी और (ii) याची द्वारा

माझीपल्ली में स्थित प्राइवेट क्लिनिक में गर्भपात कराया गया, विवादित नहीं है ।

6. गर्भ का चिकित्सीय समापन 1971 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "गर्भ का चिकित्सीय समापन" कहा गया है) की धारा 3 इस प्रकार है :–

"**3. गर्भ रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा-व्यवसायियों द्वारा कब समाप्त किया जा सकता है** -(1) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) में किसी बात के होते हुए भी, यदि कोई गर्भ किसी रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा-व्यवसायी द्वारा इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार समाप्त किया जाए तो वह चिकित्सा-व्यवसायी उस संहिता के अधीन या किसी अन्य तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन किसी अपराध का दोषी नहीं होगा ।

(2) उपधारा (4) के उपबंधों के अधीन रहते हुए यह है कि –

(क) जहां गर्भ 12 सप्ताह से अधिक का न हो, वहां यदि ऐसे चिकित्सा-व्यवसायी ने, अथवा

(ख) जहां गर्भ बारह सप्ताह से अधिक का हो किंतु बीस सप्ताह से अधिक का न हो, वहां यदि दो से अन्यून रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा-व्यवसायियों ने,

सद्भावपूर्वक यह राय कायम की हो कि –

(i) गर्भ के बने रहने से गर्भवती स्त्री का जीवन जोखिम में पड़ेगा अथवा उसके शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य को गंभीर क्षति होगी ; अथवा

(ii) इस बात का पर्याप्त जोखिम है कि यदि बच्चा पैदा हुआ तो वह ऐसी शारीरिक या मानसिक अप्रसामान्यताओं से पीड़ित होगा कि वह गंभीर रूप से विकलांग हो,

से पीड़ित होगा कि वह गंभीर रूप से विक्लांग हो,

स्पष्टीकरण 1 – जहां किसी गर्भ के बारे में गर्भवती स्त्री द्वारा यह अभिकथन किया जाए कि वह बलात्संग द्वारा हुआ तो ऐसे गर्भ के कारण होने वाले मनस्ताप के बारे में यह उपधारणा की जाएगी कि वह गर्भवती स्त्री के मानसिक स्वास्थ्य को गंभीर क्षति है ।

स्पष्टीकरण 2 – जहां किसी विवाहिता स्त्री या उसके पति द्वारा बच्चों की संख्या सीमित रखने के प्रयोजन से उपयोग में लाई गई किसी प्रयुक्ति या व्यवस्था की असफलता के फलस्वरूप कोई गर्भ हो जाए वहां ऐसे अवांछित गर्भ के कारण होने वाले मनस्ताप के बारे में यह उपधारणा की जा सकेगी कि वह गर्भवती स्त्री के मानसिक स्वास्थ्य को गंभीर क्षति है ।

(3) इस बात का अवधारण करने में कि गर्भ के बने रहने से उपधारा (2) में यथावर्णित स्वास्थ्य का क्षति की जोखिम होगा या नहीं, गर्भवती स्त्री की वास्तविक या उचित रूप से पूर्वानुमेय परिस्थितियों का विचार किया जा सकेगा ।

(4)(क) किसी ऐसी स्त्री का गर्भ, जिसने अठारह वर्ष की आयु प्राप्त न की हो, अथवा जिसने अठारह वर्ष की आयु प्राप्त कर ली हो किंतु जो मानसिक रूप से बीमार व्यक्ति हो, उसके संरक्षक की लिखित संपत्ति से ही समाप्त किया जाएगा, अन्यथा नहीं ।

(ख) खंड (क) में अन्यथा उपबंधित के सिवाय, कोई गर्भ गर्भवती स्त्री की सम्मति से ही समाप्त किया जाएगा, अन्यथा नहीं ।"

धारा 3 की उपधारा (2) को ध्यान में रखते हुए, यह बहुत स्पष्ट है कि यदि गर्भ 12 सप्ताह से अधिक नहीं है तो भी केवल इस आधार पर कि गर्भ के बने रहने से गर्भवती स्त्री के जीवन में जोखिम होगा या उसके शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य को गंभीर क्षति या पर्याप्त जोखिम है कि यदि बच्चा पैदा हुआ तो वह शारीरिक या मानसिक अप्रसामान्यताओं से पीड़ित होगा कि वह गंभीर रूप से विकलांग होगा तो गर्भ को रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा समाप्त किया जा सकेगा । यदि यह 12 सप्ताह से अधिक है किंतु 20 सप्ताह से अधिक नहीं है तो भी दो रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायियों से अनून्य की ऐसी राय आवश्यक है ।

गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम की धारा 4 ऐसे स्थान के बारे में है जहां गर्भ समाप्त किया जा सकता है ।

गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम की धारा 5 में यह अधिकथन है कि धारा 3 की उपधारा (2) में यथा अभिकथित गर्भ की अवधि और दो रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायियों से अनून्य की राय और धारा 4 के अधीन यथा उपबंधित गर्भ के समापन का स्थान भी ऐसी दशा में रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा गर्भ के समापन को लागू नहीं होगा,

जहां राय सद्भाव में गठित की गई है कि ऐसे गर्भ का समापन गर्भवती महिला के जीवन को बचाने के लिए तत्काल आवश्यक है ।

इस प्रकार, गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) को ध्यान में रखते हुए, गर्भ का कोई समापन नहीं किया जा सकता है यदि गर्भ की अवधि 20 सप्ताह से अधिक है । गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम की धारा 5 में केवल यह अपवाद है, जिसके अधीन गर्भ को, गर्भ के किसी प्रक्रम पर गर्भवती महिला के प्राण को बचाने के लिए तत्काल समाप्त किया जा सकता है यदि रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी की राय सद्भाव में गठित की गई है । गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम की धारा 5 कठोरतः ऐसे मामलों को निर्बधित करता है जहां, गर्भवती महिला के प्राण खतरे में होंगे यदि गर्भ का समापन नहीं किया जाता और किसी अन्य परिस्थिति को निर्दिष्ट नहीं करता । निःसंदेह, उस बाबत राय रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी द्वारा गठित की जानी चाहिए और ऐसी राय सद्भाव में होनी चाहिए । "सद्भाव" पद यह प्रकट करता है कि ऐसी राय गठित करने के लिए आवश्यक अपेक्षित परीक्षा पर आधारित होनी चाहिए ।

7. इस मामले में, न केवल पीड़ित की गर्भ अवधि छह मास थी अतः, 20 सप्ताह से अधिक हो गई थी बल्कि बिल्कुल कोई सामग्री नहीं है कि पीड़ित के प्राण को बचाने के लिए गर्भ का समापन आवश्यक था । पीड़ित ने स्पष्टतः यह कहा है कि उसे गर्भ में बच्चे के औपचारिक जांच का बहाना लेकर सह-अभियुक्त लोचन पुजारी के कुटुम्ब के सदस्यों द्वारा माझीपल्ली स्थित प्राइवेट क्लिनिक पर ले जाया गया था जहां चिकित्सक ने उसे कुछ दवाइयां दीं जिससे वह बेहोश हो गई और एक घंटे के पश्चात् जब उसे होश आया तो उसे पता चला कि उसका गर्भ समाप्त कर दिया गया है । जब उसने सह-अभियुक्त व्यक्तियों से ऐसे समापन के बारे में पूछा तो उन लोगों ने किसी के समक्ष घटना को न प्रकट करने के लिए कहा और उसे घोर परिणाम की धमकी दी । अतः पीड़ित के कथन से यह प्रकट है कि गर्भ के समापन के पूर्व उसकी सहमति नहीं ली गई थी ।

अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से प्रथमदृष्ट्या यह स्पष्ट है कि न तो गर्भ का समापन अधिनियम की धारा 3, 4 और 5 के अधीन अधिकथित प्रक्रिया का पालन किया गया न ही उसके छह माह के गर्भ को समाप्त करने के लिए पीड़ित की सहमति ली गई । अतः, जब ऐसी कोई सामग्री नहीं है कि पीड़ित के प्राण को बचाने के प्रयोजन के लिए सद्भाव में

गर्भपात किया गया और ऐसे गर्भपात के लिए पीड़ित की सहमति प्राप्त नहीं की गई है किंतु कुछ दवाइयां खिलाकर पीड़ित को बेहोश कर प्रछन्न ढ़ंग से यह किया गया, हमारा यह मत है कि जहां तक याची का संबंध है, भारतीय दंड संहिता की धारा 313 के अधीन अपराध के प्रथमदृष्ट्या तत्व बनते हैं ।

8. अतः, मैं आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए अपनी अंतर्निहित शक्ति का अवलंब लेने के लिए सहमत नहीं हूं । तद्नुसार, दांडिक प्रकीर्ण मामला आवेदन सारहीन होने के कारण खारिज किया जाता है ।

इस निर्णय में व्यक्त कोई भी मताभिव्यक्ति मामले का विचारण करने में विद्वान् विचारण न्यायालय को प्रभावित नहीं करेगी और विद्वान् विचारण न्यायालय, विचारण के द्वारा संबद्ध पक्षों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का पालन करेगा ।

अभिलेखों को तत्काल निचले न्यायालय को वापस भेजा जाए ।

याचिका खारिज की गई ।

पा.

मनीष उर्फ राजू देवषीभाई चोवादिया

बनाम

गुजरात राज्य

तारीख 1 फरवरी, 2018

न्यायमूर्ति जे. बी. पार्डीवाला

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 167(2) – आरोप पत्र फाइल न किए जाने पर जमानत का अधिकार – दंड संहिता की धारा 467 के अधीन मूल्यवान प्रतिभूति की कूटरचना का अपराध जो आजीवन कारावास से दंडनीय है, के आरोपी अभियुक्त को न्यायिक अभिरक्षा से 60 दिनों की समाप्ति के पश्चात् उक्त धारा के अधीन नहीं छोड़ा जा सकता क्योंकि उक्त अपराध के लिए आरोप पत्र फाइल करने की अवधि 90 दिन है न कि 60 दिन ।

इसमें आवेदक को लाजपोर केंद्रीय कारागार से अंतरण वारंट के द्वारा 26 सितंबर, 2017 को गिरफ्तार किया गया । 27 सितंबर, 2017 को आवेदक को न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग न्यायालय के समक्ष पेश किया गया जिन्होंने आवेदक को 29 सितंबर, 2017 तक पुलिस अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया । पुलिस रिमांड पूरा होने पर आवेदक को न्यायिक अभिरक्षा में रिमांड किए जाने का आदेश दिया गया । यह प्रतीत होता है कि न्यायिक अभिरक्षा में 60 दिन की अवधि 25 नवंबर, 2017 को समाप्त हो गई । उस समय तक आरोप पत्र फाइल नहीं किया गया था । 14 दिसंबर, 2017 को आवेदक ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन आवेदन फाइल किया और व्यतिक्रम जमानत का अनुरोध किया । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने यह अभिनिर्धारित करते हुए ऐसे आवेदन को खारिज कर दिया कि आरोप पत्र 90 दिनों के भीतर फाइल किया जाना चाहिए न कि 60 दिनों के भीतर । व्यतिक्रम जमानत आवेदन को नामंजूर करने के ऐसे आदेश से असंतुष्ट होकर आवेदक ने सेशन न्यायालय के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण आवेदन प्रस्तुत किया और पुनरीक्षण आवेदन भी खारिज हो गया । निचले न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों से असंतुष्ट होकर आवेदक ने इस न्यायालय के समक्ष यहां यह आवेदन दिया । न्यायालय के समक्ष विचारार्थ बिंदु यह है कि ऐसे मामले में, जहां अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की

धारा 467 के अधीन दंडनीयन अपराध से आरोपित किया गया है, वहां आरोप पत्र 60 दिनों या 90 दिनों के भीतर फाइल किया जाना चाहिए । उच्च न्यायालय द्वारा आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – जब कभी अभियुक्त को धारा 167 की उपधारा (1) के अधीन गिरफ्तार किया जाता है और न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है तो मजिस्ट्रेट ऐसी अभिरक्षा में अभियुक्त का निरोध कुल मिलाकर 15 दिनों से अनधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत कर सकेगा जैसा मजिस्ट्रेट ठीक समझे । तथापि, मजिस्ट्रेट 15 दिनों की अवधि से परे पुलिस की अभिरक्षा से भिन्न अभियुक्त व्यक्ति का निरोध प्राधिकृत कर सकेगा, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार हैं । किंतु कोई मजिस्ट्रेट 90 दिनों से अधिक कुल अवधि के लिए अभियुक्त व्यक्ति को अभिरक्षा में ऐसा अनुरोध प्राधिकृत नहीं करेगा, जहां अन्वेषण, मृत्यु, आजीवन कारावास या 10 वर्ष से अन्यून की अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध के संबंध में है और कोई मजिस्ट्रेट 60 दिनों से अधिक कुल अवधि के लिए अभिरक्षा में ऐसे अभियुक्त व्यक्ति का निरोध प्राधिकृत नहीं करेगा, जहां अन्वेषण किसी अन्य अपराध के संबंध में है । भारतीय दंड संहिता की धारा 467 के पढ़ने मात्र से यह दर्शित होता है कि अपराध, आजीवन कारावास या ऐसी अवधि के कारावास से जो 10 वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने का भी दायी होगा, से दंडनीय है । दूसरे शब्दों में, न्यायालय 10 वर्ष तक का दंडादेश अधिरोपित कर सकेगा, किंतु इस मामले में आजीवन कारावास का दंडादेश अधिनिर्णीत किया जा सकता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) के परंतुक के तीन भाग हैं । पहला, अभियुक्त व्यक्ति के निरोध को प्राधिकृत करने की मजिस्ट्रेट की शक्ति के संबंध में है । इस भाग के दो उपभाग हैं । सकारात्मक शब्दों में यह विहित करता है कि कोई मजिस्ट्रेट अभियुक्त को अभिरक्षा में इस पैराग्राफ के अधीन अर्थात् उपधारा (2)(क) के अधीन (i) कुल अवधि से अधिक 90 दिनों तक जहां अन्वेषण का संबंध मृत्यु, आजीवन कारावास या 10 वर्ष से अन्यून की अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध के संबंध में है, (ii) 60 दिनों की कुल अवधि के लिए जहां अन्वेषण का संबंध किसी अन्य अपराध के संबंध में है । 90 दिनों की अवधि ऐसे मामलों को लागू होती है, जहां अन्वेषण अपराधों के तीन प्रवर्गों के संबंध में है, जो (i) मृत्यु, (ii) आजीवन कारावास या (iii) 10 वर्ष से अन्यून की अवधि के कारावास, से दंडनीय हैं । प्रश्न यह है कि क्या

भारतीय दंड संहिता की धारा 467 आजीवन कारावास से "दंडनीय" अपराध है । इस मामले में, पर्याप्त दंड क्या होना चाहिए, विशिष्ट मामले में अंतर्वलित तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया जाना चाहिए । अभियुक्त व्यक्ति की दोषसिद्धि का आदेश अभिलिखित करने के पश्चात् ही दंडादेश अधिरोपित करने का प्रक्रम आता है । परंतुक में महत्वपूर्ण शब्द "दंडनीय" है । कानूनों में यथा प्रयुक्त "दंडनीय" शब्द जो यह घोषित करता है कि कतिपय अपराध, कतिपय रीति में दंडनीय है, का अभिप्राय अभिहित रीति से दंडित किया जाना है । साधारणतः इसे दंड के योग्य या पात्र या दायी, विधि या अधिकार द्वारा दंडित किए जाने योग्य, दंडित किया जाए या दंडित किए जाने का दायी और दंडित न किया जाए, के रूप में परिभाषित किया गया है । जहां न्यूनतम और अधिकतम दंडादेश विहित हैं, वहां दोनों मामलों के तथ्यों के आधार पर अधिरोपन योग्य हैं । न्यायालय दोषसिद्धि अभिलिखित करने के पश्चात् समुचित दंडादेश अधिरोपित करने के लिए स्वतंत्र हैं । भारतीय दंड संहिता की धारा 467 मजिस्ट्रेट द्वारा विचारण योग्य अपराध है, इसलिए अधिकतम दंडादेश जो मजिस्ट्रेट अधिरोपित कर सकता है, तीन वर्ष है और यदि अपराध मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय है तो अधिकतम दंडादेश जो अधिरोपित किया जा सकता है, सात वर्ष होगा । यह तर्क किया जा सकता है कि किसी भी दशा में आजीवन कारावास का दंडादेश अधिरोपित नहीं किया जा सकता । यह मुश्किल से कोई अंतर करता है । कानून ने आजीवन कारावास या ऐसा कारावास जो दस वर्ष तक का हो सकेगा, से दंडित करने का उपबंध करना ठीक समझा है । यह मामला दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2)(क)(i) के भीतर आता है और आरोप पत्र फाइल करने की कानूनी समयावधि इस पर विचार करते हुए 90 दिन होगी कि अभियुक्त भारतीय दंड संहिता की धारा 467 के अधीन दंडनीय अपराध का आरोपी है । (पैरा 14, 15, 16, 18 और 20)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2017] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 3948 :
राकेश कुमार पाल बनाम **असम राज्य** । 19

प्रभेदित निर्णय

[2011] 2011 क्रिमिनल ला जर्नल 3097 :
सोमनाथ और एक अन्य बनाम **पंजाब राज्य** । 7

आरंभिक (दांडिक) अधिकारिता : 2018 की विशेष दांडिक आवेदन (अभिखंडन) सं. 829.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन आवेदन ।

आवेदक की ओर से श्री मनन ए. शाह

प्रत्यर्थी की ओर से लोक अभियोजक ।

आदेश

भारत के संविधान अनुच्छेद 227 के अधीन इस आवेदन द्वारा, आवेदक – मूल अभियुक्त ने भारतीय दंड संहिता की धारा 465, 467, 468, 471, 413, 465 के साथ पठित 114 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए सूरत के रानदेर थाने में दर्ज 2017 की सी.आर. सं. आई.-31 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के संबंध में फाइल व्यतिक्रम जमानत आवेदन को खारिज करते हुए तद्द्वारा सूरत के दसवें अपर सिविल न्यायाधीश और अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश की पुष्टि करते हुए, 2017 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 457 में सूरत के दसवें अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित उस आदेश तारीख 6 जनवरी, 2018 जिसके द्वारा पुनरीक्षण न्यायालय ने इसमें आवेदक द्वारा फाइल पुनरीक्षण आवेदन को खारिज कर दिया था, की वैधता और विधिमान्यता को प्रश्नगत किया ।

2. अभिलेख की सामग्री से यह प्रतीत होता है कि 2017 की सी.आर. सं. आई.-31 वाली प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सूरत के रानदेर पुलिस थाने में भारतीय दंड संहिता की धारा 379 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए 11 मार्च, 2017 को दर्ज कराई गई ।

3. 26 सितंबर, 2017 को अन्वेषक अधिकारी ने विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में भारतीय दंड संहिता की धारा 465, 467, 468, 471, 413 के साथ पठित 114 के अधीन दंडनीय अपराधों को जोड़ने की रिपोर्ट फाइल की ।

4. इसमें आवेदक को लाजपोर केंद्रीय कारागार से अंतरण वारंट के द्वारा 26 सितंबर, 2017 को गिरफ्तार किया गया । 27 सितंबर, 2017 को आवेदक को न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग न्यायालय के समक्ष पेश किया गया जिन्होंने आवेदक को 29 सितंबर, 2017 तक पुलिस अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया । पुलिस रिमांड पूरा होने पर आवेदक को न्यायिक अभिरक्षा में रिमांड किए जाने का आदेश दिया गया । यह प्रतीत होता है

कि न्यायिक अभिरक्षा में 60 दिन की अवधि 25 नवंबर, 2017 को समाप्त हो गई । उस समय तक आरोप पत्र फाइल नहीं किया गया था । 14 दिसंबर, 2017 को आवेदक ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन आवेदन फाइल किया और व्यतिक्रम जमानत का अनुरोध किया । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने यह अभिनिर्धारित करते हुए ऐसे आवेदन को खारिज कर दिया कि आरोप पत्र 90 दिनों के भीतर फाइल किया जाना चाहिए न कि 60 दिनों के भीतर । व्यतिक्रम जमानत आवेदन को नामंजूर करने के ऐसे आदेश से असंतुष्ट होकर आवेदक ने सेशन न्यायालय के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण आवेदन प्रस्तुत किया और पुनरीक्षण आवेदन भी खारिज हो गया । निचले न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों से असंतुष्ट होकर आवेदक ने इस न्यायालय के समक्ष यहां यह आवेदन दिया ।

5. मेरे समक्ष विचारार्थ बिंदु यह है कि ऐसे मामले में, जहां अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 467 के अधीन दंडनीयन अपराध से आरोपित किया गया है, वहां आरोप पत्र 60 दिनों या 90 दिनों के भीतर फाइल किया जाना चाहिए ।

6. आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री शाह का यह निवेदन है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 467 के अधीन अपराध के लिए न्यायालय 10 वर्ष से कम की अवधि का दंडादेश दे सकता है । भारतीय दंड संहिता की धारा 467 में, यह उपबंध नहीं है कि न्यूनतम दंडादेश से कम नहीं होना चाहिए । श्री शाह ने यह निवेदन किया कि संहिता की धारा 167(2) के परंतुक के खंड (i) के अधीन, यदि अपराध के लिए न्यूनतम दंड 10 वर्ष से कम है तो ही आरोप पत्र फाइल करने के लिए 90 दिनों की अवधि लागू होगी । यदि अपराध 10 वर्ष तक की किसी अवधि के लिए दंडनीय है तो आरोप पत्र फाइल करने के लिए 60 दिनों की समय-सीमा होगी ।

7. अपने निवेदनों के समर्थन में, श्री शाह ने **सोमनाथ और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के एक विनिश्चय का अवलंब लिया जिसमें उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

"9. इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि अपराध मृत्यु, आजीवन

---

[1] 2011 क्रिमिनल ला जर्नल 3097.

कारावास या 10 वर्ष से कम की अवधि की कारावास से दंडनीय है तो अभियोजक अभिकरण द्वारा 90 दिनों के भीतर चालान प्रस्तुत किया जाए । तथापि, यदि अपराध मृत्यु, आजीवन कारावास या 10 वर्ष से कम की अवधि के कारावास से दंडनीय नहीं है तो चालान अभिरक्षा की तारीख से 60 दिनों के भीतर प्रस्तुत किया जाए ।

10. भारतीय दंड संहिता की धारा 467 इस प्रकार है –

> "467. **मूल्यवान प्रतिभूति, विल, इत्यादि की कूटरचना** – जो कोई किसी ऐसी दस्तावेज की, जिसका कोई मूल्यवान प्रतिभूति या विल या पुत्र के दत्तकग्रहण का प्राधिकार होना तात्पर्यित हो, अथवा जिसका किसी मूल्यवान प्रतिभूति की रचना या अंतरण का, या उस पर के मूलधन, ब्याज या लाभांश को प्राप्त करने का, या किसी धन, जंगम संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति को प्राप्त करने या परिदत्त करने का प्राधिकार होना तात्पर्यित हो, अथवा किसी दस्तावेज को, जिसका धन दिए जाने की अभिस्वीकृति करने वाला निस्तारणपत्र या रसीद होना, या किसी जंगम संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति के परिदान के लिए निस्तारणपत्र या रसीद होना तात्पर्यित हो, कूटरचना करेगा वह आजीवन कारावास से, या दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।"

11. निर्विवादतः, भारतीय दंड संहिता की धारा 467 के अधीन न्यायालय 10 वर्ष से कम अवधि का दंडादेश दे सकता है । धारा 467 यह उपबंध नहीं करती कि न्यूनतम दंडादेश 10 वर्ष से कम की नहीं होगी ।

12. इस न्यायालय की राय में, संहिता की धारा 167(2) के परंतुक के खंड (i) यदि किसी अपराध के लिए न्यूनतम दंड 10 वर्ष से कम नहीं है तो ही चालान फाइल करने के लिए 90 दिनों की अवधि लागू होगी, यदि अपराध 10 वर्ष तक की किसी अवधि के लिए दंडनीय है तो चालान पेश करने के लिए 60 दिन की अवधि लागू होगी । मुझे सोहन लाल **बनाम** राज्य, 1991 इलाहाबाद क्रिमिनल रिपोर्ट 383 वाले मामले में, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश और ओम प्रकाश गब्बर **बनाम** पंजाब राज्य,

1997 क्रिमिनल ला जर्नल 2974 (पंजाब और हरियाणा) वाले मामले में, इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ के निर्णय से समर्थन प्राप्त होता है । इस न्यायालय ने **ओम प्रकाश गब्बर** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 4 और 5 में इस प्रकार मत व्यक्त किया गया :–

4. यह उपबंध **सोहन लाल** (उपरोक्त) वाले मामले में, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष विचारार्थ उद्भूत हुआ । इसकी विवक्षा पर चर्चा करने के पश्चात् विद्वान् न्यायाधीश ने इस प्रकार मत व्यक्त किया–

> "दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2)(क) में, यह अभिकथित है कि मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति का पुलिस अभिरक्षा से अन्यथा निरोध 15 दिन की अवधि से आगे के लिए उस दशा में प्राधिकृत कर सकता है जिसमें उसका यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार है । किंतु निरोध की कुल अवधि 90 दिन से अधिक नहीं होगी, जहां अन्वेषण मृत्यु/आजीवन कारावास या 10 वर्ष से अन्यून की अवधि के संबंध में है । यदि अन्वेषण किसी अन्य अपराध के संबंध में है तो निरोध की कुल अवधि 60 दिन से अधिक नहीं होती । '10 वर्ष से अन्यून की अवधि के लिए कारावास' का यह अर्थ है कि न्यूनतम दंड 10 वर्ष होगी । '10 वर्ष से अन्यून' पद को '10 वर्ष तक' के पद से भ्रमित नहीं होना चाहिए । ऐसे मामले में जहां अधिकतम दंड 10 वर्ष तक है, निरोध की अवधि, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन अनुज्ञेय है, केवल 60 दिन है ।"

हमारे विवेक से, उपरोक्त पैरा पूर्णतः संहिता की धारा 167(2) के उपबंधों के स्पष्ट आशय का संक्षेप में उल्लेख करता है ।

5. विद्वान् राज्य काउंसेल श्री रंधावा ने, **तेजेन्दर सिंह देशंज** (उपरोक्त) वाले मामले के विनिश्चय का अवलंब लिया । यह सही है कि विनिश्चय राज्य काउंसेल के पक्ष में है किंतु हम यह पाते हैं कि विद्वान् न्यायाधीश ने मामले पर गहनता से विचार नहीं किया और धारा के शब्दों को दोहराकर सीधे अपना

निष्कर्ष निकाला । हमारी यह राय है कि दो भिन्न-भिन्न स्थितियों और ऐसे अपराधों में, जहां '10 वर्ष तक के दंडादेश' के कारावास का उपबंध है, चालान 60 दिनों के भीतर पारित किया जाना चाहिए और ऐसे मामलों में, जहां उपबंधित दंडादेश (भारतीय दंड संहिता की धारा 304, 305, 307, 313 आदि के दृष्टांत द्वारा) 10 वर्ष से अन्यून है, वहां चालान 90 दिनों के भीतर फाइल किया जाना चाहिए । तद्नुसार, हम निर्देश का उत्तर इस प्रकार देते हैं–

> "संहिता की धारा 167(2)(क)(i) में आने वाले '10 वर्ष से अन्यून की अवधि के लिए कारावास' शब्द का यह अभिप्राय है कि उपबंधित न्यूनतम दंड 10 वर्ष होना चाहिए ।

उपरोक्त अभिलिखित कारणों से हमारी यह राय है कि **तेजिन्दर सिंह देशंज** (उपरोक्त) वाले मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश का निर्णय सही विधि का अधिकथन नहीं करता और इसे उलटा जाता है । तद्नुसार, हम **सोहन लाल** (उपरोक्त) वाले मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्वचन को स्वीकार करते हैं ।"

8. उपरोक्त निर्दिष्ट ऐसी परिस्थितियों में श्री शाह का यह अनुरोध है कि निचले न्यायालयों ने गलती की और व्यतिक्रम जमानत पर आवेदक को छोड़ने का आदेश दिया जाना चाहिए था ।

9. दूसरी ओर राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान् अपर लोक अभियोजक द्वारा जोरदार रूप से इस आवेदन का विरोध किया गया । विद्वान् अपर लोक अभियोजक ने यह निवेदन किया कि व्यतिक्रम जमानत के प्रयोजन के लिए यह देखना अधिक महत्वपूर्ण है कि आरोपित अपराध के लिए जितना अधिकतम दंड अधिरोपित किया जा सकता है । यह निवेदन किया गया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 467 आजीवन कारावास या ऐसे कारावास से जो 10 वर्ष तक हो सकेगा और जुर्माने से दंडनीय है ।

10. यदि दंड आजीवन कारावास है तो आरोप पत्र फाइल करने की अवधि 90 दिन होगी न कि 60 दिन । उपरोक्त निर्दिष्ट ऐसी परिस्थितियों में विद्वान् अपर लोक अभियोजन का यह निवेदन है कि इस आवेदन में कोई सार न होने के कारण इसे खारिज किया जाए ।

11. पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेलों की सुनवाई करने और अभिलेख की सामग्री पर विचार करने के पश्चात् मेरे विचारार्थ केवल यह प्रश्न है कि क्या ऐसे मामले जिसमें अभियुक्त भारतीय दंड संहिता की धारा 467 के अधीन दंडनीय अपराध से आरोपित है, आरोप पत्र 60 दिनों या 90 दिनों के भीतर फाइल किया जाना चाहिए ।

12. भारतीय दंड संहिता की धारा 467 इस प्रकार है :–

"467. **मूल्यवान प्रतिभूति, बिल, इत्यादि की कूटरचना** – जो कोई किसी ऐसी दस्तावेज की, जिसका कोई मूल्यवान प्रतिभूति या बिल या पुत्र के दत्तकग्रहण का प्राधिकार होना तात्पर्यित हो, अथवा जिसका किसी मूल्यवान प्रतिभूति की रचना या अंतरण का, या उस पर के मूलधन, ब्याज या लाभांश को प्राप्त करने का, या किसी धन, जंगम संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति को प्राप्त करने या परिदत्त करने का प्राधिकार होना तात्पर्यित हो, अथवा किसी दस्तावेज को, जिसका धन दिए जाने की अभिस्वीकृति करने वाला निस्तारणपत्र या रसीद होना, या किसी जंगम संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति के परिदान के लिए निस्तारणपत्र या रसीद होना तात्पर्यित हो, कूटरचना करेगा वह आजीवन कारावास से, या दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।"

13. सुविधा की दृष्टि से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 की उपराध (1) और (2) को यहां उद्धृत किया जा रहा है :–

"167. जब चौबीस घंटे के अंदर अन्वेषण पूरा न किया जा सके तब प्रक्रिया – (1) जब कभी कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया गया है और अभिरक्षा में निरुद्ध है और यह प्रतीत हो कि अन्वेषण धारा 57 द्वारा नियत चौबीस घंटे की अवधि के अंदर पूरा नहीं किया जा सकता और यह विश्वास करने के लिए आधार है कि अभियोग या इत्तिला दृढ़ आधार पर है तब पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी या यदि अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी उपनिरीक्षक से निम्नतर पंक्ति का नहीं है तो वह, निकटतम न्यायिक मजिस्ट्रेट को इसमें इसके पश्चात् विहित डायरी की मामले में संबंधित प्रविष्टियों की एक प्रतिलिपि भेजेगा और साथ ही अभियुक्त व्यक्ति को भी उस मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा ।

(2) वह मजिस्ट्रेट, जिसके पास अभियुक्त व्यक्ति इस धारा के अधीन भेजा जाता है, चाहे उस मामले के विचारण की उसे अधिकारिता हो या न हो, अभियुक्त का ऐसी अभिरक्षा में, जैसी वह मजिस्ट्रेट ठीक समझे इतनी अवधि के लिए, जो कुल मिलाकर पंद्रह दिन से अधिक न होगी, निरुद्ध किया जाना समय-समय पर प्राधिकृत कर सकता है तथा यदि उसे मामले के विचारण की या विचारण के लिए सुपुर्द करने की अधिकारिता नहीं है और अधिक निरुद्ध रखना उसके विचार में अनावश्यक है तो वह अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास, जिसे ऐसी अधिकारिता है, भिजवाने के लिए आदेश दे सकता है :

परंतु –

(क) मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति का पुलिस अभिरक्षा से अन्यथा निरोध पंद्रह दिन की अवधि से आगे के लिए उस दशा में प्राधिकृत कर सकता है जिसमें उसका समाधान हो जाता है कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार है, किंतु कोई भी मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति का इस पैरा के अधीन अभिरक्षा में निरोध, –

(i) कुल मिलाकर नब्बे दिन से अधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा जहां अन्वेषण ऐसे अपराध के संबंध में है जो मृत्यु, आजीवन कारावास या दस वर्ष से अन्यून की अवधि के लिए कारावास से दंडनीय है ;

(ii) कुल मिलाकर साठ दिन से अधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा जहां अन्वेषण किसी अन्य अपराध के संबंध में है ;

और, यथास्थिति, नब्बे दिन या साठ दिन की उक्त अवधि की समाप्ति पर यदि अभियुक्त व्यक्ति जमानत देने के लिए तैयार है और दे देता है तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा और यह समझा जाएगा कि इस उपधारा के अधीन जमानत पर छोड़ा गया प्रत्येक व्यक्ति अध्याय 33 के प्रयोजनों के लिए उस अध्याय के उपबंधों के अधीन छोड़ा गया है ;

(ख) कोई मजिस्ट्रेट इस धारा के अधीन किसी अभियुक्त

का पुलिस अभिरक्षा में निरोध तब तक प्राधिकृत नहीं करेगा जब तक कि अभियुक्त उसके समक्ष पहली बार और तत्पश्चात् हर बार, जब तक अभियुक्त पुलिस की अभिरक्षा में रहता है, व्यक्तिगत रूप से पेश नहीं किया जाता है किंतु मजिस्ट्रेट अभियुक्त के या तो व्यक्तिगत रूप से या इलैक्ट्रोनिक दृश्य संपर्क के माध्यम से पेश किए जाने पर न्यायिक अभिरक्षा में निरोध को और बढ़ा सकेगा ।

(ग) कोई द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट, जो उच्च न्यायालय द्वारा इस निमित्त विशेषतया सशक्त नहीं किया गया है, पुलिस की अभिरक्षा में निरोध प्राधिकृत न करेगा ।

स्पष्टीकरण 1 – शंकाएं दूर करने के लिए इसके द्वारा यह घोषित किया जाता है कि पैरा (क) में विनिर्दिष्ट अवधि समाप्त हो जाने पर भी अभियुक्त-व्यक्ति तब तक अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जाएगा जब तक कि वह जमानत नहीं दे देता है ।

स्पष्टीकरण 2 – यदि यह प्रश्न उठता है कि क्या कोई अभियुक्त व्यक्ति मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया था, जैसाकि पैरा (ख) के अधीन अपेक्षित है, तो अभियुक्त व्यक्ति की पेशी को, यथास्थिति, निरोध प्राधिकृत करने वाले आदेश पर उसके हस्ताक्षर से या मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त व्यक्ति की इलैक्ट्रोनिक दृश्य संपर्क के माध्यम से पेशी के बारे में प्रमाणित आदेश द्वारा साबित किया जा सकता है ।"

14. उपरोक्त उद्धृत उपबंधों के अनुसार जब कभी अभियुक्त को धारा 167 की उपधारा (1) के अधीन गिरफ्तार किया जाता है और न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है तो मजिस्ट्रेट ऐसी अभिरक्षा में अभियुक्त का निरोध कुल मिलाकर 15 दिनों से अनधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत कर सकेगा जैसा मजिस्ट्रेट ठीक समझे । तथापि, मजिस्ट्रेट 15 दिनों की अवधि से परे पुलिस की अभिरक्षा से भिन्न अभियुक्त-व्यक्ति का निरोध प्राधिकृत कर सकेगा, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार हैं । किंतु कोई मजिस्ट्रेट 90 दिनों से अधिक कुल अवधि के लिए अभियुक्त-व्यक्ति को अभिरक्षा में ऐसा अनुरोध प्राधिकृत नहीं करेगा, जहां अन्वेषण, मृत्यु, आजीवन कारावास या 10 वर्ष से अन्यून की अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध के संबंध में है और

कोई मजिस्ट्रेट 60 दिनों से अधिक कुल अवधि के लिए अभिरक्षा में ऐसे अभियुक्त-व्यक्ति का निरोध प्राधिकृत नहीं करेगा, जहां अन्वेषण किसी अन्य अपराध के संबंध में है ।

15. भारतीय दंड संहिता की धारा 467 के पढ़ने मात्र से यह दर्शित होता है कि अपराध, आजीवन कारावास या ऐसी अवधि के कारावास से जो 10 वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने का भी दायी होगा, से दंडनीय है । दूसरे शब्दों में, न्यायालय 10 वर्ष तक का दंडादेश अधिरोपित कर सकेगा, किंतु इस मामले में आजीवन कारावास का दंडादेश अधिनिर्णीत किया जा सकता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) के परंतुक के तीन भाग हैं । पहला, अभियुक्त-व्यक्ति के निरोध को प्राधिकृत करने की मजिस्ट्रेट की शक्ति के संबंध में है । इस भाग के दो उपभाग हैं । सकारात्मक शब्दों में यह विहित करता है कि कोई मजिस्ट्रेट अभियुक्त को अभिरक्षा में इस पैरा के अधीन अर्थात् उपधारा (2)(क) के अधीन (i) कुल अवधि से अधिक 90 दिनों तक जहां अन्वेषण का संबंध मृत्यु, आजीवन कारावास या 10 वर्ष से अन्यून की अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध के संबंध में है, (ii) 60 दिनों की कुल अवधि के लिए जहां अन्वेषण का संबंध किसी अन्य अपराध के संबंध में है । 90 दिनों की अवधि ऐसे मामलों को लागू होती है, जहां अन्वेषण अपराधों के तीन प्रवर्गों के संबंध में है, जो (i) मृत्यु, (ii) आजीवन कारावास या (iii) 10 वर्ष से अन्यून की अवधि के कारावास, से दंडनीय हैं । प्रश्न यह है कि क्या भारतीय दंड संहिता की धारा 467 आजीवन कारावास से "दंडनीय" अपराध है ।

16. इस मामले में, पर्याप्त दंड क्या होना चाहिए, विशिष्ट मामले में अंतर्वलित तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया जाना चाहिए । अभियुक्त व्यक्ति की दोषसिद्धि का आदेश अभिलिखित करने के पश्चात् ही दंडादेश अधिरोपित करने का प्रक्रम आता है । परंतुक में महत्वपूर्ण शब्द "दंडनीय" है । कानूनों में यथा प्रयुक्त "दंडनीय" शब्द जो यह घोषित करता है कि कतिपय अपराध, कतिपय रीति में दंडनीय है, का अभिप्राय अभिहित रीति से दंडित किया जाना है । साधारणतः इसे दंड के योग्य या पात्र या दायी, विधि या अधिकार द्वारा दंडित किए जाने योग्य, दंडित किया जाए या दंडित किए जाने का दायी और दंडित न किया जाए, के रूप में परिभाषित किया गया है ।

17. बोवियर लॉ डिक्शनरी में "दंडनीय" शब्द का अर्थ "दंड के लिए दायी" के रूप में लिया गया है । "वर्डस एंड फ्रेजेज" (स्थायी संस्करण) में निम्नलिखित अर्थ दिया गया है :–

> "कानून में 'दंडनीय' शब्द में यह उल्लेख है कि अपराध अभिहित शास्ति या राज्य कारागार सीमा शास्ति में वर्ष की अवधि या कानून में कथित वर्षों की अवधि या समय द्वारा दंडनीय है ।"

'कार्पस जुरिस सेकंडम' में यह अर्थ दिया गया है –

> 'दंड के योग्य या दंड का दायी' ; कथित व्यक्तियों या अपराधों के संबंध में विधि या अधिकार द्वारा दंडित किए जाने के योग्य । पद का अर्थ 'दंडित किया जाए' नहीं है बल्कि 'दंडित किया जा सकता है' या 'दंडित किए जाने का दायी है' ।"

18. जहां न्यूनतम और अधिकतम दंडादेश विहित हैं, वहां दोनों मामलों के तथ्यों के आधार पर अधिरोपन योग्य हैं । न्यायालय दोषसिद्धि अभिलिखित करने के पश्चात् समुचित दंडादेश अधिरोपित करने के लिए स्वतंत्र हैं । इस प्रक्रम पर यह तर्क किया जा सकता है कि क्योंकि भारतीय दंड संहिता की धारा 467 मजिस्ट्रेट द्वारा विचारण योग्य अपराध है, इसलिए अधिकतम दंडादेश जो मजिस्ट्रेट अधिरोपित कर सकता है, तीन वर्ष है और यदि अपराध मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय है तो अधिकतम दंडादेश जो अधिरोपित किया जा सकता है, सात वर्ष होगा । यह तर्क किया जा सकता है कि किसी भी दशा में आजीवन कारावास का दंडादेश अधिरोपित नहीं किया जा सकता । यह मुश्किल से कोई अंतर करता है । कानून ने आजीवन कारावास या ऐसा कारावास जो दस वर्ष तक का हो सकेगा, से दंडित करने का उपबंध करना ठीक समझा है ।

19. **राकेश कुमार पाल** बनाम **असम राज्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के बहुत हाल ही के निर्णय में विधि को बहुत विस्तार से स्पष्ट किया गया है । उक्त मामले में बहुमत यह है कि संहिता की धारा 167(2)(क)(i) केवल उन्हीं मामलों में लागू है, जहां अभियुक्त (i) मृत्यु और किसी कम दंडादेश से दंडनीय अपराधों ; (ii) आजीवन कारावास और किसी कम दंडादेश से दंडनीय अपराधों और (iii) न्यूनतम दस वर्ष के

---

[1] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 3948.

दंडादेश से दंडनीय अपराध से आरोपित है । सभी मामलों में, जहां न्यूनतम दंडादेश 10 वर्ष से कम है किंतु अधिकतम दंडादेश मृत्यु या आजीवन कारावास नहीं है, वहां धारा 167(2)(क)(ii) लागू होगी और अभियुक्त आरोप पत्र फाइल न किए जाने की दशा में 60 दिनों के पश्चात् "व्यतिक्रम जमानत" की मंजूरी का हकदार होगा ।

20. यह मामला दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2)(क)(i) के भीतर आता है और आरोप पत्र फाइल करने की कानूनी समयावधि इस पर विचार करते हुए 90 दिन होगी कि अभियुक्त भारतीय दंड संहिता की धारा 467 के अधीन दंडनीय अपराध का आरोपी है ।

21. आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंबित पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय का विनिश्चय विधि की सही प्रतिपादना अधिकथित नहीं करता ।

22. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए यह आवेदन असफल रहता है और खारिज किया जाता है ।

आवेदन खारिज किया गया ।

पा.

राधा मूरा

बनाम

असम राज्य और एक अन्य

तारीख 4 अप्रैल, 2018

मुख्य न्यायमूर्ति अजीत सिंह और न्यायमूर्ति मनोजित भुयान

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304, भाग-II [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या की कोटि में न आने वाला मानव वध – संदेह का लाभ – अभियुक्तों द्वारा अपने जीजा पर लाठी और डंडों से अभिकथित रूप से हमला किया जाना – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य की ग्राम प्रधान के परिसाक्ष्य और चिकित्सीय साक्ष्य से संपुष्टि न होना – मृतक की पत्नी का पक्षद्रोही हो जाना – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी ने हमला होते हुए देखा है किन्तु सहायता के लिए शोर नहीं मचाया और यदि उसने भय के कारण ऐसा किया है तो अपने परिक्षेत्र में जाकर किसी को सहायता के लिए नहीं पुकारना उसका एक अस्वाभाविक कृत्य है, साथ ही इस साक्षी ने मृतक पर लाठी और डंडों से हमला किया जाना बताया है जबकि चिकित्सीय साक्ष्य से नुकीले और धारदार आयुध से क्षति कारित किए जाने का पता चलता है, ऐसी स्थिति में प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य संदिग्ध हो जाता है और इस आधार पर अभियुक्तों की दोषसिद्धि न्यायोचित नहीं है ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 27 – प्रकटीकरण कथन की ग्राह्यता – अपराध में प्रयोग किए गए आयुधों का सड़क के किनारे पाया जाना – अभियुक्तों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को भी शव और आयुधों की जानकारी होना – शव और आयुधों को छिपाकर नहीं रखा गया बल्कि वे लोगों को सड़क के किनारे पड़े हुए स्पष्ट दिखाई दे रहे थे, ऐसी स्थिति में पुलिस के समक्ष अभियुक्तों द्वारा दिया गया प्रकटीकरण कथन अभियोजन पक्ष के लिए सहायक नहीं हो सकता ।

इस घटना में आहत होने वाले व्यक्ति संजीब मूरा **उर्फ** बन्द्रे, आयु 32 वर्ष है । वह अपीलार्थियों का जीजा/साला है । आहत और अपीलार्थी ग्राम ठेकरागुड़ी, जिला डिब्रूगढ़, असम के निवासी हैं । अभियोजन पक्षकथन के अनुसार, अपीलार्थी की बहिन सीता मूरा (अभि. सा. 4) का विवाह संजीब

मूरा के साथ हुआ था । तारीख 15 जुलाई, 2012 को लगभग 8 बजे अपराह्न में संजीब मूरा शराब के नशे में अपीलार्थियों के घर आया और उसने शोर-शराबा किया । अपीलार्थियों ने संजीब को शांत करने का प्रयास किया किन्तु वे असफल रहे । परिणामस्वरूप अपीलार्थी बेकाबू हो गए और उन्होंने संजीब पर लाठियों और डंडों से हमला किया और जब संजीब गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हो गया, तब उन्होंने संजीब के हाथ-पैर रस्सी से बांध दिए और उसे दिकसम नदी के निकट ले आए और नदी के किनारे पर उसे फेंक दिया । बबलू मूरा (अभि. सा. 3), जो अपीलार्थियों के घर के निकट रहता था, चीख-पुकार की आवाज सुनकर अपने घर के बाहर आया और उसने अपीलार्थियों को संजीब पर लाठियों और डंडों से हमला करते हुए देखा । बबलू मूरा ने ग्राम प्रधान तिलेश्वर बकालियल (अभि. सा. 1) को घटना के बारे में सूचना दी । इसके पश्चात्, अपीलार्थी अबु मूरा भी तिलेश्वर के घर आ गया और उसने यह संस्वीकृत किया कि उसने और अन्य दो अपीलार्थियों ने मिलकर संजीब की हत्या की है । वह तिलेश्वर को शव के पास भी ले गया । अगले दिन प्रातःकाल अर्थात् तारीख 16 जुलाई, 2012 को तिलेश्वर ने अबु मूरा को अपने साथ लिया और संजीब का शव ग्रामवासियों को सौंपकर राजगढ़ पुलिस थाने गया । पुलिस थाने में तिलेश्वर ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श 2) दर्ज कराई । जिबेन्द्र ब्रह्मा (अभि. सा. 7) राजगढ़ पुलिस थाने का प्रभारी है जिसने अबु मूरा का कथन अभिलिखित किया जिसके अनुसार उसने संजीब के शव के निकट पड़े दाउ और डंडों को अभिगृहीत किया । अभि. सा. 7 ने तिलेश्वर, चन्द्र बहादुर तमंग (अभि. सा. 5) और पीटर सिबेस्टीन मिंज (अभि. सा. 6) की मौजूदगी में घटनास्थल से रस्सियां भी अभिगृहीत कीं । इसके पश्चात्, जिबेन्द्र ब्रह्मा ने संजीब के शव को शवपरीक्षण के लिए भेज दिया । डा. शुभज्योति डेका (अभि. सा. 2) ने संजीब मूरा के शव का शवपरीक्षण किया । उसने शव पर 13 क्षतियां देखीं जो धारदार नुकीले और कुन्द आयुध से कारित की गई थीं । क्षति सं. 2 नुकीले धारदार आयुध से वेधकर कारित की गई है, क्षति सं. 9 और 13 भी धारदार आयुध से कारित की गई है और क्षति सं. 1, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 10, 11 और 12 कुन्द आयुध से कारित की गई हैं । इस साक्षी के अनुसार आघात और क्षतियों से होने वाले रक्तस्राव के कारण मृत्यु हुई है । डा. शुभज्योति डेका द्वारा तैयार की गई शवपरीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श 4 है । जिबेन्द्र ब्रह्मा ने अन्वेषण पूर्ण करने के पश्चात् सभी अपीलार्थियों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध के लिए आरोप पत्र (प्रदर्श 7) प्रस्तुत किया । विचारण के

दौरान, अपीलार्थियों ने मिथ्या फंसाये जाने का अभिवाक् किया । अपीलार्थियों के अनुसार, उन्हें घटना के अगले दिन बिना किसी कारण के उनके घर से गिरफ्तार किया गया था । किन्तु विचारण न्यायालय ने, तिलेश्वर और बबलू तथा तिलेश्वर के समक्ष दिए गए अबु मूरा (अपीलार्थी) के न्यायेतर संस्वीकृति कथन और पुलिस के समक्ष दिए गए प्रकटीकरण कथन जिसके आधार पर संजीब के शव और अपराध में प्रयोग किए गए आयुधों का पता चला था, अपीलार्थियों को उपरोक्त रूप में दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया । दोषसिद्धि के इस आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष दो अपीलें फाइल की गई हैं । अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् हमारा यह मत है कि अपीलार्थियों के अपने-अपने काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों में पर्याप्त बल है और इसीलिए तीनों अपीलें मंजूर किए जाने योग्य हैं । बबलू ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि घटना की रात्रि में लगभग 9 बजे जब वह अपने मकान में सोया हुआ था, तब उसने चीख-पुकार की आवाज सुनी और अपने घर से बाहर आया और उसने देखा कि अपीलार्थी संजीब पर हमला कर रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई । इस साक्षी के पुलिस केस डायरी में लिखे हुए कथन के अनुसार उसने अपीलार्थियों को संजीब पर लाठियों और डंडों से हमला करते हुए देखा था । तथापि, बबलू ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि वह न तो उसे बचाने और न ही वह शव के निकट गया था और न ही वह यह बता सकता है कि किस अपीलार्थी ने संजीब मूरा पर किस ओर से हमला किया था । इस साक्षी ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने तिलेश्वर को घटना के बारे में सूचित किया था । किन्तु, तिलेश्वर ने उसे सूचना दिए जाने के संबंध में बबलू के साक्ष्य की संपुष्टि नहीं की है । तिलेश्वर के अनुसार, अबु मूरा ही उसके घर आया था और संजीब मूरा का शव पड़े होने के बारे में बताया था । यदि बबलू ने वास्तव में घटना देखी होती और अपीलार्थियों को संजीब मूरा पर हमला होते हुए देखा होता तब वह स्वाभाविक रूप से हस्तक्षेप करने का प्रयास करता । यदि यह मान लिया जाए कि उसने भय के कारण हस्तक्षेप नहीं किया, तब भी वह अपने परिक्षेत्र में शोरगुल अवश्य करता और इस घटना को बहुत से लोग देख लेते । किन्तु मुश्किल से ही इस घटना को उस परिक्षेत्र के अन्य किसी व्यक्ति ने देख लिया । यह स्वाभाविक है कि

संजीब मूरा पर लाठियों और डंडों से हमला करने, उसके रस्सी से हाथ-पैर बांधने और उसे एक साथ नदी के किनारे तक ले जाकर फेंकने में पर्याप्त समय लगा होगा । इस प्रक्रिया के दौरान यह अत्यंत संभावी है कि उस परिक्षेत्र के किसी भी व्यक्ति ने इस घटना को नहीं देखा और न ही बबलू को संजीब मूरा को बचाने के लिए शोरगुल करने का अवसर मिला और न ही वह संजीब मूरा के निकट आकर यह पता लगा सका कि वह मृत है या जीवित या उसे किसी प्रकार की चिकित्सीय सहायता की आवश्यता है या नहीं । इसके प्रतिकूल, वह मूक दर्शक बना रहा । बबलू के इस अप्राकृतिक आचरण से उसके साक्ष्य की विश्वसनीयता संदिग्ध हो जाती है और उसका साक्ष्य इस संबंध में अन्य साक्ष्य से संपुष्टि न किए जाने के कारण अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है । इसके अतिरिक्त, बबलू के परिसाक्ष्य का समर्थन चिकित्सीय साक्ष्य से नहीं होता है क्योंकि चिकित्सीय साक्ष्य से यह पता चलता है कि संजीब के शरीर पर जो क्षतियां कारित हुई थीं वे नुकीले धारदार आयुध से पहुंचाई गई थीं जब कि उसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अपीलार्थियों ने संजीब पर केवल लाठियों और डंडों से हमला किया था । (पैरा 10)

बबलू के अनुसार, संजीब मूरा का शव अगले दिन प्रातःकाल पुलिस के पहुंचने तक उसके घर के सामने खुले आम पडा हुआ था । जिबेन्द्र ब्रह्मा द्वारा तैयार किए गए नक्शे से भी यह स्पष्ट होता है कि शव और अपराध में प्रयोग किए गए आयुध सड़क के किनारे पड़े हुए थे जिन पर पुलिस के वहां पहुंचकर अभिगृहीत करने तक लोगों को स्पष्ट दिखाई दे रहे थे । अतः, यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें अपराध में प्रयोग किए गए आयुध तथा शव को किसी एक अपीलार्थी द्वारा दिए गए प्रकटीकरण कथन के आधार पर बरामद किया गया हो और न ही वह स्थान कोई ऐसा स्थान था जिसका पता केवल अबु मूरा को मालूम था । जब संजीब मूरा का शव और अपराध में प्रयोग किए गए आयुधों को छिपाकर नहीं रखा गया बल्कि वे सड़क के किनारे लोगों को स्पष्ट पड़े हुए दिखाई दे रहे थे, तब ऐसी स्थिति में पुलिस के समक्ष अबु मूरा द्वारा दिया गया प्रकटीकरण कथन अभियोजन पक्ष के किसी काम का नहीं है । जहां तक तिलेश्वर के समक्ष अबु मूरा द्वारा दिए गए न्यायेतर संस्वीकृति कथन का संबंध है, वह भी संदिग्ध है । यद्यपि, सबसे पहले तिलेश्वर ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि पुलिस थाने जाते समय अबु मूरा ने उसे यह बताया था कि सभी अपीलार्थियों ने संजीब मूरा पर लाठियों से हमला करके उसकी हत्या की

है, किन्तु उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में इस बात से इनकार किया है । तिलेश्वर ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि अबु मूरा ने उस स्थान के सिवाय कुछ नहीं कहा था जहां पर संजीब मूरा का शव पड़ा हुआ था । तिलेश्वर के इस असंगत परिसाक्ष्य से उसका साक्ष्य संदिग्ध हो जाता है और वह विश्वसनीय नहीं रह जाता जिसके आधार पर दोषसिद्धि नहीं की जा सकती । (पैरा 11 और 12)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 69 (जे) और 71 (जे).

सेशन विचारण न्यायालय, डिब्रूगढ़, आसाम के दोषसिद्धि के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री जैड हुसैन (न्यायमित्र)

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री जे. जहां, अपर लोक अभियोजक

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति अजीत सिंह ने दिया ।

मु. न्या. सिंह – 2014 की दांडिक अपील सं. 69 (जे.) में पारित निर्णय द्वारा 2014 की दांडिक अपील सं. 70(जे) और 71 (जे) को भी विनिश्चित किया जाएगा क्योंकि दोनों ही अपीलें एक ही निर्णय द्वारा उद्भूत हैं और उनकी सुनवाई भी एक साथ की गई थी ।

2. तीनों अपीलार्थी अर्थात् राघा मूरा, अबु मूरा और जितेन मूरा को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 304, भाग-I के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और आजीवन कारावास और 2,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया गया ।

3. इस घटना में आहत होने वाले व्यक्ति संजीब मूरा **उर्फ** बन्द्रे, आयु 32 वर्ष है । वह अपीलार्थियों का जीजा/साला है । आहत और अपीलार्थी ग्राम ठेकरागुड़ी, जिला डिब्रूगढ़, असम के निवासी हैं ।

4. अभियोजन पक्षकथन के अनुसार, अपीलार्थी की बहिन सीता मूरा (अभि. सा. 4) का विवाह संजीब मूरा के साथ हुआ था । तारीख 15 जुलाई, 2012 को लगभग 8 बजे अपराह्न में संजीब मूरा शराब के नशे में अपीलार्थियों के घर आया और उसने शोर-शराबा किया । अपीलार्थियों ने संजीब को शांत करने का प्रयास किया किन्तु वे असफल रहे ।

परिणामस्वरूप अपीलार्थी बेकाबू हो गए और उन्होंने संजीब पर लाठियों और डंडों से हमला किया और जब संजीब गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हो गया, तब उन्होंने संजीब के हाथ-पैर रस्सी से बांध दिए और उसे दिकसम नदी के निकट ले आए और नदी के किनारे पर उसे फेंक दिया । बबलू मूरा (अभि. सा. 3), जो अपीलार्थियों के घर के निकट रहता था, चीख-पुकार की आवाज सुनकर अपने घर के बाहर आया और उसने अपीलार्थियों को संजीब पर लाठियों और डंडों से हमला करते हुए देखा । बबलू मूरा ने ग्राम प्रधान तिलेश्वर बकालियल (अभि. सा. 1) को घटना के बारे में सूचना दी । इसके पश्चात्, अपीलार्थी अबु मूरा भी तिलेश्वर के घर आ गया और उसने यह संस्वीकृत किया कि उसने और अन्य दो अपीलार्थियों ने मिलकर संजीब की हत्या की है । वह तिलेश्वर को शव के पास भी ले गया । अगले दिन प्रातःकाल अर्थात् तारीख 16 जुलाई, 2012 को तिलेश्वर ने अबु मूरा को अपने साथ लिया और संजीब का शव ग्रामवासियों को सौंपकर राजगढ़ पुलिस थाने गया । पुलिस थाने में तिलेश्वर ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श 2) दर्ज कराई ।

5. जिबेन्द्र ब्रह्मा (अभि. सा. 7) राजगढ़ पुलिस थाने का प्रभारी है जिसने अबु मूरा का कथन अभिलिखित किया जिसके अनुसार उसने संजीब के शव के निकट पड़े दाउ और डंडों को अभिगृहीत किया । अभि. सा. 7 ने तिलेश्वर, चन्द्र बहादुर तमंग (अभि. सा. 5) और पीटर सिबेस्टीन मिंज (अभि. सा. 6) की मौजूदगी में घटनास्थल से रस्सियां भी अभिगृहीत कीं । इसके पश्चात्, जिबेन्द्र ब्रह्मा ने संजीब के शव को शवपरीक्षण के लिए भेज दिया ।

6. डा. शुभज्योति डेका (अभि. सा. 2) ने संजीब मूरा के शव का शवपरीक्षण किया । उसने शव पर 13 क्षतियां देखीं जो धारदार नुकीले और कुन्द आयुध से कारित की गई थीं । क्षति सं. 2 नुकीले धारदार आयुध से वेधकर कारित की गई है, क्षति सं. 9 और 13 भी धारदार आयुध से कारित की गई है और क्षति सं. 1, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 10, 11 और 12 कुन्द आयुध से कारित की गई हैं । इस साक्षी के अनुसार आघात और क्षतियों से होने वाले रक्तस्राव के कारण मृत्यु हुई है । डा. शुभज्योति डेका द्वारा तैयार की गई शवपरीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श 4 है ।

7. जिबेन्द्र ब्रह्मा ने अन्वेषण पूर्ण करने के पश्चात् सभी अपीलार्थियों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध के लिए आरोप-

पत्र (प्रदर्श 7) प्रस्तुत किया । विचारण के दौरान, अपीलार्थियों ने मिथ्या फंसाये जाने का अभिवाक् किया । अपीलार्थियों के अनुसार, उन्हें घटना के अगले दिन बिना किसी कारण के उनके घर से गिरफ्तार किया गया था ।

8. किन्तु विचारण न्यायालय ने, तिलेश्वर और बबलू तथा तिलेश्वर के समक्ष दिए गए अबु मूरा (अपीलार्थी) के न्यायेतर संस्वीकृति कथन और पुलिस के समक्ष दिए गए प्रकटीकरण कथन जिसके आधार पर संजीब के शव और अपराध में प्रयोग किए गए आयुधों का पता चला था, अपीलार्थियों को उपरोक्त रूप में दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया ।

9. अपीलार्थियों की ओर से यह दलील दी गई है कि तिलेश्वर और बबलू का साक्ष्य उन्हें दोषसिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है और तिलेश्वर के समक्ष दिया गया तथाकथित न्यायेतर संस्वीकृति कथन साबित नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त, पुलिस के समक्ष अबु मूरा द्वारा दिया गया तथाकथित संस्वीकृति कथन साक्ष्य की दृष्टि से ग्राह्य नहीं है और उसका प्रकटीकरण कथन केवल शव और आयुधों की बरामदगी की सीमा तक ही ग्राह्य है जो कि अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है और इस प्रकार उन्हें संदेह का लाभ देते हुए दोषमुक्त किया जा सकता है ।

10. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् हमारा यह मत है कि अपीलार्थियों के अपने-अपने काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों में पर्याप्त बल है और इसीलिए तीनों अपीलें मंजूर किए जाने योग्य हैं । बबलू ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि घटना की रात्रि में लगभग 9 बजे जब वह अपने मकान में सोया हुआ था, तब उसने चीख-पुकार की आवाज सुनी और अपने घर से बाहर आया और उसने देखा कि अपीलार्थी संजीब पर हमला कर रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई । इस साक्षी के पुलिस केस डायरी में लिखे हुए कथन के अनुसार उसने अपीलार्थियों को संजीब पर लाठियों और डंडों से हमला करते हुए देखा था । तथापि, बबलू ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि वह न तो उसे बचाने और न ही वह शव के निकट गया था और न ही वह यह बता सकता है कि किस अपीलार्थी ने संजीब मूरा पर किस ओर से हमला किया था । इस साक्षी ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने तिलेश्वर को घटना के बारे में सूचित किया था । किन्तु, तिलेश्वर ने उसे सूचना दिए जाने के संबंध में बबलू के साक्ष्य की संपुष्टि नहीं की है । तिलेश्वर के अनुसार, अबु मूरा ही उसके घर

आया था और संजीब मूरा का शव पड़े होने के बारे में बताया था । यदि बबलू ने वास्तव में घटना देखी होती और अपीलार्थियों को संजीब मूरा पर हमला होते हुए देखा होता तब वह स्वाभाविक रूप से हस्तक्षेप करने का प्रयास करता । यदि यह मान लिया जाए कि उसने भय के कारण हस्तक्षेप नहीं किया, तब भी वह अपने परिक्षेत्र में शोरगुल अवश्य करता और इस घटना को बहुत से लोग देख लेते । किन्तु मुश्किल से ही इस घटना को उस परिक्षेत्र के अन्य किसी व्यक्ति ने देख लिया । यह स्वाभाविक है कि संजीब मूरा पर लाठियों और डंडों से हमला करने, उसके रस्सी से हाथ-पैर बांधने और उसे एक साथ नदी के किनारे तक ले जाकर फेंकने में पर्याप्त समय लगा होगा । इस प्रक्रिया के दौरान यह अत्यंत संभावी है कि उस परिक्षेत्र के किसी भी व्यक्ति ने इस घटना को नहीं देखा और न ही बबलू को संजीब मूरा को बचाने के लिए शोरगुल करने का अवसर मिला और न ही वह संजीब मूरा के निकट आकर यह पता लगा सका कि वह मृत है या जीवित या उसे किसी प्रकार की चिकित्सीय सहायता की आवश्यता है या नहीं । इसके प्रतिकूल, वह मूक दर्शक बना रहा । बबलू के इस अप्राकृतिक आचरण से उसके साक्ष्य की विश्वसनीयता संदिग्ध हो जाती है और उसका साक्ष्य इस संबंध में अन्य साक्ष्य से संपुष्टि न किए जाने के कारण अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है । इसके अतिरिक्त, बबलू के परिसाक्ष्य का समर्थन चिकित्सीय साक्ष्य से नहीं होता है क्योंकि चिकित्सीय साक्ष्य से यह पता चलता है कि संजीब के शरीर पर जो क्षतियां कारित हईं थीं वे नुकीले धारदार आयुध से पहुंचाई गईं थीं जब कि उसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अपीलार्थियों ने संजीब पर केवल लाठियों और डंडों से हमला किया था ।

11. बबलू के अनुसार, संजीब मूरा का शव अगले दिन प्रातःकाल पुलिस के पहुंचने तक उसके घर के सामने खुले आम पड़ा हुआ था । जिबेन्द्र ब्रह्मा द्वारा तैयार किए गए नक्शे से भी यह स्पष्ट होता है कि शव और अपराध में प्रयोग किए गए आयुध सड़क के किनारे पड़े हुए थे जिन पर पुलिस के वहां पहुंचकर अभिगृहीत करने तक लोगों को स्पष्ट दिखाई दे रहे थे । अतः, यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें अपराध में प्रयोग किए गए आयुध तथा शव को किसी एक अपीलार्थी द्वारा दिए गए प्रकटीकरण कथन के आधार पर बरामद किया गया हो और न ही वह स्थान कोई ऐसा स्थान था जिसका पता केवल अबु मूरा को मालूम था । जब संजीब मूरा का शव और अपराध में प्रयोग किए गए आयुधों को छिपाकर नहीं रखा गया बल्कि वे सड़क के किनारे लोगों को स्पष्ट पड़े हुए दिखाई दे रहे थे,

तब ऐसी स्थिति में पुलिस के समक्ष अबु मूरा द्वारा दिया गया प्रकटीकरण कथन अभियोजन पक्ष के किसी काम का नहीं है ।

12. जहां तक तिलेश्वर के समक्ष अबु मूरा द्वारा दिए गए न्यायेतर संस्वीकृति कथन का संबंध है, वह भी संदिग्ध है । यद्यपि, सबसे पहले तिलेश्वर ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि पुलिस थाने जाते समय अबु मूरा ने उसे यह बताया था कि सभी अपीलार्थियों ने संजीब मूरा पर लाठियों से हमला करके उसकी हत्या की है, किन्तु उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में इस बात से इनकार किया है । तिलेश्वर ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि अबु मूरा ने उस स्थान के सिवाय कुछ नहीं कहा था जहां पर संजीब मूरा का शव पड़ा हुआ था । तिलेश्वर के इस असंगत परिसाक्ष्य से उसका साक्ष्य संदिग्ध हो जाता है और वह विश्वसनीय नहीं रह जाता जिसके आधार पर दोषसिद्धि नहीं की जा सकती ।

13. अपीलार्थियों की बहिन सीता भी पक्षद्रोही हो गई है और उसने अपीलार्थियों के विरुद्ध अपराध में फंसाने वाला अभिसाक्ष्य नहीं दिया है । चन्द्र बहादुर तमंग और पीटर सिबेस्टीन मिंज केवल अभिग्रहण ज्ञापन के साक्षी हैं जिनकी मौजूदगी में अपराध में प्रयोग किए गए आयुधों को अभिगृहीत किया गया था और उन्होंने अपराध में अपीलार्थियों के आलिप्त होने के संबंध में कोई भी अभिसाक्ष्य नहीं दिया है । अतः, हमारा यह सुविचारित मत है कि अभियोजन पक्ष ने अपीलार्थियों के विरुद्ध संदेह के परे आरोप साबित नहीं किए हैं और इस प्रकार अपीलार्थी संदेह का लाभ पाने के पात्र हैं ।

14. इन कारणों के आधार पर, हम विचारण न्यायालय के निकाले गए निष्कर्षों से सहमत नहीं हैं और आक्षेपित दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त करते हैं । हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अपीलार्थी आरोपित अपराध के दोषी नहीं हैं । तद्नुसार, उन्हें दोषमुक्त किया जाता है । अपीलार्थी 6 वर्षों से अधिक समय से कारावास भोग रहे हैं और इस प्रकार उन्हें तत्काल छोड़े जाने का निदेश दिया जाता है ।

15. अपीलें मंजूर की जाती हैं ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

अस.

प्रीति पुना राम प्रजापति

बनाम

छत्तीसगढ़ राज्य

तारीख 5 जनवरी, 2018

न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार मिश्र और न्यायमूर्ति राम प्रसन्न शर्मा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 376 – बलात्संग – पुस्तकें देने के बहाने अभियोक्त्री के साथ उसके मामा द्वारा घर बुलाकर बलात्संग किया जाना – अभियोक्त्री की आयु की पुष्टि के लिए जन्मतिथि रजिस्टर, स्कूल रजिस्टर या चिकित्सक की राय प्राप्त न करना – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अभियोक्त्री द्वारा अपनी आयु साढ़े अठारह वर्ष बताया जाना – अभियोक्त्री द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि उसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अपनी आयु साढ़े अठारह वर्ष लिखवाई थी, स्कूल रजिस्टर या चिकित्सीय राय का प्रयोग आयु सुनिश्चित करने के लिए नहीं किया गया, अतः अभियोजन पक्ष को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में लिखी आयु को ही मानना होगा और इससे अभियोक्त्री अप्राप्तवय साबित नहीं होती है ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 376 और धारा 90 – बलात्संग – भ्रम के अधीन दी गई सम्मति – विवाह का वचन प्रथम बार संभोग करने के पश्चात् दिया जाना – अभियोक्त्री ने संभोग की सम्मति विवाह के वचन के आधार पर नहीं दी है और वह इस क्रियाकलाप में सामान्य रूप से अन्तर्वलित हुई है न कि उसे बहला-फुसलाकर उसकी सम्मति ली गई हो, अतः दंड संहिता की धारा 90 लागू नहीं होगी और अभियोक्त्री की सम्मति विधिमान्य है साथ ही बलात्संग के अपराध से अभियुक्त-प्रत्यर्थी की दोषमुक्ति उचित है ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 506, भाग II – बलात्संग – आपराधिक अभित्रास – बलात्संग के उपरांत अभियुक्त-प्रत्यर्थी द्वारा जान से मारने की धमकी दिए जाने का अभिकथन – धमकी दिए जाने का साक्ष्य उपलब्ध न होना – मात्र शब्दों का प्रयोग करने से अपराध गठित नहीं होता है क्योंकि

शब्दों में आक्रोश तो है किन्तु ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे धमकी गठित होती है, अतः, उक्त आरोप से अभियुक्त-प्रत्यर्थी की दोषमुक्ति न्यायोचित है ।

अभियोजन पक्षकथन के अनुसार, प्रत्यर्थी सं. 2, अभियोक्त्री (अभि. सा. 1) का मामा है । अभियोक्त्री स्कूल में पढ़ने वाली कन्या है जिसकी आयु लगभग साढ़े अठारह वर्ष है । हिन्दी कलेंडर के कार्तिक माह में लगभग 9 बजे अपराह्न में प्रत्यर्थी ने अभियोक्त्री को किताबें उपलब्ध कराने के लिए बुलाया, फिर उसे धमकाया और वह उसे अपने कमरे में ले गया और इसके पश्चात् उसने दरवाजा बन्द कर लिया, प्रत्यर्थी ने अभियोक्त्री के वस्त्र उतारे और इसके पश्चात् उसके साथ बलात्संग किया । प्रातःकाल लगभग 3 बजे, प्रत्यर्थी सं. 2, अभियोक्त्री को उसके घर के निकट छोड़कर चला गया । अभियोक्त्री ने घर पहुंचकर अपनी छोटी बहिन को घटना के बारे में बताया और उसकी छोटी बहिन ने इस घटना का उल्लेख अपनी माता से किया । घटना के अगले दिन प्रत्यर्थी सं. 2 अभियोक्त्री को रायपुर ले गया जहां पर दोनों तीन महीने तक रहे । उपरोक्त अवधि के दौरान प्रत्यर्थी सं. 2 ने अभियोक्त्री से विवाह करने का मिथ्या वायदा किया और उसने अभियोक्त्री के साथ शारीरिक संबंध बना लिए । तारीख 11 अप्रैल, 2009 को प्रत्यर्थी ने अभियोक्त्री को रायपुर छोड़ दिया और उसने अन्य किसी लड़की के साथ विवाह कर लिया तथा अभियोक्त्री को जान से मारने की धमकी दी । इस मामले की रिपोर्ट पुलिस थाना, महिला सेल, बिलासपुर में दर्ज कराई गई । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने के पश्चात् पुलिस हरकत में आई और उसने अन्वेषण आरंभ किया । दोनों पक्षकारों की चिकित्सा परीक्षा कराई गई । कुछ वस्तुओं को अभिगृहीत किया गया और उन्हें रासायनिक परीक्षण के लिए भेजा गया । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया । प्रत्यर्थी सं. 2 ने निर्दोष होने का अभिवाक् किया और इसके पश्चात् उसका विचारण किया गया । साक्षियों की परीक्षा कराई जाने के पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन प्रत्यर्थी सं. 2 का कथन अभिलिखित किया गया । पक्षकारों को सुनने के पश्चात्, विचारण न्यायालय ने उपरोक्त रूप में प्रत्यर्थी सं. 2 को दोषमुक्त कर दिया । दोषमुक्ति के इस आदेश से व्यथित होकर प्रीति पुना राम

प्रजापति की ओर से उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभियोक्त्री द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि उसने रिपोर्ट (प्रदर्श पी.1) दर्ज कराई थी और उक्त रिपोर्ट में उसकी आयु साढ़े अठारह वर्ष लिखी गई है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी.2) में अभियोक्त्री की आयु साढ़े अठारह वर्ष दी गई है । जन्म-तिथि रजिस्टर या स्कूल रजिस्टर या किसी चिकित्सीय विशेषज्ञ की राय का प्रयोग इस मामले में अभियोक्त्री की आयु के संबंध में नहीं किया गया है । चूंकि अभियोक्त्री ने प्रदर्श पी. 1 और पी. 2 जैसे दस्तावेजों का अवलंब लिया है, इसलिए अभियोजन पक्ष को इन दस्तावेजों को मानना होगा और इनसे अभियोक्त्री अप्राप्तवय साबित नहीं होती है । (पैरा 6)

अब विचार के लिए यह प्रश्न है कि क्या अभियोक्त्री के साथ कोई वायदा किया गया था और तथ्यों को गलत समझकर अभियोक्त्री ने अपनी सहमति दी थी । अभियोक्त्री के कथन से यह स्पष्ट नहीं होता है कि जब उन्होंने प्रथम बार शारीरिक संबंध बनाए थे तब प्रत्यर्थी ने उससे विवाह करने का वायदा किया था । अभियोक्त्री के कथन से यह बात भी स्पष्ट नहीं है कि प्रत्यर्थी द्वारा किए गए वायदे के अनुसार विवाह करने की संभावित तारीख क्या थी । अभियोक्त्री के कथन से यह बात स्पष्ट है कि शारीरिक संबंध प्रथम बार बनाने के पश्चात् रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई गई जिससे यह दर्शित होता है कि विवाह के किसी भी वायदे के पूर्व उसने अपनी सहमति दे दी थी । अभियोक्त्री ने संभोग करने की सहमति विवाह के वचन के आधार पर नहीं दी है और वह ऐसे क्रियाकलाप में सामान्य रूप से अन्तर्वलित हो गई न कि ऐसे कार्य के परिणामस्वरूप जो उसे बहला-फुसलाकर किया गया हो, अतः दंड संहिता की धारा 90 वर्तमान मामले की परिस्थितियों को लागू नहीं होगी क्योंकि प्रथम बार शारीरिक संबंध ऐसे किसी भी वायदे के बिना बनाए गए थे और अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह साबित हो सके कि प्रत्यर्थी ने विवाह करने का वास्तव में कोई वायदा किया था । भविष्य में किसी अनिश्चित तारीख को विवाह के वायदे को पूरा करने में असफल हो जाने के बहुत से कारण हो सकते हैं और इस असफलता को सदैव आरंभ से ही तथ्यों की सही जानकारी न देने की कोटि में नहीं रखा जा सकता । मामले की सुसंगत परिस्थितियों के

आधार पर हमारे लिए इस निष्कर्ष पर पहुंचना उचित नहीं होगा कि यह सहमति से किया गया संभोग नहीं है । चूंकि अभियोक्त्री अप्राप्तवय नहीं है इसलिए वह संभोग के लिए अपनी सहमति देने हेतु सक्षम है और इस प्रकार संभोग करना दंड संहिता की धारा 376 के अधीन अपराध नहीं है । (पैरा 8 और 9)

अब विचार के लिए यह प्रश्न है कि क्या दंड संहिता की धारा 506 भाग II के अधीन अपराध बनता है या नहीं । यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी सं. 2 ने धमकी भरे शब्दों का प्रयोग किया था । क्या ऐसे शब्द दंड संहिता की धारा 506 भाग II के अधीन अपराध गठित करने के लिए पर्याप्त हैं या नहीं । हमारे मतानुसार ऐसे अपराध कारित करने के लिए यह सिद्ध किया जाना चाहिए कि अपराधी ने घटना के समय ऐसी धमकी देने का निश्चित इरादा किया था । मात्र शब्दों का प्रयोग करने से अपराध गठित नहीं होता है क्योंकि शब्दों में आक्रोश तो है किन्तु ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे धमकी गठित हो । अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए मात्र शब्दों से यह अपराध गठित नहीं होता है और विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 2 को उक्त आरोप से दोषमुक्त करके ठीक ही किया है । (पैरा 10)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2012 की दांडिक दोषमुक्ति अपील सं. 48.

2009 के सेशन विचारण मामला सं. 150 में सेशन न्यायाधीश, बिलासपुर (छत्तीसगढ़) द्वारा तारीख 2 अगस्त, 2011 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री के. के. सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से श्री राजेन्द्र त्रिपाठी (पैनल अधिवक्ता)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति राम प्रसन्न शर्मा ने दिया ।

न्या. शर्मा – यह अपील 2009 के सेशन विचारण मामला सं. 150 में सेशन न्यायाधीश, बिलासपुर द्वारा तारीख 2 अगस्त, 2011 को पारित दोषसिद्धि के उस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 2 को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में

"दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 376 और 506 के अधीन आरोपों से दोषमुक्त किया गया था ।

2. अभियोजन पक्षकथन के अनुसार, प्रत्यर्थी सं. 2, अभियोक्त्री (अभि. सा. 1) का मामा है । अभियोक्त्री स्कूल में पढ़ने वाली कन्या है जिसकी आयु लगभग साढ़े अठारह वर्ष है । हिन्दी कलेंडर के कार्तिक माह में लगभग 9 बजे अपराह्न में प्रत्यर्थी ने अभियोक्त्री को किताबे उपलब्ध कराने के लिए बुलाया, फिर उसे धमकाया और वह उसे अपने कमरे में ले गया और इसके पश्चात् उसने दरवाजा बन्द कर लिया, प्रत्यर्थी ने अभियोक्त्री के वस्त्र उतारे और इसके पश्चात् उसके साथ बलात्संग किया । प्रातःकाल लगभग 3 बजे, प्रत्यर्थी सं. 2, अभियोक्त्री को उसके घर के निकट छोड़कर चला गया । अभियोक्त्री ने घर पहुंचकर अपनी छोटी बहिन को घटना के बारे में बताया और उसकी छोटी बहिन ने इस घटना का उल्लेख अपनी माता से किया । घटना के अगले दिन प्रत्यर्थी सं. 2 अभियोक्त्री को रायपुर ले गया जहां पर दोनों तीन महीने तक रहे । उपरोक्त अवधि के दौरान प्रत्यर्थी सं. 2 ने अभियोक्त्री से विवाह करने का मिथ्या वायदा किया और उसने अभियोक्त्री के साथ शारीरिक संबंध बना लिए । तारीख 11 अप्रैल, 2009 को प्रत्यर्थी ने अभियोक्त्री को रायपुर छोड़ दिया और उसने अन्य किसी लड़की के साथ विवाह कर लिया तथा अभियोक्त्री को जान से मारने की धमकी दी ।

3. इस मामले की रिपोर्ट पुलिस थाना, महिला सेल, बिलासपुर में दर्ज कराई गई । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने के पश्चात् पुलिस हरकत में आई और उसने अन्वेषण आरंभ किया । दोनों पक्षकारों की चिकित्सा परीक्षा कराई गई । कुछ वस्तुओं को अभिगृहीत किया गया और उन्हें रासायनिक परीक्षण के लिए भेजा गया । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया । प्रत्यर्थी सं. 2 ने निर्दोष होने का अभिवाक् किया और इसके पश्चात् उसका विचारण किया गया । साक्षियों की परीक्षा कराई जाने के पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन प्रत्यर्थी सं. 2 का कथन अभिलिखित किया गया । पक्षकारों को सुनने के पश्चात्, विचारण न्यायालय ने उपरोक्त रूप में प्रत्यर्थी सं. 2 को दोषमुक्त कर दिया ।

4. राज्य के विद्वान् काउंसेल ने निम्न प्रकार दलील दी है :–

(i) राशन कार्ड के अनुसार आहत की आयु 14 वर्ष है और घटना के दिन वह अप्राप्तवय थी, अतः विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष कि अभियोक्त्री घटना के समय वयस्क थी, मामले के तथ्यों के साथ मेल नहीं खाता है ।

(ii) जब विवाह का मिथ्या आश्वासन देने पर सहमति प्राप्त की जाती है तब ऐसी सहमति को दंड संहिता की धारा 90 में परिभाषित सहमति नहीं कहा जा सकता और प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध अपराध गठित माना जाएगा, अतः विचारण न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

(iii) विचारण न्यायालय ने अभियोजन साक्ष्य में प्रकट होने वाले छोटे-मोटे लोपों और विरोधाभासों को अधिक महत्व देकर न्यायोचित नहीं किया है ।

5. हमने दोनों पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना है और विचारण न्यायालय के अभिलेख का परिशीलन किया है ।

6. अभियोक्त्री द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि उसने रिपोर्ट (प्रदर्श पी.1) दर्ज कराई थी और उक्त रिपोर्ट में उसकी आयु साढ़े अठारह वर्ष लिखी गई है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी.2) में अभियोक्त्री की आयु साढ़े अठारह वर्ष दी गई है । जन्म-तिथि रजिस्टर या स्कूल रजिस्टर या किसी चिकित्सीय विशेषज्ञ की राय का प्रयोग इस मामले में अभियोक्त्री की आयु के संबंध नहीं किया गया है । चूंकि अभियोक्त्री ने प्रदर्श पी.1 और पी. 2 जैसे दस्तावेजों का अवलंब लिया है, इसलिए अभियोजन पक्ष को इन दस्तावेजों को मानना होगा और इनसे अभियोक्त्री अप्राप्तवय साबित नहीं होती है ।

7. अभियोक्त्री (अभि. सा. 1) ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि प्रत्यर्थी सं. 2 उसका मामा है जिसके पास दसवीं कक्षा की पुस्तकें थीं जिनकी उसे आवश्यकता थी और वह उन पुस्तकों को लेने के लिए प्रत्यर्थी सं. 2 के घर गई । अभियोक्त्री के साक्ष्य के अनुसार जब वह प्रत्यर्थी सं. 2 के घर पहुंची, तब प्रत्यर्थी ने घर का दरवाजा बंद कर लिया और इसके पश्चात् उसके साथ बलात्संग किया । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि प्रत्यर्थी सं. 2 ने उसे विवाह करने का आश्वासन दिया था और उसके

इस आश्वासन पर वह प्रत्यर्थी सं. 2 के साथ रायपुर गई जहां पर वे तीन माह तक रहे । इस साक्षी ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि तारीख 11 अप्रैल, 2009 को प्रत्यर्थी सं. 2 दो दिन के लिए रायपुर से चला गया और वापस नहीं आया तथा उसने अन्य लड़की के साथ अन्य किसी स्थान पर विवाह कर लिया और इसके पश्चात् इस संबंध में पुलिस थाना महिला सेल, बिलासपुर में रिपोर्ट (प्रदर्श पी. 1) दर्ज कराई गई । अभियोक्त्री के कथन और प्रदर्श पी. 1 और पी. 2 जैसे दस्तावेजों से यह सिद्ध हो जाता है कि अभियोक्त्री घटना के दिन वयस्क थी । इस साक्षी ने अपने कथन के पैरा 16 में यह उल्लेख किया है कि इस घटना के पूर्व, वह सुगम अस्पताल में धाय के रूप में कार्य कर रही थी ।

8. अब विचार के लिए यह प्रश्न है कि क्या अभियोक्त्री के साथ कोई वायदा किया गया था और तथ्यों को गलत समझकर अभियोक्त्री ने अपनी सहमति दी थी । अभियोक्त्री के कथन से यह स्पष्ट नहीं होता है कि जब उन्होंने प्रथम बार शारीरिक संबंध बनाए थे तब प्रत्यर्थी ने उससे विवाह करने का वायदा किया था । अभियोक्त्री के कथन से यह बात भी स्पष्ट नहीं है कि प्रत्यर्थी द्वारा किए गए वायदे के अनुसार विवाह करने की संभावित तारीख क्या थी । अभियोक्त्री के कथन से यह बात स्पष्ट है कि शारीरिक संबंध प्रथम बार बनाने के पश्चात् रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई गई जिससे यह दर्शित होता है कि विवाह के किसी भी वायदे के पूर्व उसने अपनी सहमति दे दी थी । अभियोक्त्री ने संभोग करने की सहमति विवाह के वचन के आधार पर नहीं दी है और वह ऐसे क्रियाकलाप में सामान्य रूप से अन्तर्वलित हो गई न कि ऐसे कार्य के परिणामस्वरूप जो उसे बहला-फुसलाकर किया गया हो, अतः दंड संहिता की धारा 90 वर्तमान मामले की परिस्थितियों को लागू नहीं होगी क्योंकि प्रथम बार शारीरिक संबंध ऐसे किसी भी वायदे के बिना बनाए गए थे और अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह साबित हो सके कि प्रत्यर्थी ने विवाह करने का वास्तव में कोई वायदा किया था । भविष्य में किसी अनिश्चित तारीख को विवाह के वायदे को पूरा करने में असफल हो जाने के बहुत से कारण हो सकते हैं और इस असफलता को सदैव आरंभ से ही तथ्यों की सही जानकारी न देने की कोटि में नहीं रखा जा सकता ।

9. मामले की सुसंगत परिस्थितियों के आधार पर हमारे लिए इस

निष्कर्ष पर पहुंचना उचित नहीं होगा कि यह सहमति से किया गया संभोग नहीं है । चूंकि अभियोक्त्री अप्राप्तवय नहीं है इसलिए वह संभोग के लिए अपनी सहमति देने हेतु सक्षम है और इस प्रकार संभोग करना दंड संहिता की धारा 376 के अधीन अपराध नहीं है ।

10. अब विचार के लिए यह प्रश्न है कि क्या दंड संहिता की धारा 506 भाग II के अधीन अपराध बनता है या नहीं । यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी सं. 2 ने धमकी भरे शब्दों का प्रयोग किया था । क्या ऐसे शब्द दंड संहिता की धारा 506 भाग II के अधीन अपराध गठित करने के लिए पर्याप्त हैं या नहीं । हमारे मतानुसार ऐसे अपराध कारित करने के लिए यह सिद्ध किया जाना चाहिए कि अपराधी ने घटना के समय ऐसी धमकी देने का निश्चित इरादा किया था । मात्र शब्दों का प्रयोग करने से अपराध गठित नहीं होता है क्योंकि शब्दों में आक्रोश तो है किन्तु ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे धमकी गठित हो । अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए मात्र शब्दों से यह अपराध गठित नहीं होता है और विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 2 को उक्त आरोप से दोषमुक्त करके ठीक ही किया है ।

11. उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, विचारण न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष विधि की दृष्टि से ग्राह्य साक्ष्य पर आधारित है । यद्यपि इसका पुनः मूल्यांकन किया जा सकता है किन्तु मामले के सुसंगत तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विचारण न्यायालय के निष्कर्ष में, अपील की अधिकारिता का अवलंब लेते हुए, हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

12. तद्नुसार, यह अपील असफल होती है और एतद्द्वारा खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अस.

जोयल बेचक

बनाम

सुभाष सवाल

तारीख 20 जनवरी, 2018

न्यायमूर्ति संजय कुमार अग्रवाल

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 482 – उच्च न्यायालय की असाधारण अधिकारिता – उपखंड मजिस्ट्रेट कब्जे के संबंध में जांच कराने में असफल रहा और कब्जे के संबंध में विधि विरुद्ध आदेश पारित किया और पुनरीक्षण न्यायालय ने भी विचारण मजिस्ट्रेट के आदेश की पुष्टि की इसलिए, न्याय के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा अपनी असाधारण शक्तियों का प्रयोग करना उचित और न्यायसंगत है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 145 – संपत्ति संबंधी विवाद से परिशांति भंग – कार्यपालक मजिस्ट्रेट की अधिकारिता – संपत्ति के कब्जे के संबंध में मजिस्ट्रेट को यह विनिश्चित करना है कि विवादित संपत्ति पर किसका वास्तविक कब्जा है, न कि किस पक्षकार के पास कब्जे का अधिकार है ।

याची और प्रत्यर्थी सं. 1 ईसाई समुदाय के हैं । विवाद चर्च, गर्ल होम, बॉयज हास्टल, कुशल निवास, आराधना भवन और अन्य संपत्तियों सहित बस्तर जिले के जगदलपुर में भारत के मैथालिस्ट चर्च के स्वामित्वाधीन संपत्तियों के संबंध में है । उक्त चर्च पर वास्तविक/तथ्यात्मक कब्जे के मुद्दे से संबंधित कतिपय विवाद के कारण मामले की सूचना अधिकारितागत पुलिस को दी गई जिसमें लोक शांति और परिशांति को खतरे की आशंका से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के उपबंधों के अधीन वास्तविक भौतिक कब्जे के विवाद को सुलझाने के लिए 21 अगस्त, 2015 को जगदलपुर के उपखंड मजिस्ट्रेट के न्यायालय के समक्ष इस्तगासा फाइल किया जिसका संज्ञान विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा लिया गया और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन प्रकीर्ण दांडिक मामला सं. 7/2015 के अनुसार कार्यवाहियां आरंभ की गई । तत्पश्चात् विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पक्षकारों को अपने उत्तर देने और अपने संबद्ध दावे के

समर्थन में अपने साक्ष्य पेश करने का निदेश देते हुए, विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा प्रारंभिक आदेश तारीख 26 अगस्त, 2015 पारित किया गया । उस न्यायालय द्वारा पारित प्रारंभिक आदेश की तामिली के उत्तर में दोनों पक्षकारों ने अपने लिखित उत्तर प्रस्तुत किए और पक्षकार सं. 2 होते हुए, याची ने स्वयं की परीक्षा कराते हुए अपना साक्ष्य पेश किया, जबकि पक्षकार सं. 1 होते हुए प्रत्यर्थी सं. 1 ने स्वयं और इस्तगासा में सूचीबद्ध चार अन्य साक्षियों की परीक्षा कराई । विद्वान् उपखंड मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन आवेदन मंजूर करते हुए तारीख 10 फरवरी, 2017 को अंतिम आदेश पारित किया और तद्द्वारा यह घोषित करते हुए कि पक्षकार सं. 2 अर्थात् इसमें याची ने शांति भंग की है और इसमें पक्षकार सं. 1/प्रत्यर्थी सं. 1 का कब्जा साबित हुआ है और पक्षकार सं. 1 को उक्त चर्च का कब्जाधारक घोषित किया गया और उक्त चर्च में प्रवेश करने से पक्षकार सं. 2 को अवरुद्ध किया गया । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन आवेदन मंजूर करने वाले आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर, इसमें याची ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 399/401 के अधीन सेशन न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण फाइल किया । सेशन न्यायालय ने अपने आक्षेपित आदेश द्वारा विद्वान् उपखंड मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को कायम रखा जिसके परिणामस्वरूप इसमें याची ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन विद्वान् उपखंड मजिस्ट्रेट के आदेश को पुष्ट करने वाले पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को असंधार्य और विधि की दृष्टि से दूषित होने के रूप में प्रश्नगत करते हुए, यह याचिका फाइल की । प्रत्यर्थी सं. 1 ने इसका विरोध करते हुए उक्त प्रश्न पर अपना उत्तर फाइल किया । उच्च न्यायालय ने अभिलेख की संपूर्ण सामग्री का परिशीलन किया । उच्च न्यायालय द्वारा याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह सुस्थिर विधि है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के उपबंधों का उपयोग विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने और न्याय के प्रयोजनों को प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है । इस मामले में विद्वान् उपखंड मजिस्ट्रेट यह जांच कराने में असफल रहे कि उस तारीख जिसको पुलिस रिपोर्ट प्राप्त हुई, के ठीक पूर्व दो माह के भीतर और/या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 की उपधारा (1) के अधीन प्रारंभिक आदेश पारित करने की तारीख को किस पक्षकार का कब्जा था, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(6)(क) के अधीन कब्जे का प्रत्यावर्तन मंजूर करने के लिए अनिवार्य हैं । विद्वान् मजिस्ट्रेट का विनिश्चय विवादग्रस्त संपत्ति पर

वास्तविक भौतिक कब्जे के बजाए प्रत्यर्थी सं. 1/पक्षकार सं. 1 के कब्जे के अधिकार और हक के विचार से अधिक प्रभावित है । अतः, यह एक उचित मामला है जहां यह न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन कार्रवाई कर सकता है और न्याय के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए प्रत्यर्थी सं. 1/पक्षकार सं. 1 को कब्जे के प्रत्यावर्तन का निदेश देने वाले विचारण मजिस्ट्रेट के आदेश को विद्वान् पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पुष्ट करने के आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन याचिका मंजूर की जाती है और मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को पुष्ट करने वाले पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त किया जाता है । मामले को वापस भेजा जाता है और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर नये सिरे से विचार करने और पक्षकारों को सुनने के पश्चात् स्पष्टतः यह निष्कर्ष अभिलिखित करने के लिए कि क्या प्रत्यर्थी सं. 1/ पक्षकार सं. 1 को उस तारीख जिसको उसके समक्ष इश्तगासा पेश किया गया, के ठीक पूर्व दो माह के भीतर या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) के अधीन प्रारंभिक आदेश पारित करने की तारीख से दो माह के भीतर बलात् और सदोष बेकब्जा किया गया है, आदेश पारित करने के लिए जगदलपुर के उपखंड मजिस्ट्रेट को फाइल प्रत्यावर्तित की जाती है । (पैरा 34, 35 और 36)

इस प्रकार, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) के अधीन ऐसे दावे जिसकी बाबत मजिस्ट्रेट यह विनिश्चित करने के लिए सशक्त है, विवाद के विषय के वास्तविक कब्जे का तथ्य है । धारा 145 उपधारा (4) जो जांच के विषय को परिभाषित करती है, मजिस्ट्रेट को विवाद के अधीन रहते हुए कब्जे के अधिकार के संबंध में पक्षकारों के दावों की गुणागुण पर निर्दिष्ट किए बिना उक्त प्रश्न का विनिश्चय करना है । अतः, कब्जे के अधिकार का प्रश्न जांच के प्रविषय से अलग है । केवल वास्तविक कब्जे के प्रश्न का ही विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा अवधारण और विनिश्चय किया जाना है तथा हक के प्रश्न को उठाने की अनुज्ञा नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि हक या कब्जे के अधिकार का प्रश्न दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाही के प्रविषय से परे है और मजिस्ट्रेट को केवल यह विनिश्चय करना है कि विवादग्रस्त भूमि का वास्तविक कब्जा किसके पास है और न कि किसके पास कब्जे का अधिकार है और वह धारा 145 के अधीन घोषणा का हकदार है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 की उपधारा (6)(क), उपधारा (4) के परंतुक में उपबंधित अवधि के भीतर बेकब्जा किए

गए पक्षकार को उपधारा (1) के अधीन किए गए आदेश की तारीख को विवादित संपत्ति के कब्जे में होने के रूप में मान सकता है और उपधारा (1) का परंतुक को लागू होने वाले बलात् और सदोष बेकब्जे के पक्षकार को कब्जे का प्रत्यावर्तन सारवान् है और यथास्थिति, उपधारा (1) के अधीन किए गए प्रारंभिक आदेश या प्रारंभिक आदेश के ठीक दो माह पूर्व तारीख को उसका कब्जा विनिश्चित करने के लिए कब्जे के पक्षकार को विशुद्धतः प्रभावित करता है । यह कहना सही है कि विद्वान् उपखंड मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसा कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 1 को प्रारंभिक आदेश के पारित करने की तारीख से दो माह के पूर्व बेकब्जा किया गया था । यह भी कहना सही है कि ऐसा कोई अभिवाक् याची द्वारा पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया गया । यह भी सही है कि प्रत्यर्थी सं. 1 का यह पक्षकथन नहीं है कि वह प्रारंभिक आदेश पारित करने की तारीख को प्रश्नगत संपत्ति पर काबिज था । अतः, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 की उपधारा (4) का परंतुक लागू होता है और इस प्रकार मजिस्ट्रेट प्रत्यर्थी सं. 1 की प्रश्नगत संपत्ति के कब्जे के प्रत्यावर्तन मंजूर करने के आदेश में विनिर्दिष्ट और स्पष्ट निष्कर्ष अभिलिखित करने के बाध्यताधीन था कि उसे ऐसी तारीख जिसको मजिस्ट्रेट को पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट या अन्य सूचना प्राप्त हुई, या उस तारीख के पश्चात् और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) के अधीन उसके प्रारंभिक आदेश की तारीख के पूर्व ठीक दो माह के भीतर बलात् और सदोष बेकब्जा किया गया था जिससे कि वह पक्षकार को इस प्रकार बेकब्जा मान सके मानो वह पक्षकार उपधारा (1) के अधीन उसके आदेश की तारीख को कब्जे में था । चूंकि याची द्वारा उठाया गया अभिवाक् मामले की जड़ तक जाता है और यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(6) के अधीन प्रत्यार्वतन का आदेश पारित करने का अधिकारितागत तथ्य है कि पक्षकार को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) के अधीन आदेश पारित करने की तारीख को या इसके पूर्व या उस तारीख के पश्चात् पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट की प्राप्ति के पश्चात् दो माह के भीतर बलात् और सदोषपूर्ण बेकब्जा किया जाना चाहिए । याची सारतः कब्जे के प्रत्यावर्तन के निदेश के लिए कानूनी अपेक्षा के आलोक में अपने अभिवाक् को पुनरीक्षण न्यायालय के निष्कर्ष को प्रश्नगत कर रहा है और इस प्रकार यह मामले की जड़ तक जाता है और प्रत्यर्थी सं. 1 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन याचिका में इस न्यायालय के समक्ष ऐसा अभिवाक् उठाने का हकदार है । प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा अवलंबित निर्णय प्रत्यर्थी सं. 1 के लिए सहायक नहीं है और इस

मामले के तथ्यों को पूर्णतः लागू नहीं होते हैं । यह प्रतीत होता है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने पूरे मामले की परीक्षा करने की कार्यवाही आरंभ की मानो उन्हें यह विनिश्चित करना हो कि ऐसा कौन पक्षकार है जिसको कब्जे का अधिकार है, क्योंकि संपूर्ण चर्चा एम. सी. आई. की स्थापना, प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा इसके नियंत्रण और प्रबंधन से संबंधित है और ऐसा कोई निष्कर्ष अभिलिखित किया गया प्रतीत नहीं होता कि पक्षकार सं. 1/ प्रत्यर्थी सं. 1 को उस तारीख जिसको इश्तगासा प्रस्तुत किया गया था या उस तारीख के पश्चात् और प्रारंभिक आदेश पारित करने के पूर्व या कम से कम प्रारंभिक आदेश के पारित करने की तारीख के ठीक पूर्व दो माह के भीतर प्रश्नगत संपत्ति से बेकब्जा किया गया । ऐसा निष्कर्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(6)(क) के अधीन कब्जे के प्रत्यावर्तन का आदेश पारित करने के लिए अनिवार्य था । प्रस्तुत किए गए इश्तगासा में भी प्रत्यर्थी सं. 1/पक्षकार सं. 1 के प्रश्नगत संपत्ति के बेकब्जे की कोई तारीख अभिलिखित नहीं की गई है । प्रत्यर्थी सं. 1 और उनके साथियों द्वारा किए गए कथनों में यह कथन है कि प्रश्नगत संपत्ति को याची/पक्षकार सं. 2 द्वारा अवैधतः कब्जे में रखा गया है । निरीक्षण रिपोर्ट में भी यह उपदर्शित है कि कुछ संपत्तियों पर प्रत्यर्थी सं. 1/पक्षकार सं. 1 कब्जे में है और कुछ संपत्तियों पर याची/पक्षकार सं. 2 कब्जे में है । चूंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(4) के परंतुक के उपबंधों में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(6)(क) के अधीन कब्जे के प्रत्यावर्तन की पूर्ववर्ती शर्तें हैं, इसलिए मजिस्ट्रेट को अभिलेख पर लाई गई सामग्री का मूल्यांकन करने के पश्चात् स्पष्ट और विनिर्दिष्ट निष्कर्ष अभिलिखित किया जाना चाहिए कि क्या पक्षकार सं. 1/प्रत्यर्थी सं. 1 को इश्तगासा के प्रस्तुत करने की तारीख या प्रारंभिक आदेश पारित करने की तारीख के पूर्व कम से कम दो माह के ठीक पहले दो माह के भीतर प्रश्नगत संपत्ति से बलात् और सदोष बेकब्जा किया गया है । किंतु विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसा कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया गया है और मात्र इस आधार पर कि प्रत्यर्थी सं. 1/पक्षकार सं. 1 को कब्जे का अधिकार है और याची/पक्षकार सं. 2 ने उस संबंध में अवधि को विनिर्दिष्ट किए बिना कि कब उसे बेकब्जा किया गया, बलात् बेकब्जा किया है और तद्द्वारा शांति भंग कारित की है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(4) के अधीन यथा उपबंधित कब्जे का प्रत्यावर्तन मंजूर करते हुए अनिवार्य अपेक्षा की उपेक्षा करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(6)(क) के अधीन कब्जे का प्रत्यावर्तन मंजूर किया है । इस प्रक्रम पर, याची के इस निवेदन पर ध्यान देना उचित है कि इस निष्कर्ष

का अभिलेखन न किया जाना कि याची/पक्षकार सं. 2 ने इश्तगासा पेश करने की तारीख के ठीक पूर्व दो माह के भीतर या आक्षेपित आदेश के पारित करने की तारीख के पूर्व कम से कम दो माह के भीतर प्रश्नगत संपत्ति से पक्षकार सं. 1/प्रत्यर्थी सं. 1 को बलात् बेकब्जा किया गया है, मात्र अनियमितता है और यह अवैधता नहीं है अतः, आक्षेपित आदेश ए. धवीथु बनाम जिला कलेक्टर और अन्य वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय और गुलाम मोहम्मद बनाम हरि चंद वाले मामले में जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय के निर्णय का अवलंब लेते हुए, उपेक्षित किए जाने योग्य है । मेरे मतानुसार निवेदन नामंजूर किए जाने योग्य है । विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(4) के परंतु की कानूनी अपेक्षा पर निष्कर्ष का अभिलिखित न किया जाना अधिकारितागत त्रुटि और कब्जे के प्रत्यावर्तन का निदेश देने के लिए कानूनी उपबंध के अननुपालन के समान है । श्री डांगी द्वारा उद्धृत किए गए विनिश्चय अर्थात् ए. धवीथु और गुलाम मोहम्मद वर्तमान मामले के तथ्यों से स्पष्टतः सुभेद्य हैं क्योंकि ए. धवीथु वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) के अधीन प्रारंभिक आदेश का अभाव दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन अंतिम आदेश को दूषित नहीं करेगा और इसी प्रकार, गुलाम मोहम्मद वाले मामले में अपूर्ण प्रारंभिक आदेश तब तक कार्यवाही को दूषित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा जब तक पक्षपात कारित होने का सबूत न हो । पूर्वोक्त मामले स्पष्टतः वर्तमान मामले के तथ्यों से सुभेद्य हैं । जैसाकि पहले ही यह अभिनिर्धारित किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाही में पक्षकारों का कब्जे और हक का अधिकार सुसंगत नहीं है, इसे थोड़ी दूर रखा जाना चाहिए और यह विनिश्चित किया जाना चाहिए कि रिपोर्ट फाइल किए जाने की तारीख को या कम से कम प्रारंभिक आदेश पारित करने की तारीख को इसका वास्तविक कब्जा था और यदि नहीं तो क्या पक्षकार को प्रारंभिक आदेश पारित करने की तारीख के पूर्व दो माह में बेकब्जा किया गया है । किंतु यह प्रतीत होता है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट प्रत्यर्थी सं. 1/पक्षकार सं. 1 के भूमि पर कब्जा होने के अधिकार के संबंध में अधिक प्रभावी था और प्रारंभिक आदेश की तारीख से दो माह के भीतर प्रत्यर्थी सं. 1 को कब्जे का प्रत्यावर्तन करने का निदेश देते हुए, बेकब्जे का ऐसा कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया गया है । अतः, विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश विधि के प्रतिकूल है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(4) के परंतुक के अपेक्षाओं को पूरा न करने वाला है और इस प्रकार

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(6)(क) के अधीन कब्जे के प्रत्यावर्तन का निदेश देने वाले पारित आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता । (पैरा 19, 20, 25, 26, 30, 31 और 32)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2016] 2016 एस. सी. सी. आनलाईन मद्रास 17222 :
ए. धवीथु बनाम **जिला कलेक्टर और अन्य** ; 31

[2008] (2008) 12 एस. सी. सी. 577 :
कमलेश बाबू और अन्य बनाम **लाजपत राय शर्मा और अन्य** ; 23

[2005] (2005) 6 एस. सी. सी. 614 :
नरने रामामूर्ति बनाम **रावुला सोमा सुन्दरम** ; 23

[2004] (2004) 1 एस. सी. सी. 438 :
शांति कुमार पांडा बनाम **शकुंतला देवी** ; 10

[1997] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 2320 :
आर. सी. पटुक बनाम **फातिमा ए. किनदास और अन्य** ; 18

[1980] ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 242 :
मथुरा लाल बनाम **भवर लाल और एक अन्य** ; 11

[1978] 1978 क्रिमिनल ला जर्नल 299 :
गुलाम मोहम्मद बनाम **हरि चंद** ; 31

[1978] (1978) 1 एस. सी. सी. 210 :
चंदू नायक और अन्य बनाम **सीता राम वी. नायक और एक अन्य** ; 9

[1968] [1968] 2 उम. नि. प. 763 = ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 1444 :
आर. एच. भूटानी बनाम **मिस मनी जे. देसाई और कुछ अन्य** । 14

आरंभिक (दांडिक) अधिकारिता : **2017 की दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 521.**

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन याचिका ।

याची की ओर से	सर्वश्री (डा.) एन. के. शुक्ला, वरिष्ठ अधिवक्ता के साथ पी. पी. साहू और विक्रम शर्मा
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री वी. वी. एस. मूर्ति, वरिष्ठ अधिवक्ता के साथ सौरव डांगा और भास्कर प्यासी, पैनल अधिवक्ता

आदेश

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब लेते हुए, इस याचिका में 2017 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 5 में जगदलपुर के सेशन न्यायाधीश बस्तर द्वारा पारित तारीख 12 अप्रैल, 2017 के उस आदेश को प्रश्नगत किया है, जिसके द्वारा विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए, प्रत्यर्थी सं. 1 को कब्जे के प्रत्यावर्तन का निदेश देने के संबंध में, उपखंड मजिस्ट्रेट, जगदलपुर द्वारा तारीख 10 फरवरी, 2017 को पारित किए गए आदेश को अपास्त करने से इनकार कर दिया है ।

2. निम्नलिखित तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में पूर्वोक्त चुनौती दी गई :–

(सुविधा की दृष्टि से इस याचिका में के याची को पक्षकार सं. 2 और प्रत्यर्थी सं. 1 को पक्षकार सं. 1 के रूप में निर्दिष्ट किया जाएगा, जैसा वे उपखंड मजिस्ट्रेट के समक्ष निर्दिष्ट किए गए थे ।)

2.1 याची और प्रत्यर्थी सं. 1 ईसाई समुदाय के हैं । यह विवाद चर्च, गर्ल होम, बॉयज हास्टल, कुशल निवास, आराधना भवन और अन्य संपत्तियों सहित बस्तर जिले के जगदलपुर में भारत के मैथाडिस्ट चर्च के स्वामित्वाधीन संपत्तियों के संबंध में है । उक्त चर्च पर वास्तविक/तथ्यात्मक कब्जे के मुद्दे से संबंधित कतिपय विवाद के कारण मामले की सूचना अधिकारितागत पुलिस को दी गई जिसमें लोक शांति और परिशांति के खतरे की आशंका से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के उपबंधों के अधीन वास्तविक भौतिक कब्जे के विवाद को सुलझाने के लिए 21 अगस्त, 2015 को जगदलपुर के उपखंड मजिस्ट्रेट के न्यायालय के समक्ष इस्तगासा फाइल किया गया

जिसका संज्ञान विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा लिया गया और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन प्रकीर्ण दांडिक मामला सं. 7/2015 के अनुसार कार्यवाहियां आरंभ की गईं । तत्पश्चात् विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पक्षकारों को अपने उत्तर देने और अपने-अपने दावे के समर्थन में साक्ष्य पेश करने का निदेश देते हुए, विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा प्रारंभिक आदेश तारीख 26 अगस्त, 2015 पारित किया गया । उस न्यायालय द्वारा पारित प्रारंभिक आदेश की तामीली के उत्तर में दोनों पक्षकारों ने अपने लिखित उत्तर प्रस्तुत किए और याची ने पक्षकार सं. 2 की हैसियत से स्वयं की परीक्षा कराते हुए अपना साक्ष्य पेश किया, जबकि प्रत्यर्थी सं. 1 ने पक्षकार सं. 1 की हैसियत से स्वयं की और इस्तगासा में सूचीबद्ध चार अन्य साक्षियों की परीक्षा कराई । विद्वान् उपखंड मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन आवेदन मंजूर करते हुए तारीख 10 फरवरी, 2017 को अंतिम आदेश पारित किया और तद्द्वारा यह घोषित करते हुए कि पक्षकार सं. 2 अर्थात् याची ने शांति भंग किया है और पक्षकार सं. 1/प्रत्यर्थी सं. 1 का कब्जा साबित हुआ है और पक्षकार सं. 1 को उक्त चर्च का कब्जाधारक घोषित किया गया और उक्त चर्च में प्रवेश करने से पक्षकार सं. 2 को अवरुद्ध किया गया ।

2.2 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन आवेदन मंजूर करने वाले आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर, इसमें याची ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 399/401 के अधीन सेशन न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया । सेशन न्यायालय ने अपने आक्षेपित आदेश द्वारा विद्वान् उपखंड मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को कायम रखा जिसके परिणामस्वरूप इसमें याची ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन विद्वान् उपखंड मजिस्ट्रेट के आदेश को पुष्ट करने वाले पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को असंधार्य और विधि की दृष्टि से दूषित होने के रूप में प्रश्नगत करते हुए, यह याचिका फाइल की । प्रत्यर्थी सं. 1 ने इसका विरोध करते हुए उक्त प्रश्न पर अपना उत्तर फाइल किया ।

3. याची की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता, डा. एन. के. शुक्ला का यह निवेदन है कि विद्वान् उपखंड मजिस्ट्रेट ने प्रारंभिक आदेश पारित करने की तारीख को कब्जे की वास्तविक तारीख का अवधारण न करने की विधिक त्रुटि की है । उनका आगे यह निवेदन है कि विद्वान्

मजिस्ट्रेट ने अंतिम आदेश मंजूर करते समय, प्रारंभिक आदेश पारित करने की तारीख से पूर्व अगले दो माह पहले बेकब्जा की तारीख का अवधारण नहीं किया और तद्द्वारा विधिक त्रुटि की और इस प्रकार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) और (4) के अधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए पूर्ववर्ती शर्तों का अभिलेखन विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा नहीं किया गया । अतः, उपखंड मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को कायम रखते हुए, विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है ।

4. प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री वी. वी. एस. मूर्ति, जिनकी सहायता श्री सुभाष डांगी ने की, का यह निवेदन है कि प्रारंभिक आदेश की तारीख पर बेकब्जे की तारीख का अवधारण करने के बारे में प्रश्न और पुलिस द्वारा रिपोर्ट फाइल किए जाने की तारीख से पूर्व अगले दो माह के भीतर बेकब्जे के निष्कर्ष से संबंधित तथ्य इस न्यायालय के समक्ष पहली बार उठाया गया है, जिसे उठाने की अनुज्ञा पहली बार नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि इसे पहले न तो उपखंड मजिस्ट्रेट के समक्ष या पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया गया है । उनका आगे यह निवेदन है कि चूंकि स्वयं याची ने उपखंड मजिस्ट्रेट के समक्ष अपने कथन में बेकब्जा की तारीख को स्वीकार किया है, इसलिए बेकब्जा की तारीख से संबंधित निष्कर्ष का अभिलेखन न किया जाना, बेकब्जे की तारीख या ऐसे बेकब्जे की तारीख जो ऐसे अंतिम आदेश के पारित करने के तारीख के पूर्व जिसकी सम्यक् पुष्टि पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा की गई है, के अगले दो माह के पूर्व है, के निष्कर्ष के अभिलेखन न किए जाने के कारण उपखंड मजिस्ट्रेट का आदेश दोषपूर्ण नहीं होगा । उन्होंने यह भी निवेदन किया कि उपखंड मजिस्ट्रेट ने तारीख 10 फरवरी, 2017 के अपने आदेश द्वारा केवल यह ही घोषित किया है कि इसने प्रत्यर्थी सं. 1 को बलात् प्रश्नगत चर्च से बेकब्जा किया गया और उन्हें कब्जाधारक घोषित किया है तथा तारीख 24 अप्रैल, 2017 के पृथक् आदेश द्वारा पक्षकार सं. 1/प्रत्यर्थी सं. 1 को कब्जा देने का निदेश दिया गया है, जो पूर्णतः विधिसम्मत है और उस आदेश को इस आधार पर याची द्वारा अपवाद के रूप में नहीं लिया जा सकता कि यद्यपि पक्षकार सं. 1/प्रत्यर्थी सं. 1 कब्जे में नहीं है, फिर भी पक्षकार सं. 2 याची को व्यादेश देने वाला आदेश कब्जाधारक होने के रूप में पक्षकार सं. 1 को घोषित करते हुए पारित किया गया है, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाही से असंतुष्ट है और जिसे सिविल वाद फाइल करना चाहिए और अस्थायी व्यादेश यदि कोई है, के लिए आवेदन करना चाहिए

और इस प्रकार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन यह याचिका संधार्य नहीं है क्योंकि निचले दो न्यायालयों ने लगातार यह अभिनिर्धारित किया है कि याची कब्जे में नहीं है जबकि प्रत्यर्थी सं. 1 कब्जाधारक है जिसे बलात् कब्जे से हीन किया गया है और जो अंतिम आदेश की तारीख को कब्जे का हकदार है ।

5. प्रत्युत्तर निवेदन में डा. एन. के. शुक्ला का यह निवेदन है कि इसमें प्रत्यर्थी सं. 1 का यह पक्षकथन है कि वे उस प्रारंभिक आदेश की तारीख को कब्जे में नहीं थे, जिस पर श्री मूर्ति का निवेदन है कि डा. शुक्ला के इस तर्क पर कोई विवाद नहीं है । डा. एन. के. शुक्ला ने आगे यह निवेदन किया कि विद्वान् मजिस्ट्रेट और पुनरीक्षण न्यायालय ने कब्जे के अधिकार के बजाय प्रत्यर्थी सं. 1 के हक के प्रश्न पर अधिक बल दिया और इस तथ्य की उपेक्षा की कि कौन प्रारंभिक आदेश पारित करने की तारीख के पूर्व अगले दो माह तक काबिज था । अतः, पक्षकारों के अधिकारों का अवधारण करते समय गलत सिद्धांत लागू किया गया है । श्री डांगी ने तब यह निवेदन किया कि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने इस तथ्य पर विचार किया कि प्रारंभिक आदेश की तारीख के पूर्व दो माह तक कौन काबिज था और तद्द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) के अधीन आवेदन पर विचार करते हुए, सही सिद्धांत लागू किया ।

6. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और इसमें उपरोक्त किए गए परस्पर प्रतिकूल निवेदनों पर विचार किया और बहुत सावधानी के साथ अभिलेख का परिशीलन भी किया है ।

7. अधिवक्ता की ओर से उठाए गए अभिवाक् की शुद्धता का अवधारण करने के लिए तत्काल निर्देश के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) से 145(6) के उपबंधों को निर्दिष्ट करना और दोहराना लाभप्रद होगा, जो इस प्रकार है :–

> "**145. जहां भूमि या जल से संबद्ध विवादों से परिशांति भंग होना संभाव्य है वहां प्रक्रिया** – (1) जब कभी किसी कार्यपालक मजिस्ट्रेट का, पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट से या अन्य इत्तिला पर समाधान हो जाता है कि उसकी स्थानीय अधिकारिता के अंदर किसी भूमि या जल या उसकी सीमाओं से संबद्ध ऐसा विवाद विद्यमान है, जिससे परिशांति भंग होना संभाव्य है, तब वह अपना ऐसा समाधान होने के आधारों का कथन करते हुए और ऐसे विवाद से संबद्ध

पक्षकारों से यह अपेक्षा करते हुए लिखित आदेश देगा कि वे विनिर्दिष्ट तारीख और समय पर स्वयं या प्लीडर द्वारा उसके न्यायालय में हाजिर हों और विवाद की विषयवस्तु पर वास्तविक कब्जे के तथ्य के बारे में अपने-अपने दावों का लिखित कथन पेश करें ।

(2) इस धारा के प्रयोजनों के लिए "भूमि या जल" पद के अंतर्गत भवन, बाजार, मीनक्षेत्र, फसलें, भूमि की अन्य उपज और ऐसी किसी संपत्ति के भाटक या लाभ भी हैं ।

(3) इस आदेश की एक प्रति की तामील इस संहिता द्वारा समनों की तामील के लिए उपबंधित रीति से ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों पर की जाएगी, जिन्हें मजिस्ट्रेट निदिष्ट करे और कम से कम एक प्रति विवाद की विषयवस्तु पर या उसके निकट किसी सहजदृश्य स्थान पर लगाकर प्रकाशित की जाएगी ।

(4) मजिस्ट्रेट तब विवाद की विषयवस्तु को पक्षकारों में से किसी के भी कब्जे में रखने के अधिकार के गुणागुण या दावे के प्रति निर्देश किए बिना उन कथनों का, जो ऐसे पेश किए गए हैं, परिशीलन करेगा, पक्षकारों को सुनेगा और ऐसा सभी साक्ष्य लेगा जो उनके द्वारा प्रस्तुत किया जाए, ऐसा अतिरिक्त साक्ष्य, यदि कोई हो ; लेगा जैसा वह आवश्यक समझे और यदि संभव हो तो यह विनिश्चित करेगा कि क्या उन पक्षकारों में से कोई उपधारा (1) के अधीन उसके द्वारा दिए गए आदेश की तारीख पर विवाद की विषयवस्तु पर कब्जा रखता था और यदि रखता था तो वह कौन सा पक्षकार था :

परंतु यदि मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि कोई पक्षकार उस तारीख के, जिसको पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट या अन्य इत्तिला मजिस्ट्रेट को प्राप्त हुई, ठीक पूर्व दो माह के अंदर या उस तारीख के पश्चात् और उपधारा (1) के अधीन उसके आदेश की तारीख के पूर्व बलात् और सदोष रूप से बेकब्जा किया गया है तो वह यह मान सकेगा कि उस प्रकार बेकब्जा किया गया पक्षकार उपधारा (1) के अधीन उसके आदेश की तारीख को कब्जा रखता था ।

(5) इस धारा की कोई बात, हाजिर होने के लिए ऐसे अपेक्षित किसी पक्षकार को या किसी अन्य हितबद्ध व्यक्ति को यह दर्शित करने से नहीं रोकेगी कि कोई पूर्वोक्त प्रकार का विवाद वर्तमान नहीं है या नहीं रहा है और ऐसी दशा में मजिस्ट्रेट अपने उक्त आदेश को

रद्द कर देगा और उस पर आगे की सब कार्यवाहियां रोक दी जाएंगी किंतु उपधारा (1) के अधीन मजिस्ट्रेट का आदेश ऐसे रद्दकरण के अधीन रहते हुए अंतिम होगा ।

(6) (क) यदि मजिस्ट्रेट यह विनिश्चय करता है कि पक्षकारों में से एक का उक्त विषयवस्तु पर ऐसा कब्जा था या उपधारा (4) के परंतुक के अधीन ऐसा कब्जा माना जाना चाहिए, तो वह यह घोषणा करने वाला कि ऐसा पक्षकार उस पर तब तक कब्जा रखने का हकदार है जब तक उसे विधि के सम्यक् अनुक्रम में बेदखल न कर दिया जाए और या निषेध करने वाला कि जब तक ऐसी बेदखली न कर दी जाए तब तक ऐसे कब्जे में कोई विघ्न न डाला जाए, आदेश जारी करेगा ; और जब वह उपधारा (4) के परंतुक के अधीन कार्यवाही करता है तब उस पक्षकार को, जो बलात् और सदोष बेकब्जा किया गया है, कब्जा लौटा सकता है ।

(ख) इस उपधारा के अधीन दिया गया आदेश उपधारा (3) में अधिकथित रीति से तामील और प्रकाशित किया जाएगा ।"

8. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 की स्कीम का विहगावलोकन करने से यह दर्शित होता है कि इसका आशय शांति भंग का निवारण करना और परिशांति बनाए रखना है तथा उस प्रयोजन के लिए न्यायालय के समक्ष परस्पर विरोधी पक्षकारों को लाकर त्वरित उपचार करना है और यह सुनिश्चित करना है कि उनमें से कौन विषयाधीन संपत्ति का वास्तविक कब्जाधारक है और तब तक यथास्थिति बनाए रखना है जब तक उनके अधिकारों का अंतिम अवधारण सक्षम न्यायालय द्वारा नहीं किया जाता है क्योंकि आदेश की जीवंतता सिविल न्यायालय द्वारा डिक्री पारित करने के सहवर्ती है ।

9. **चंदू नायक और अन्य** बनाम **सीता राम वी. नायक और एक अन्य**[1] वाले मामले में काफी पहले 1977 में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाही का सार और प्रभाव किसी भूमि से किसी व्यक्ति को बेदखल करने के प्रयोजन के लिए नहीं है बल्कि मुख्यतः जब तक विधि के सम्यक् अनुक्रम में बेदखल नहीं किया जाता, कब्जे में पाए गए व्यक्ति को कब्जे में बने रहने के हकदार होने के लिए घोषित कर शांति-

[1] (1978) 1 एस.सी.सी. 210.

भंग रोकने के लिए है ।

10. इसी प्रकार, **शांति कुमार पांडा** बनाम **शकुंतला देवी**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों की प्रकृति पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145/146 के अधीन कार्यवाहियां अर्ध-सिविल, अर्ध-दांडिक प्रकृति की हैं या कार्यपालिक या पुलिस कार्रवाई हैं ।

11. सारतः, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 और 146 एक साथ ऐसी स्थिति के समाधान की स्कीम गठित करती है, जहां किसी भूमि या जल या उनकी सीमाओं से संबंधित विवाद के कारण शांति भंग की संभावना है **मथुरा लाल** बनाम **भंवर लाल और एक अन्य**[2]।

12. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 मजिस्ट्रेट को ऐसे पक्षकार के पक्ष में घोषणात्मक आदेश जारी करने का प्राधिकार प्रदान करती है, जो कब्जे का हकदार है, जब तक विधि के सम्यक् अनुक्रम में उससे बेदखल नहीं किया जाता । मजिस्ट्रेट पक्षकार के हक या भूमि के कब्जे के अधिकार का न तो विनिश्चय करता है न ही उसे विनिश्चय करने का आशय है क्योंकि वे क्षेत्र विशेषकर सिविल न्यायालय के लिए आरक्षित हैं । अधिकारिता के ग्रहण का आधार शांति भंग की संभावना है । मजिस्ट्रेट पक्षकारों के अधिकारों पर ध्यान दिए बिना केवल अस्थायी आदेश जारी करता है, जिन्हें विधि द्वारा उपबंधित रीति से उठाया और अवधारित किया जाएगा । धारा 145 के अधीन मजिस्ट्रेट का क्षेत्राधिकार अनन्यतः यह विनिश्चित करने तक सीमित है कि कोई और कौन सा पक्षकार प्रारंभिक आदेश की तारीख पर विवादित भूमि का कब्जाधारक है । आदेश केवल विनिर्दिष्ट तारीख को पक्षकार के वास्तविक कब्जे की घोषणा करता है ।

13. तथापि, ऐसा कोई पक्षकार जिसे प्रारंभिक आदेश की तारीख के पूर्व अगले दो माह के भीतर बलात् और सदोष बेकब्जा कर दिया गया है, की दशा में मजिस्ट्रेट ऐसे पक्षकार को जिसे बेकब्जा कर दिया गया है, यह मानने के लिए प्राधिकृत है, मानो वह ऐसे तारीख पर कब्जे में था । धारा 145(4) के परंतुक के साथ पठित उसकी उपधारा (6) में शक्ति व्यादिष्ट है । इस प्रकार, मजिस्ट्रेट को यह विनिश्चित करना है कि उसके प्रारंभिक

---

[1] (2004) 1 एस. सी. सी. 438.

[2] ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 242.

आदेश की तारीख को किसका वास्तविक कब्जा है किंतु यदि वह पाता है कि उस तारीख को अपने आदेश की अगले पूर्ववर्ती दो माह के भीतर तथ्यतः कब्जाधारक पक्षकार ने बलात् और सदोषपूर्ण ढंग से बेकब्जा कर कब्जा अभिप्राप्त किया है । मजिस्ट्रेट बेकब्जा पक्षकार को यह मान सकता है, मानो वह ऐसी तारीख को कब्जे में था और उसे कब्जा वापस दिला सकता है और बेकब्जा करने वाले को विधि के सम्यक् अनुक्रम में उस व्यक्ति की बेदखली तक कब्जे में हस्तक्षेप करने से प्रतिषिद्ध कर सकता है ।

14. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(4) का परंतुक इस सिद्धांत पर आधारित है कि बलात् और सदोष रूप से कब्जे को दंड विधि के अधीन मान्यता प्रदान नहीं किया जाना चाहिए । परंतुक में 'ये कब्जा' शब्द से यह अभिप्रेत है और इसमें परिसर से बाहर किया गया, निकाला गया या हटाया गया या अपवर्जित कब्जा सम्मिलित हैं । कब्जे का अधिकार रखने वाले व्यक्ति को भी अन्य व्यक्ति द्वारा अपने हाथों में विधि लेकर और विधि के सम्यक् अनुक्रम से भिन्न अन्यथा बलात् प्रवेशकर बेकब्जा नहीं किया जा सकता । **आर. एच. भूटानी** बनाम **मिस मनी जे. देसाई और कुछ अन्य**[1] वाला मामला देखें ।

15. **आर. एच. भूटानी** (पूर्वोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) में अंतर्विष्ट उपबंधों पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 145 के अधीन अधिकारिता आपात प्रकृति के होने के कारण मजिस्ट्रेट को सतर्कता के साथ काम करना चाहिए किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि जहां विवाद के पक्षकारों में से एक के आवेदन पर उसका यह समाधान हो जाता है कि धारा की अपेक्षाएं विद्यमान हैं तो वह पुलिस रिपोर्ट के बिना कार्यवाही आरंभ नहीं कर सकता । मजिस्ट्रेट द्वारा शपथ-पत्र पर आवेदक की परीक्षा करने के पश्चात् एक बार जब यह समाधान हो जाता है कि उसके आवेदन से विवाद का होना प्रकट होता है और शांति भंग की संभावना है तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) के अधीन उसके कार्य के विरुद्ध कोई वर्जन नहीं है ।

16. उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने **आर. एच. भूटानी** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(4) के परंतुक में प्रयुक्त 'बेकब्जा' शब्द के अर्थ पर भी विचार किया और यह अभिनिर्धारित

---

[1] [1968] 2 उम. नि. प. 763 = ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 1444.

किया कि उस आदेश की तारीख से ठीक पूर्ववर्ती दो माह के भीतर पक्षकार के बेकब्जे को भी विचार किया जाना चाहिए और आगे यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 145 के अधीन जांच केवल इस प्रश्न तक सीमित है कि पक्षकारों के अधिकारों पर ध्यान दिए बिना प्रारंभिक आदेश की तारीख को किसका वास्तविक कब्जा था । परंतुक के अधीन ऐसा पक्षकार जिसे प्रारंभिक आदेश की तारीख के ठीक पूर्ववर्ती दो माह के भीतर बलात् और सदोष बेकब्जा किया गया, पाया गया है, को उस आदेश की तारीख को जांच के प्रयोजन के लिए कब्जे में होना पाया जा सकता है और पैरा 8 में इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "8. धारा 145 का उद्देश्य निस्संदेह रूप से शांति भंग का निवारण करना है और न्यायालय के सामने पक्षकारों को लाकर और यह अभिनिश्चय करके कि वास्तविक कब्जा उनमें से किसका था, इसी उद्देश्य से शीघ्रतया उपाय के लिए उपलब्ध करना है और पूर्ववत् स्थिति तब तक के लिए बनाए रखना है जब तक कि उनके अधिकारों के बारे में सक्षम न्यायालय द्वारा अवधारणा न कर दिया जाए । इस धारा की अपेक्षा यह है कि कार्यवाही आरंभ करने के पहले मजिस्ट्रेट का अपना समाधान होना चाहिए कि किसी स्थावर संपत्ति के बारे में विवाद विद्यमान है और यह कि ऐसे विवाद के फलस्वरूप शांति भंग कारित होना संभाव्य है । किंतु इन दो शर्तों के बारे में अपना समाधान एक बार कर लेने के बाद इस धारा के अधीन उससे यह अपेक्षित है कि वह उपधारा (1) के अधीन प्रारंभिक आदेश पारित करे, उसके पश्चात् उपधारा (4) के अधीन जांच करे और फिर उपधारा (6) के अधीन अंतिम आदेश पारित करे । यह आवश्यक नहीं है कि अंतिम आदेश पारित करने के समय शांति भंग होने की आशंका बनी रहे या विद्यमान हो । धारा 145 के अधीन की जाने वाली जांच तो केवल इस प्रश्न तक सीमित है कि पक्षकारों के अधिकारों पर विचार यदि न किया जाए तो प्रारंभिक आदेश की तारीख को वास्तविक कब्जा किसका था । जिस पक्षकार के बारे में यह पता लगता है कि प्रारंभिक आदेश की तारीख के ठीक पहले वाले दो माह के अंदर वह बलात् और सदोष रूप से बेकब्जा किया गया था उस पक्षकार के बारे में, द्वितीय परंतुक के अधीन, जांच के प्रयोजन के लिए यह समझा जा सकता है कि उस आदेश की तारीख को कब्जा उसी का था । विरोधी पक्षकार यह अवश्य साबित कर सकता

है कि बेकब्जा करने की घटना उस आदेश की तारीख से अव्यवहित पूर्ववर्ती दो माह से भी पहले हुई थी और ऐसी स्थिति में मजिस्ट्रेट को अपना प्रारंभिक आदेश रद्द करना होगा । किंतु यदि उसका समाधान हो जाता है कि बेकब्जा करने का कार्य बल प्रयोग के द्वारा और सदोष रूप से किया गया था और साथ ही यह कि वह घटना विहित कालावधि के अंदर घटित हुई थी तो बेकब्जा किए गए पक्षकार की बाबत यह समझा जाएगा कि प्रारंभिक आदेश की तारीख को वास्तविक कब्जा उसी का था । ऐसा होने पर मजिस्ट्रेट अपना अंतिम आदेश पारित करेगा और बेकब्जा करने वाले पक्षकार को यह निदेश देगा कि तुम कब्जा प्रत्यावर्तित करो और जब तक कि आवेदक विधि के सम्यक् अनुक्रम में बेदखल नहीं कर दिया जाता तब तक बेकब्जा करने वाले पक्षकार को ऐसे कब्जे में हस्तक्षेप करने से प्रतिषिद्ध करेगा । मोटे तौर पर धारा 145 की स्कीम यही है ।"

17. **आर. एच. भूटानी** (पूर्वोक्त) वाले मामले में माननीय न्यायाधीशों ने आगे यह अभिनिर्धारित किया कि मजिस्ट्रेट को सर्वप्रथम यह विनिश्चित करना चाहिए कि उसके प्रारंभिक आदेश की तारीख को किसका वास्तविक कब्जा है । तथापि, यदि तथ्यात्मक कब्जे वाले पक्षकार को उनके आदेश के ठीक पूर्ववर्ती दो माह के भीतर अन्य पक्षकार को बलात् और सदोष बेकब्जा करते हुए कब्जा अभिप्राप्त करने वाला कहा जाता है तो मजिस्ट्रेट बेकब्जा हुए पक्षकार को यह मान सकता है, मानो वह ऐसी तारीख को कब्जे में था, उसके कब्जे को प्रत्यावर्तित कर सकता है और बेकब्जा करने वाले को कब्जे में हस्तक्षेप करने से तब तक प्रतिषिद्ध कर सकता है, जब तक उस व्यक्ति की बेदखली विधि के सम्यक् अनुक्रम में न हो ।

18. इसी प्रकार, **आर. सी. पटुक** बनाम **फातिमा ए. किनदास और अन्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(4) के परंतुक के उपबंधों पर विचार किया और यह अभिनिर्धारित किया कि किसी पुलिस रिपोर्ट के अभाव में या परंतुक द्वारा अनुध्यात अवधि के भीतर प्रश्नगत पक्षकार द्वारा कब्जे की हानि के संबंध में मजिस्ट्रेट द्वारा सूचना के प्राप्त होने पर कब्जे का प्रत्यावर्तन मंजूर नहीं किया जा सकता । यह रिपोर्ट के पैरा 9 में इस प्रकार मत व्यक्त किया गया :–

"उपरोक्त तथ्यों से यह देखा जा सकता है कि धारा 145(1) के

---

[1] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 2320.

अधीन आदेश विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा 16 मार्च, 1993 को पारित किया गया था । प्रश्न यह है कि क्या मजिस्ट्रेट धारा 145 की उपधारा (4) के अधीन याची के पक्ष में कोई आदेश पारित कर सकता है । धारा 145 की मुख्य उपधारा (4) के पढ़ने से यह स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट आरंभतः यह विनिश्चित कर सकता है कि उस तारीख को जब धारा 145(1) के अधीन आदेश तारीख 16 मार्च, 1993 को पारित किया गया था, किसका कब्जा था । ऐसे मामलों में, जहां उक्त उपखंड (4) को परंतुक लागू होता है, अर्थात् यदि मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि किसी पक्षकार को बलात् और सदोष उस तारीख के ठीक पूर्ववर्ती दो माह के भीतर जिसको पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट या अन्य सूचना मजिस्ट्रेट को प्राप्त होती है या उस तारीख के पश्चात् और उपधारा (1) के अधीन उसके आदेश की तारीख के पूर्व बेकब्जा किया गया है तो मजिस्ट्रेट इस प्रकार बेकब्जा हुए पक्षकार को यह मान सकता है कि मानो उक्त पक्षकार उपधारा (1) के अधीन उसके आदेश की तारीख को कब्जे में था । दूसरे शब्दों में, यदि उपधारा (4) के परंतुक में वर्णित शर्तें पूरी होती हैं तो मजिस्ट्रेट इस तथ्य के होते हुए भी कि वह उस तारीख को वस्तुतः कब्जे में नहीं था किंतु आदेश के ठीक पूर्व दो माह के भीतर पहले कब्जा हो चुका था, धारा 145(1) के अधीन आदेश की तारीख को व्यक्ति को कब्जे में होना समझ सकता है । इस मामले में दुर्भाग्यवश यह साबित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि पुलिस अधिकारी की कोई रिपोर्ट या अन्य सूचना परंतुक द्वारा अनुध्यात अवधि के भीतर मजिस्ट्रेट को प्राप्त हुई थी । दूसरी ओर याची की स्वीकृति से यह दर्शित होता है कि वह उक्त परंतुक में वर्णित अवधि के काफी पूर्व बेकब्जा हो चुकी थी ।"

19. इस प्रकार, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) के अधीन ऐसे दावे जिसकी बाबत मजिस्ट्रेट यह विनिश्चित करने के लिए सशक्त है, विवाद के विषय के वास्तविक कब्जे का तथ्य है । धारा 145 उपधारा (4) जो जांच की विषय को परिभाषित करती है, मजिस्ट्रेट को विवाद के अधीन रहते हुए कब्जे के अधिकार के संबंध में पक्षकारों के दावों की गुणागुण पर निर्दिष्ट किए बिना उक्त प्रश्न का विनिश्चय करना है । अतः, कब्जे की अधिकार का प्रश्न जांच के प्रविषय से अलग है । केवल वास्तविक कब्जे के प्रश्न का ही विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा अवधारण और विनिश्चय किया जाना है तथा हक के प्रश्न को उठाने की अनुज्ञा नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि हक या कब्जे के अधिकार का प्रश्न दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के

अधीन कार्यवाही के प्रविषय से परे है और मजिस्ट्रेट को केवल यह विनिश्चय करना है कि विवादग्रस्त भूमि का वास्तविक कब्जा किसके पास है और न कि किसके पास कब्जे का अधिकार है और वह धारा 145 के अधीन घोषणा का हकदार है ।

20. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 की उपधारा (6)(क), उपधारा (4) के परंतुक में उपबंधित अवधि के भीतर बेकब्जा किए गए पक्षकार को उपधारा (1) के अधीन किए गए आदेश की तारीख को विवादित संपत्ति के कब्जे में होने के रूप में मान सकता है और उपधारा (1) का परंतुक को लागू होने वाले बलात् और सदोष बेकब्जे के पक्षकार को कब्जे का प्रत्यावर्तन सारवान् है और यथास्थिति, उपधारा (1) के अधीन किए गए प्रारंभिक आदेश या प्रारंभिक आदेश के ठीक दो माह पूर्व तारीख को उसका कब्जा विनिश्चित करने के लिए कब्जे के पक्षकार को विशुद्धतः प्रभावित करता है ।

21. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) के साथ पठित धारा 145(4) के परंतुक से संबंधित कानूनी उपबंधों और उनसे निकलने वाले सिद्धांतों और उस बाबत उच्चतम न्यायालय के सुसंगत और प्रासंगिक विनिश्चयों को भी ध्यान देते हुए मैं आगे मामले के गुणागुण पर कार्यवाही करता हूं ।

22. याची की ओर से उठाया गया पहला निवेदन यह है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने कब्जे के प्रत्यावर्तन का आदेश पारित करते समय, यह निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया कि प्रत्यर्थी सं. 1 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) के अधीन प्रारंभिक आदेश पारित करने के तारीख के ठीक दो माह पूर्व प्रश्नगत संपत्ति से बलात् और सदोष बेकब्जा किया गया था ।

23. इस प्रक्रम पर प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने यह आपत्ति की कि विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा यह निष्कर्ष अभिलिखित करने के इस प्रश्न को कि प्रत्यर्थी सं. 1 को प्रारंभिक आदेश के पारित करने की तारीख से दो माह पूर्व बेकब्जा किया गया था, तो मजिस्ट्रेट के समक्ष या विशेषकर विद्वान् सेशन न्यायालय के समक्ष कभी नहीं उठाया गया । उन्होंने **कमलेश बाबू और अन्य** बनाम **लाजपत राय शर्मा और अन्य**[1] और **नरने रामामूर्ति** बनाम **रावुला सोमा सुन्दरम**[2] वाले

---

[1] (2008) 12 एस. सी. सी. 577.

[2] (2005) 6 एस. सी. सी. 614.

मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों का अवलंब लिया ।

24. मैंने, प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा उठाए गए आक्षेप पर विचार किया ।

25. यह कहना सही है कि विद्वान् उपखंड मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसा कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 1 को प्रारंभिक आदेश के पारित करने की तारीख से दो माह के पूर्व बेकब्जा किया गया था । यह भी कहना सही है कि ऐसा कोई अभिवाक् याची द्वारा पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया गया । यह भी सही है कि प्रत्यर्थी सं. 1 का यह पक्षकथन नहीं है कि वह प्रारंभिक आदेश पारित करने की तारीख को प्रश्नगत संपत्ति पर काबिज था । अतः, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 की उपधारा (4) का परंतुक लागू होता है और इस प्रकार मजिस्ट्रेट प्रत्यर्थी सं. 1 की प्रश्नगत संपत्ति के कब्जे के प्रत्यावर्तन मंजूर करने के आदेश में विनिर्दिष्ट और स्पष्ट निष्कर्ष अभिलिखित करने के बाध्यताधीन था कि उसे ऐसी तारीख जिसको मजिस्ट्रेट को पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट या अन्य सूचना प्राप्त हुई, या उस तारीख के पश्चात् और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) के अधीन उसके प्रारंभिक आदेश की तारीख के पूर्व ठीक दो माह के भीतर बलात् और सदोष बेकब्जा किया गया था जिससे कि वह पक्षकार को इस प्रकार बेकब्जा मान सके मानो वह पक्षकार उपधारा (1) के अधीन उसके आदेश की तारीख को कब्जे में था ।

26. चूंकि याची द्वारा उठाया गया अभिवाक् मामले की जड़ तक जाता है और यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(6) के अधीन प्रत्यावर्तन का आदेश पारित करने का अधिकारितागत तथ्य है कि पक्षकार को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) के अधीन आदेश पारित करने की तारीख को या इसके पूर्व या उस तारीख के पश्चात् पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट की प्राप्ति के पश्चात् दो माह के भीतर बलात् और सदोषपूर्ण बेकब्जा किया जाना चाहिए । याची सारतः कब्जे के प्रत्यावर्तन के निदेश के लिए कानूनी अपेक्षा के आलोक में अपने अभिवाक् को पुनरीक्षण न्यायालय के निष्कर्ष को प्रश्नगत कर रहा है और इस प्रकार यह मामले की जड़ तक जाता है और प्रत्यर्थी सं. 1 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन याचिका में इस न्यायालय के समक्ष ऐसा अभिवाक् उठाने का हकदार है । प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा अवलंबित निर्णय प्रत्यर्थी सं. 1 के लिए सहायक नहीं है और इस मामले के तथ्यों को पूर्णतः लागू नहीं होते हैं ।

27. इस अवधारण के अनुसार मैं इस मामले के गुणागुण और तथ्यों पर विचार करता हूं ।

28. यह कहा गया है कि विवादित संपत्ति का स्वामित्व जगदलपुर के भारतीय मैथोडिस्ट चर्च के अधीन है जिसके अंतर्गत चर्च बालिका गृह, बालक हास्टल, कुशल निवास, आराधना भवन और अन्य संपत्तियां हैं । प्रत्यर्थी सं. 1/पक्षकार सं. 1 द्वारा जिला बस्तर के पुलिस थाना बोध घाट में फाइल किए गए परिवाद पर उक्त पुलिस थाने में पक्षकारों के बीच विवाद और याची और प्रत्यर्थी सं. 1 के बीच शांति और परिशांति के भंग की संभावना है, की शिकायत करते हुए 21 अगस्त, 2015 को उपखंड मजिस्ट्रेट के समक्ष इश्तगासा प्रस्तुत की । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने 26 अगस्त, 2015 को यह समाधान होने के पश्चात् कि पक्षकारों के बीच संपत्ति के वास्तविक कब्जे के बारे में शांति भंग की संभावना है, गुणागुण पर दोनों पक्षकारों को अपना तर्क प्रस्तुत करने का निदेश देते हुए, प्रारंभिक आदेश पारित किया और जगदलपुर के नजूल अधिकारी को अपना निरीक्षण रिपोर्ट भी प्रस्तुत करने का निदेश दिया है । याची/पक्षकार सं. 2 ने अपना उत्तर फाइल किया जबकि प्रत्यर्थी सं. 1 पक्षकार सं. 2 होते हुए स्वयं अपनी और चार अन्य साक्षी अर्थात् जितेन्द्र सिंह, नरेश सेट्ठी, श्रीमती ज्योतिका रानी और शैलेन्द्र सिंह की परीक्षा कराई । उनकी परीक्षा और प्रति परीक्षा की गई । नजूल अधिकारी ने भी अपनी निरीक्षण रिपोर्ट प्रस्तुत की । विद्वान् उपखंड मजिस्ट्रेट ने तारीख 10 फरवरी, 2017 के अपने आदेश द्वारा यह भी अभिनिर्धारित किया कि इसमें पक्षकार सं. 1/प्रत्यर्थी सं. 1 ने प्रश्नगत संपत्ति से बलात् और सदोष बेकब्जा किया और तारीख 24 अप्रैल, 2017 के पृथक् आदेश द्वारा पक्षकार सं. 1 को कब्जे के परिदान का निदेश दिया और निम्नलिखित निष्कर्ष अभिलिखित किए :–

> 1. भारतीय मैथोडिस्ट चर्च वर्ष 1981 में स्थापित किया गया था और पहले इसे मैथोडिस्ट ईपिसकोपल मिशन के रूप में जाना जाता था । वर्ष 1994 में इसे विघटित किया गया और दक्षिणी एशिया में मैथोडिस्ट चर्च गठित किया गया, इसके पश्चात् इसे वर्ष 1994 में दक्षिणी एशिया के न्यास संगम मैथोडिस्ट चर्च के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया और इसके विघटन के पश्चात् भारतीय मैथोडिस्ट चर्च का 7 जनवरी, 1981 को गठन किया गया और यह अनुशासन पुस्तिका द्वारा शासित है । अनुशासन पुस्तिका में इसके प्रशासन के लिए विधि और नियम अंतर्विष्ट है ।

2. पक्षकार सं. 1/प्रत्यर्थी सं. 1 को भारतीय मैथोडिस्ट चर्च के जगदलपुर शाखा में तैनात किया गया और वह न्यास द्वारा धारित सभी संपत्तियों का अधीक्षक है, वह चर्च का प्रभारी पादरी है और चर्च की सभी संपत्तियां प्रत्यर्थी सं. 1 के नियंत्रण और अधीक्षण में हैं ।

3. जगदलपुर की भारतीय मैथोडिस्ट चर्च की संपत्तियों को पहले एम. आई. मिशन को पट्टे पर लिया गया था और उच्च न्यायालय के आदेश के अनुसरण में 44.07 एकड़ की फैली हुई भूमि की संपूर्ण संपत्तियों से संबंधित पट्टे को भारतीय मैथोडिस्ट चर्च के नाम पर नवीकृत किया गया ।

4. उपखंड मजिस्ट्रेट के आदेश के अनुसरण में, नजूल अधिकारी और अन्य राजस्व अधिकारियों में प्रश्नगत संपत्ति का निरीक्षण किया और अपनी रिपोर्ट 1 फरवरी, 2017 को प्रस्तुत किया और पंचनामा तैयार किया ।

5. उक्त पंचनामा के अनुसार बालिका गृह और आराधना भवन याची/पक्षकार द्वारा चलाए जा रहे हैं, जबकि बालक हास्टल प्रत्यर्थी सं. 1/पक्षकार सं. 1 द्वारा सहकारी सेवा संस्था (गैर सरकारी संगठन) को किराए पर दिया गया और खेल मैदान, विद्यालय और आम के बगीचों जैसी अन्य संपत्तियां एम. आई. मिशन के नाम से अभिलिखित हैं । रिपोर्ट के अनुसार चर्च भवन (आराधना भवन) और बालिका गृह (कुशल निवास) का याची/पक्षकार 2 के कब्जे में होना अभिकथित है ।

6. अनुशासन पुस्तिका के पैरा 61 और 1262 के अनुसार भारतीय मैथोडिस्ट चर्च के हित के विरुद्ध कार्य करने के लिए पक्षकार सं. 2 और उनके 73 सहयोगियों की सदस्यता को कार्यपालिक बोर्ड द्वारा अपने क्षेत्रीय सम्मेलन में आदेश तारीख 17 अक्तूबर, 2014 द्वारा समाप्त कर दिया गया ।

7. यह स्वीकार किया जाता है कि याची/पक्षकार सं. 2 ने भारतीय मैथोडिस्ट चर्च की जगदलपुर शाखा द्वारा संपत्ति के अन्य संक्रामित होने के आधार पर चर्च संपत्ति का कब्जा प्राप्त किया और उन लोगों ने चंडैया मेमोरियल मैथोडिस्ट ईपिसकोपल चर्च, जगदलपुर के नाम से ज्ञात नई संस्था गठित की और याची/पक्षकार सं. 2 को उक्त संपत्ति को प्रशासित करने के लिए उक्त संपत्ति का अध्यक्ष चुना गया और उसे उक्त संपत्ति का नियंत्रण प्राप्त हुआ ।

8. यह स्थापित है कि याची/पक्षकार सं. 2 ने एम.सी.आई. के चर्च और संपत्ति से बलात् बेकब्जा किया जिसके द्वारा वहां शांति का भंग है और उक्त चर्च में की जाने वाली प्रार्थना में हस्तक्षेप है ।

9. प्रश्नगत संपत्ति पहले ही एम. आई. मिशन के अधीक्षक के नाम से अभिलिखित है और यह भारतीय मैथोडिस्ट चर्च के अधीक्षण और नियंत्रण में है जिसका नेतृत्व अधीक्षक और प्रभारी पादरी द्वारा किया जाता है और आरंभ से ही यह उनके कब्जे में है जिसे याची/पक्षकार सं. 2 द्वारा बलात् बेकब्जा किया गया है और तद्द्वारा शांति का भंग कारित किया गया है, इस प्रकार, एम. आई. मिशन/ भारतीय मैथोडिस्ट चर्च/पक्षकार सं. 1/प्रत्यर्थी सं. 1 का कब्जा सम्यक् रूप से स्थापित होता है ।

10. अंततः उपखंड मजिस्ट्रेट ने प्रत्यर्थी सं. 1/पक्षकार सं. 1 का वास्तविक कब्जा घोषित किया और पक्षकार सं. 2 को, पक्षकार सं. 1 की संपत्ति में प्रवेश करने से अवरुद्ध किया और पृथक् आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 को कब्जे के प्रत्यावर्तन का निदेश दिया ।

29. आदेश तारीख 20 फरवरी, 2017 में विद्वान् उपखंड मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों के सावधानीपूर्वक परिशीलन से स्पष्टतः यह दर्शित होता है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने मूलतः प्रश्नगत संपत्ति को कब्जे में रखने के प्रत्यर्थी सं. 1/पक्षकार सं. 1 के अधिकार पर विचार किया, जब कि विद्वान् मजिस्ट्रेट को इस प्रश्न पर विचार करना था कि क्या प्रत्यर्थी सं. 1 को उस तारीख, जिसको उनके समक्ष तारीख 21 अगस्त, 2015 को इश्तगासा प्रस्तुत किया गया था या तारीख 26 अगस्त, 2015 को या उस तारीख के पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) के अधीन उसके प्रारंभिक आदेश पारित करने की तारीख के ठीक पूर्व दो माह के भीतर बलात् और सदोष बेकब्जा किया गया था ।

30. यह प्रतीत होता है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने पूरे मामले की परीक्षा करने की कार्यवाही आरंभ की मानो उन्हें यह विनिश्चित करना हो कि ऐसा कौन पक्षकार है जिसको कब्जे का अधिकार है, क्योंकि संपूर्ण चर्चा एम. सी. आई. की स्थापना, प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा इसके नियंत्रण और प्रबंधन से संबंधित है और ऐसा कोई निष्कर्ष अभिलिखित किया गया प्रतीत नहीं होता कि पक्षकार सं. 1/प्रत्यर्थी सं. 1 को उस तारीख जिसको इश्तगासा प्रस्तुत किया गया था या उस तारीख के पश्चात् और प्रारंभिक आदेश पारित करने

के पूर्व या कम से कम प्रारंभिक आदेश के पारित करने की तारीख के ठीक पूर्व दो माह के भीतर प्रश्नगत संपत्ति से बेकब्जा किया गया । ऐसा निष्कर्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(6)(क) के अधीन कब्जे के प्रत्यावर्तन का आदेश पारित करने के लिए अनिवार्य था । प्रस्तुत किए गए इश्तगासा में भी प्रत्यर्थी सं. 1/पक्षकार सं. 1 के प्रश्नगत संपत्ति के बेकब्जे की कोई तारीख अभिलिखित नहीं की गई है । प्रत्यर्थी सं. 1 और उनके साथियों द्वारा किए गए कथनों में यह कथन है कि प्रश्नगत संपत्ति को याची/पक्षकार सं. 2 द्वारा अवैधतः कब्जे में रखा गया है । निरीक्षण रिपोर्ट में भी यह उपदर्शित है कि कुछ संपत्तियों पर प्रत्यर्थी सं. 1/पक्षकार सं. 1 के कब्जे में है और कुछ संपत्तियों पर याची/पक्षकार सं. 2 के कब्जे में है । चूंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(4) के परंतुक के उपबंधों में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(6)(क) के अधीन कब्जे के प्रत्यावर्तन की पूर्ववर्ती शर्तें हैं, इसलिए मजिस्ट्रेट को अभिलेख पर लाई गई सामग्री का मूल्यांकन करने के पश्चात् स्पष्ट और विनिर्दिष्ट निष्कर्ष अभिलिखित किया जाना चाहिए कि क्या पक्षकार सं. 1/प्रत्यर्थी सं. 1 को इश्तगासा के प्रस्तुत करने की तारीख या प्रारंभिक आदेश पारित करने की तारीख के पूर्व कम से कम दो माह के ठीक पहले दो माह के भीतर प्रश्नगत संपत्ति से बलात् और सदोष बेकब्जा किया गया है । किंतु विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसा कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया गया है और मात्र इस आधार पर कि प्रत्यर्थी सं. 1/पक्षकार सं. 1 को कब्जे का अधिकार है और याची/पक्षकार सं. 2 ने उस संबंध में अवधि को विनिर्दिष्ट किए बिना कि कब उसे बेकब्जा किया गया, बलात् बेकब्जा किया है और तद्द्वारा शांति भंग कारित किया है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(4) के अधीन यथा उपबंधित कब्जे का प्रत्यावर्तन मंजूर करते हुए अनिवार्य अपेक्षा की उपेक्षा करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(6)(क) के अधीन कब्जे का प्रत्यावर्तन मंजूर किया है ।

31. इस प्रक्रम पर, याची के इस निवेदन पर ध्यान देना उचित है कि इस निष्कर्ष का अभिलेखन न किया जाना कि याची/पक्षकार सं. 2 ने इश्तगासा पेश करने की तारीख के ठीक पूर्व दो माह के भीतर या आक्षेपित आदेश के पारित करने की तारीख के पूर्व कम से कम दो माह के भीतर प्रश्नगत संपत्ति से पक्षकार सं. 1/प्रत्यर्थी सं. 1 को बलात् बेकब्जा किया गया है, मात्र अनियमितता है और यह अवैधता नहीं है अतः, आक्षेपित

आदेश **ए. धवीथु** बनाम **जिला कलेक्टर और अन्य**[1] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय और **गुलाम मोहम्मद** बनाम **हरि चंद**[2] वाले मामले में जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय के निर्णय का अवलंब लेते हुए, उपेक्षित किए जाने योग्य है । मेरे मतानुसार निवेदन नामंजूर किए जाने योग्य है । विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(4) के परंतुक की कानूनी अपेक्षा पर निष्कर्ष का अभिलिखित न किया जाना अधिकारितागत त्रुटि और कब्जे के प्रत्यावर्तन का निदेश देने के लिए कानूनी उपबंध के अननुपालन के समान है । श्री डांगी द्वारा उद्धृत किए गए विनिश्चय अर्थात् **ए. धवीथु** (उपरोक्त) और **गुलाम मोहम्मद** (उपरोक्त) वर्तमान मामले के तथ्यों से स्पष्टतः सुभेद्य हैं क्योंकि **ए. धवीथु** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) के अधीन प्रारंभिक आदेश का अभाव दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन अंतिम आदेश को दूषित नहीं करेगा और इसी प्रकार, **गुलाम मोहम्मद** (उपरोक्त) वाले मामले में अपूर्ण प्रारंभिक आदेश तब तक कार्यवाही को दूषित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा जब तक पक्षपात कारित होने का सबूत न हो । पूर्वोक्त मामले स्पष्टतः वर्तमान मामले के तथ्यों से सुभेद्य हैं ।

32. जैसाकि पहले ही यह अभिनिर्धारित किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के अधीन कार्यवाही में पक्षकारों का कब्जे और हक का अधिकार सुसंगत नहीं है, इसे थोड़ी दूर रखा जाना चाहिए और यह विनिश्चित किया जाना चाहिए कि रिपोर्ट फाइल किए जाने की तारीख को या कम से कम प्रारंभिक आदेश पारित करने की तारीख को इसका वास्तविक कब्जा था और यदि नहीं तो क्या पक्षकार को प्रारंभिक आदेश पारित करने की तारीख के पूर्व दो माह में बेकब्जा किया गया है । किंतु यह प्रतीत होता है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट प्रत्यर्थी सं. 1/पक्षकार सं. 1 के भूमि पर कब्जा होने के अधिकार के संबंध में अधिक प्रभावी था और प्रारंभिक आदेश की तारीख से दो माह के भीतर प्रत्यर्थी सं. 1 को कब्जे का प्रत्यावर्तन करने का निदेश देते हुए, बेकब्जे का ऐसा कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया गया है । अतः, विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश विधि के प्रतिकूल है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(4) के परंतुक

---

[1] 2016 एस. सी. सी. आनलाईन मद्रास 17222.

[2] 1978 क्रिमिनल ला जर्नल 299.

के अपेक्षाओं को पूरा न करने वाला है और इस प्रकार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(6)(क) के अधीन कब्जे के प्रत्यावर्तन का निदेश देने वाले पारित आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता ।

33. पुनरीक्षण न्यायालय ने भी पुनरीक्षण फाइल किए जाने पर प्रत्यावर्तन आदेश पारित करने के दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(4) के परंतुक में यथा अंतर्विष्ट मूल प्रश्न पर विचार नहीं किया और सीधे पुनरीक्षण आवेदन खारिज कर दिया और तद्द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने की उपेक्षा करने वाली अवैधता को जन्म दिया ।

34. यह सुस्थिर विधि है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के उपबंधों का उपयोग विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने और न्याय के प्रयोजनों को प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है ।

35. इस मामले में विद्वान् उपखंड मजिस्ट्रेट यह जांच कराने में असफल रहे कि उस तारीख जिसको पुलिस रिपोर्ट प्राप्त हुई, के ठीक पूर्व दो माह के भीतर और/या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 की उपधारा (1) के अधीन प्रारंभिक आदेश पारित करने की तारीख को किस पक्षकार का कब्जा था, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(6)(क) के अधीन कब्जे का प्रत्यावर्तन मंजूर करने के लिए अनिवार्य हैं । विद्वान् मजिस्ट्रेट का विनिश्चय विवादग्रस्त संपत्ति पर वास्तविक भौतिक कब्जे के बजाय प्रत्यर्थी सं. 1/पक्षकार सं. 1 के कब्जे के अधिकार और हक के विचार से अधिक प्रभावित है । अतः, यह एक उचित मामला है जहां यह न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन कार्रवाई कर सकता है और न्याय के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए प्रत्यर्थी सं. 1/पक्षकार सं. 1 को कब्जे के प्रत्यावर्तन का निदेश देने वाले विचारण मजिस्ट्रेट के आदेश को विद्वान् पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पुष्ट करने के आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है ।

36. पूर्वोक्त चर्चा के निष्कर्ष और परिणाम के रूप में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन याचिका मंजूर की जाती है और मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को पुष्ट करने वाले पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त किया जाता है । मामले को वापस भेजा जाता है और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर नए सिरे से विचार करने और पक्षकारों को सुनने के पश्चात् स्पष्टतः यह निष्कर्ष अभिलिखित करने के लिए कि क्या प्रत्यर्थी सं. 1/पक्षकार सं. 1 को उस तारीख जिसको उसके समक्ष

इश्तगासा पेश किया गया, के ठीक पूर्व दो माह के भीतर या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145(1) के अधीन प्रारंभिक आदेश पारित करने की तारीख से दो माह के भीतर बलात् और सदोष बेकब्जा किया गया है, आदेश पारित करने के लिए जगदलपुर के उपखंड मजिस्ट्रेट को फाइल प्रत्यावर्तित की जाती है । विद्वान् मजिस्ट्रेट यथाशीघ्र और इस आदेश की प्रति के पेश किए जाने की तारीख से अधिमानतः 45 दिनों के भीतर कार्यवाही समाप्त करेगा । खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता ।

37. यह स्पष्ट किया जाता है कि विद्वान् मजिस्ट्रेट इस आदेश में किए गए किन्हीं मताभिव्यक्तियों द्वारा प्रभावित हुए बिना अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर विनिश्चय करेगा और विधि के अनुसार दृढ़ता से पक्षकारों के अधिकारों का विनिश्चय करेगा ।

याचिका मंजूर की गई ।

पा.

(2018) 2 दा. नि. प. 111 **मध्य प्रदेश**

मध्य प्रदेश राज्य

बनाम

आमीन और अन्य

तारीख 28 जुलाई, 2017

न्यायमूर्ति एस. सी. शर्मा और न्यायमूर्ति आलोक वर्मा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – पारिस्थितिक साक्ष्य-ऋण की तुच्छ रकम को लेकर अभिकथित हत्या – किसी भी व्यक्ति द्वारा अपीलार्थियों को मृतक के साथ अन्तिम बार नहीं देखा जाना – अभियोजन साक्षियों ने मृतक को अपीलार्थियों के साथ नहीं देखा था और उन्हें केवल फोन से पता चला था कि अपीलार्थियों की मुलाकात मृतक से हुई है, अतः यह साबित नहीं हुआ कि अपीलार्थी वास्तव में अन्तिम बार मृतक के साथ थे या नहीं, ऐसी स्थिति में वे संदेह का लाभ पाने के हकदार होंगे ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 3 – पारिस्थितिक

साक्ष्य – आयुधों की बरामदगी – बरामद किए गए आयुधों से शव विच्छिन्न किया जाना – आयुधों पर मानव रक्त का पाया जाना किन्तु रक्त-ग्रुप की संपुष्टि न होना – न्यायालयिक रिपोर्ट के अनुसार खेत में से बरामद किए गए आयुधों पर मानव रक्त लगा पाया गया किन्तु रक्त-ग्रुप का पता नहीं चल सका और रिपोर्ट से कोई निष्कर्ष नहीं निकल सका, अतः यह साबित नहीं माना जा सकता कि ये वही आयुध हैं जिनका प्रयोग मृतक के शव के टुकड़े करने में किया गया था, इसलिए अपीलार्थियों की दोषसिद्धि उचित नहीं है और वे दोषमुक्ति के हकदार हैं ।

संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि मृतक याकूब खां के भाई यूनुस खां ने तारीख 25 दिसंबर, 2012 को लापता होने की रिपोर्ट दर्ज कराई जिसमें उसने यह कथन किया कि उसका भाई याकूब खां (मृतक) अकोडिया से धनाना गया था । उसे अभियुक्त आमीन खां पुत्र कादर खां से ऋण की वसूली करनी थी । उसने ग्राम धनाना से फोन पर बात की और उसके पश्चात् वह धनाना से अन्य किसी स्थान पर चला गया और इसके पश्चात् उसका कहीं पता नहीं चल सका । उसका भाई मोटरसाइकिल (रजिस्ट्रेशन सं. एम पी 04 एन ए 7558) से ग्राम धनाना गया था और उसके पास मोबाइल फोन था । तारीख 11 जनवरी, 2013 को 10.20 बजे पूर्वाह्न में थाना सलसलाई, जिला शाजापुर के थाना प्रभारी को फोन पर किसी अज्ञात व्यक्ति से सूचना प्राप्त हुई । फोन करने वाले व्यक्ति ने थाना प्रभारी को यह बताया कि ग्राम धनाना के अभियुक्त आमीन खां ने अपने दो भाइयों शेख दाउद खां और शेख अमजद खां तथा अपने मित्र मिथुन के साथ मिलकर मृतक की हत्या की है । उन्होंने मृतक के शव को कई टुकड़ों में काट दिया है और अभियुक्त आमीन की भूमि में स्थित सूखे कुंए में उन टुकड़ों को डाल दिया है । थाना प्रभारी द्वारा यह सूचना तारीख 11 जनवरी, 2013 को 10.20 बजे पूर्वाह्न में ही रोजनामचे में क्रम सं. 197 पर दर्ज की गई । उसने अपने वरिष्ठ अधिकारियों को सूचित किया और इस संबंध में रोजनामचे में क्रम सं. 198 पर प्रविष्टि की । थाना प्रभारी ने कुंए में खुदाई करने हेतु उपखंड मजिस्ट्रेट से अनुज्ञा प्राप्त करने के लिए एक पत्र भेजा और इसके पश्चात् वह सरकारी वाहन (रजिस्ट्रेशन सं. एम पी 03 ए सी 529) से ग्राम धनाना के लिए रवाना हो गया । सूखे कुंए पर पहुंचने पर, उसने तहसीलदार सुश्री आशा परमार से अनुज्ञा प्राप्त की और खुदाई करने वाली मशीन से 2 बजे अपराह्न में कुंए की खुदाई आरंभ कराई । लगभग 4 बजे अपराह्न में मृतक के शव के

टुकड़े और उसके कपड़े दिखाई दिए । शव से कटी हुई दो हथेलियां बरामद हुईं जिनमें अंगूठियां थीं । थाना प्रभारी ने अपने साथ मृतक के भाई यूनुस खां (अभि. सा. 2) को भी साथ लिया और उसके मामा गुल अकबर खां (अभि. सा. 5) और अब्दुल अकबर (अभि. सा. 14) अर्थात् मृतक के चचेरे भाई को भी साक्षी बनाया । सूखे कुंए से बरामद की गई अंगूठियों और कपड़ों से उन्होंने मृतक के शव की शनाख्त की । इसके पश्चात्, थाना प्रभारी ने देहाती मर्ग (प्रदर्श पी. 13) और देहाती नालिश (प्रदर्श पी. 34) तैयार की और इन दोनों दस्तावेजों को अपराध दर्ज कराने के लिए पुलिस थाने भेज दिया । देहाती नालिश के आधार पर अपराध दर्ज किया गया और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तैयार की गई जो प्रदर्श पी.35 है । कुंए की खुदाई तारीख 15 जनवरी, 2013 तक चलती रही । कुल मिलाकर शव के 60 टुकड़े बरामद किए गए जिन्हें इकट्ठा किया गया और शवपरीक्षण के लिए भेज दिया गया । शवपरीक्षण डा. एन. के. गुप्ता (अभि. सा. 13) द्वारा किया गया । डा. एन. के. गुप्ता उस समय जिला अस्पताल शाजापुर में चिकित्सा अधिकारी के पद पर तैनात थे । शव के टुकड़ों की जांच करने के पश्चात् चिकित्सा अधिकारी ने यह मामला चिकित्सा विधिक संस्थान, भोपाल को भेज दिया । उसने चिकित्सा विधिक संस्थान, भोपाल में कार्यरत अन्य दो चिकित्सकों, डा. केलू ग्रेवाल और डा. जी. एल. गुप्ता के साथ मिलकर मृतक के शव का शवपरीक्षण किया । शवपरीक्षण रिपोर्ट में यह पाया गया कि यह मृत्यु मानव वध से हुई है । सिर में किसी कठोर और कुन्द वस्तु से क्षति पहुंचाए जाने के चिह्न पाए गए और शव की गर्दन पर गला घोंटने के चिह्न भी पाए गए । जब अन्वेषण अधिकारी मनोहर सिंह (अभि. सा. 16) घटनास्थल पर पहुंचा, तब चारों अपीलार्थी तारीख 11 जनवरी, 2013 को वहां मौजूद थे । वे पुलिस के साथ तारीख 16 जनवरी, 2013 तक अर्थात् औपचारिक रूप से गिरफ्तार किए जाने तक वहां रहे । गिरफ्तारी के पश्चात् अभियुक्तों के प्रकटीकरण ज्ञापन तैयार किए गए । उनके प्रकटीकरण ज्ञापन के आधार पर बाका जिसका प्रयोग मांस काटने के लिए किया जाता है, कुल्हाड़ी और चाकू निकट के खेत से बरामद किए गए जिन्हें अपीलार्थियों ने छिपा दिया था । अभियोजन वृत्तांत के अनुसार इन वस्तुओं का प्रयोग मृतक के शव को काटने के लिए किया गया था । मृतक द्वारा अभिकथित रूप से पहनी गई एक चप्पल भी बरामद की गई जो रक्तरंजित पाई गई थी । मृतक की मोटरसाइकिल भी मध्य प्रदेश और राजस्थान की सीमा पर स्थित एक छोटे तालाब से बरामद की गई । यह

मोटरसाइकिल तारीख 18 जनवरी, 2013 को बरामद की गई थी । अन्वेषण अधिकारी द्वारा जिला मुख्यालय, आगार में स्थित हिमालय लाज से एक रजिस्टर अभिगृहीत किया गया जिससे अभिकथित रूप से यह पता चला कि अभियुक्त आमीन और मिथुन वहां पर एक रात ठहरे थे जब वे मृतक की मोटरसाइकिल फेंककर वापस आ रहे थे । मृतक याकूब खां की जंघास्थि, उसके बाल, मांसपेशियां, उसके पिता हाजी खां के रक्त का नमूना, उसके भाई यूनुस खां के रक्त का नमूना डी. एन. ए. परीक्षण के लिए भेजे गए । रक्तरंजित मिट्टी, सादा मिट्टी, मृतक के वस्त्र, चप्पल, कुल्हाड़ी, चाकू और एक बाका, जिन्हें अभिग्रहण ज्ञापन के अनुसार बरामद किया गया था, परीक्षण के लिए न्यायालयिक प्रयोगशाला के सीरम विशेषज्ञ के पास भेजा गया । उपरोक्त रूप में अन्वेषण की सभी औपचारिकताएं पूरी करने के पश्चात् आरोप पत्र फाइल किया गया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302/34 और 201 के अधीन आरोप विरचित करने और अभियोजन तथा प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से साक्ष्य अभिलिखित करने और साथ ही दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्तों की परीक्षा करने के पश्चात् उन्हें दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया । विद्वान् विचारण न्यायालय के दोषसिद्धि के इस आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस मामले में, मौखिक साक्ष्य अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि अभियोजन पक्षकथन पूर्णतया पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है । मृतक के घर वालों ने केवल इस संबंध में साक्ष्य दिया है कि मृतक ग्राम धनाना क्यों गया था । अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा कराए गए साक्षियों में तीन साक्षी महत्वपूर्ण हैं । यूनुस खां (अभि. सा. 2), मृतक का सगा भाई है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि तारीख 18 दिसंबर, 2012 को वह कालापीपल गया था और नए घर से 9.45 बजे पूर्वाह्न में रवाना हुआ था । लगभग 3.23 बजे अपराह्न में, उसे मृतक याकूब खां से एक फोन-काल प्राप्त हुई । उसने यूनुस खां को बताया कि उसने अभियुक्त आमीन खां को गुलाना के निकट पकड़ लिया है और उसने यह भी सूचना दी कि अभियुक्त आमीन ने उससे यह कहा है कि वह 3-4 दिन के भीतर उसका धन वापस कर देगा । यूनुस ने अपने भाई और पिता को बताया जिन्होंने उससे कहा कि वे धन बाद में वापस ले लेंगे । तत्पश्चात्, यूनुस ने अपने

मृतक भाई को 5 बजे अपराह्न में फोन नं. 9926376059 पर काल मिलाई किन्तु उसका फोन बंद पाया गया । इसके पश्चात् वह वापस नहीं आया, अतः तारीख 19 दिसंबर, 2012 से वे मृतक को ढूंढने लगे । अंत में, 6-7 दिन बाद उसने लापता होने की शिकायत दर्ज कराई जो प्रदर्श पी.3 है । ऐसा ही कथन हाजी खां (अभि. सा. 3) और मृतक की पत्नी सोनी बी (अभि. सा. 7) द्वारा दिया गया है कि मृतक ग्राम धनाना धन वापस लेने के लिए गया था जो उसने अभियुक्त आमीन को उधार दिया था । इन तीनों साक्षियों ने मुख्य रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्त आमीन ने मृतक से 17,000/- रुपए उधार लिए थे जो उसने अपनी पत्नी के प्रसव के खर्च के लिए प्राप्त किए थे और इसी धन की वसूली के लिए मृतक तारीख 18 दिसंबर, 2012 को अभियुक्त आमीन से मिलने गया था । अभियोजन पक्ष द्वारा इस साक्ष्य को यह दर्शित करने के लिए प्रस्तुत किया गया है कि उसे मृतक के साथ अन्तिम बार एक साथ देखा गया था । तथापि, यदि कड़े तौर पर कहा जाए तो इसे अन्तिम बार देखे जाने वाले साक्ष्य की कोटि में नहीं रखा जा सकता क्योंकि अभियोजन साक्षियों ने उसे अभियुक्त आमीन के साथ नहीं देखा था और केवल उन्हें फोन से पता चला था कि अभियुक्त की मुलाकात मृतक से हुई है और यह साबित नहीं हुआ है कि अभियुक्त आमीन वास्तव में उस समय मृतक के साथ था या नहीं । जब एक बार अभियुक्त आमीन मृतक के पास से (मृतक के जीवित रहने के दौरान) चला गया, तब अन्तिम बार एक साथ देखे जाने का सिद्धांत अभियुक्त के विरुद्ध साक्ष्य नहीं माना जा सकता । इसके अतिरिक्त, मौखिक सूचना जो कि मृतक द्वारा उसके भाई और पिता को दी गई थी, साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के अधीन नहीं आती है और इसे केवल अनुश्रुत साक्ष्य कहा जा सकता है जो कि ग्राह्य नहीं है । एक अन्य महत्वपूर्ण साक्ष्य है जो डा. एन. के. गुप्ता (अभि. सा. 13) द्वारा दिया गया चिकित्सीय साक्ष्य है जिन्होंने चिकित्सा विधिक संस्थान, भोपाल के अन्य दो विशेषज्ञ चिकित्सकों के साथ मिलकर ट्यूबवैल से बरामद किए गए शव का शवपरीक्षण किया था । डा. एन. के. गुप्ता (अभि. सा. 13) के साक्ष्य का महत्वपूर्ण पहलू यह है कि मृतक की मृत्यु मानव-वध है और उन्होंने मृतक की करोटि पर विदीर्ण घाव देखे थे जो किसी कठोर और कुन्द वस्तु से कारित किए जा सकते हैं और मृतक की गर्दन पर गला घोंटने के चिह्न भी पाए गए थे । चूंकि शव को कई टुकड़ों में काटा गया था, इसलिए इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह मृत्यु मानव वध द्वारा कारित

की गई है न कि दुर्घटना या आत्महत्या का यह परिणाम है, तद्नुसार, इस संबंध में आगे और कोई चर्चा अपेक्षित नहीं है । अन्य दो महत्वपूर्ण साक्षियों में एक साक्षी गुल अकबर खां (अभि. सा. 5) है । यह साक्षी मृतक का सगा चाचा है और अब्दुल अकबर खां के साथ उन सभी अभिग्रहण ज्ञापनों पर अनुप्रमाणक साक्षी के रूप में हस्ताक्षर किए हैं जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन तैयार किए गए थे । इन साक्षियों के संबंध में, अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल ने यह निवेदन किया है कि ऊपर कोट की गई धारा 100 के उपबंधों के अनुसार अन्वेषण अधिकारी के लिए यह आवश्यक है कि वह स्थानीय निवासियों की मौजूदगी में अभिग्रहण ज्ञापन तैयार करे, और यदि उस परिक्षेत्र से कोई साक्षी उपलब्ध नहीं होता है या जो उपलब्ध होते हैं वे साक्षी बनने से इनकार करते हैं तब ज्ञापन में इस संबंध में टिप्पणी अभिलिखित की जानी चाहिए । तथापि, इस मामले में अभिग्रहण ज्ञापन में अन्वेषण अधिकारी द्वारा ऐसा कोई टिप्पण नहीं किया गया है बल्कि उन व्यक्तियों को साक्षी बनाया गया है जो मृतक के निकट नातेदार हैं और अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल के अनुसार सम्पूर्ण अन्वेषण में ऐसे व्यक्तियों के साक्षी बनाए जाने से अभियोजन वृत्तांत पर संदेह होता है । इस मामले में, जहां तक ट्यूबवैल से शव के टुकड़ों के बरामद होने का संबंध है, कोई भी विवाद नहीं है और अभियुक्त की शनाख्त को लेकर भी अपीलार्थियों द्वारा कोई भी विवाद नहीं किया गया है तथापि, अभियोजन पक्षकथन, हथियारों की बरामदगी, जिनका प्रयोग मृतक के शव को विच्छिन्न करने में किया गया था, और कुल्हाड़ी जिसका प्रयोग हत्या करने में किया गया था और अन्त में राजस्थान राज्य में स्थित ग्राम के एक गड्ढे में से बरामद की गई मोटरसाइकिल जैसे साक्ष्यों पर आधारित है । शव के टुकड़े करने में प्रयोग किए गए हथियारों की बरामदगी को ध्यान में रखते हुए अन्वेषण अधिकारी मनोहर सिंह ठाकुर (अभि.सा. 16) ने अभियुक्त आमीन के प्रकटीकरण कथन (प्रदर्श पी. 17) के आधार पर अभिग्रहण ज्ञापन तैयार किया । अपने प्रकटीकरण कथन में अभियुक्त ने यह बताया कि कुल्हाड़ी और अन्य हथियार उसके खेत में खड़ी फसल में पड़े हुए हैं । इस ज्ञापन के आधार पर अभियुक्त आमीन खां के खेत में से एक चाकू (प्रदर्श पी. 20), एक कुल्हाड़ी (प्रदर्श पी. 21), एक बाका (प्रदर्श पी. 25) बरामद किए गए । इसके अतिरिक्त, रानी रूपमती गुम्बद, सारंग पुर के निकट झाड़ियों में से अभियुक्त मिथुन द्वारा दिए गए प्रकटीकरण कथन के आधार पर एक चप्पल

बरामद की गई जो अभिकथित रूप से मृतक की बताई गई जिस पर रक्त लगा हुआ था और अभियुक्तों की एक मोटरसाइकिल भी बरामद की गई जिसे मवेशियों के चारे में छिपाया गया था । (पैरा 16, 17 और 20)

जहां तक मृतक की चप्पल का संबंध है, यह चप्पल तारीख 17 जनवरी, 2013 को मिथुन द्वारा दिए गए प्रकटीकरण के आधार पर बरामद की गई थी । इस चप्पल को सीरम विज्ञानी द्वारा जांच किए जाने के लिए न्यायालयिक प्रयोगशाला भेजा गया था । इसे डी. एन. ए. परीक्षण के लिए नहीं भेजा गया और सीरम विज्ञानी द्वारा किए गए परीक्षण के अनुसार चप्पल पर कोई भी रक्त नहीं पाया गया । मृतक के परिवार के सदस्यों द्वारा मृतक की चप्पल की शनाख्त भी नहीं कराई गई । मृतक के परिवार के सदस्य पूरे समय अन्वेषण के दौरान मौजूद रहे और उन्होंने मृतक द्वारा पहने गए वस्त्रों और अंगूठियों की शनाख्त भी की किन्तु अन्वेषण अधिकारी मृतक के परिवार के सदस्यों से उसकी चप्पल की शनाख्त नहीं करवा सका, इस स्थिति में यह नहीं कहा जा सकता है कि अन्वेषण के दौरान पुलिस द्वारा बरामद की गई चप्पल मृतक की थी । न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट के अनुसार ट्यूबवैल के साथ लगे खेत में से बरामद किए गए आयुधों पर मानव-रक्त लगा पाया गया । तथापि, उस रक्त के ग्रुप का पता नहीं चल सका और रिपोर्ट से कोई निष्कर्ष नहीं निकल सका, अतः, यह साबित नहीं किया गया है कि ये वही हथियार हैं जिनका प्रयोग मृतक के शव के टुकड़े करने में किया गया था । यद्यपि इस साक्षी को पक्षद्रोही घोषित किया गया फिर भी इस साक्षी ने यह स्वीकार किया है कि उसने पुलिस को अपना कथन दिया था जो प्रदर्श पी. 2 है । उसने अपने कथन में, जिसे प्रदर्श पी. 2 के रूप में चिह्नांकित किया गया है, यह उल्लेख किया है कि तारीख 19 दिसंबर, 2012 को लगभग 9.30 बजे दो लड़के उसकी लाज में आए और जब उसने उनसे उनके नाम मालूम किए तब उन्होंने अपना नाम मिथुन पुत्र बाबूलाल और आमीन खां. पुत्र कादिर खां बताया । उन्होंने अभि. सा. 1 को यह भी बताया कि वे रामगंज मंडी, राजस्थान से आ रहे हैं और वे बैय्यर नगर जाएंगे । अगले दिन प्रातःकाल वे लाज से चले गए । रजिस्टर की गहराई से जांच करने पर, जिसे तात्विक वस्तु ए-11 के रूप में चिह्नांकित किया गया है और पीरू लाल (अभि. सा.1) के कथन (प्रदर्श पी. 2) को लेकर रजिस्टर में विरोधाभास दिखाई देता है । जिस कमरे में अपीलार्थी सोए थे उसे कमरा नं. 12 दर्शाया गया है और आगमन की तारीख 21 नवंबर, 2012 लिखी गई है ।

रजिस्टर में उल्लिखित तारीख के संबंध में अभियोजन पक्ष द्वारा कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । तथापि, पूर्व में की गई प्रविष्टियों को दृष्टिगत करते हुए, यदि यह मान लिया जाए कि तारीख 21 दिसंबर, 2012 सही है, तब यह तारीख उस कथन से मेल नहीं खाती है जो उसने तारीख 18 जनवरी, 2013 को उस समय दिया था जब रजिस्टर उसके साथ था और उसने यह कहा था कि अपीलार्थी तारीख 19 दिसंबर, 2012 को ठहरने के लिए आए थे । इसके अतिरिक्त, लाज से रवाना होने का समय भी रजिस्टर में उनके नाम के आगे नहीं लिखा गया है और रजिस्टर में उसी कमरे में एक अन्य व्यक्ति के ठहरने को दर्शाया गया है । अभियोजन पक्ष द्वारा यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि अपीलार्थी अभिकथित रूप से जिस कमरे में ठहरे थे उसमें तीन बिस्तर लगे हुए थे या दो थे या अनेक बिस्तरों वाला वह एक बड़ा हाल था । इसके अतिरिक्त, अन्वेषण अधिकारी द्वारा इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि उसे यह कैसे पता चला कि ये दोनों अपीलार्थी हिमालय लाज में ठहरे थे और वे ग्राम बगदल से वापस आ रहे थे । साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन दिए गए प्रकटीकरण कथन में, जिन्हें प्रदर्श पी. 16 और प्रदर्श पी. 17 के रूप में चिह्नांकित किया गया है, दोनों अपीलार्थियों अर्थात् मिथुन मालवीय और आमीन खां ने हिमालय लाज में ठहरने की बात किसी को नहीं बताई थी और इससे रजिस्टर में की गई प्रविष्टियां अत्यंत संदिग्ध हो जाती हैं । इसके अतिरिक्त, जैसा कि ऊपर कथन किया गया है अनुप्रमाणन साक्षी मृतक के निकट नातेदार हैं और उनके कथनों का अवलंब आसानी से नहीं लिया जा सकता । यह भी बड़े आश्चर्य की बात है कि ग्राम बगदल के रहने वाले किसी भी व्यक्ति की परीक्षा अभियोजन पक्ष द्वारा यह दर्शित करने के लिए नहीं कराई गई है कि पुलिस ग्राम बगदल गई थी । उन्होंने रस्सी की सहायता से तालाब से मोटरसाइकिल निकाली थी । रस्सी लेकर कौन आया था, तालाब में कौन् उतरा था, मोटरसाइकिल में रस्सी किसने बांधी थी जैसी सभी बातें अभियोजन पक्ष द्वारा साबित नहीं की गई हैं । एक भिन्न राज्य में अन्वेषण करने के लिए स्थानीय पुलिस थाने में कोई भी संसूचना नहीं दी गई थी जहां पर भिन्न पुलिस थाना होने के कारण अन्वेषण अधिकारी को अन्वेषण करने का कोई प्राधिकार नहीं था । अन्वेषण अधिकारी द्वारा इन पहलुओं को स्पष्ट नहीं किया गया है और इससे यह संदेह होता है कि वास्तव में पुलिस मोटरसाइकिल बरामद करने के लिए ग्राम बगदल गई थी या नहीं या वर्तमान अपीलार्थियों को मात्र

मिथ्या फंसाने के लिए साक्ष्य गढ़ा गया है, अतः ग्राम बगदल के छोटे से तालाब से मोटरसाइकिल की बरामदगी विश्वसनीय नहीं है । इसके अतिरिक्त, स्पष्ट विधि यह है कि बरामदगी ऐसे स्थान से की जानी चाहिए जिसका ज्ञान केवल अपीलार्थी को हो । जब यह संभावना हो कि अन्य व्यक्तियों को भी बरामद की जाने वाली वस्तुओं की जानकारी है तब ऐसी बरामदगी से कोई लाभ नहीं । इस संबंध में अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने एक अन्य मामले में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है जिसमें उच्च न्यायालय ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अनेक मामलों में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए यह मत व्यक्त किया है कि जब हमलावर अभियुक्त के सिवाय किसी तीसरे व्यक्ति को छिपे हुए सामान की जानकारी होने की संभावना होती है तब ऐसे साक्ष्य के आधार पर वर्तमान मामले में दोषसिद्धि नहीं की जा सकती । यह स्वीकार्य है कि किसी अज्ञात व्यक्ति ने ट्यूबवैल में शव पड़े होने की जानकारी पुलिस को दी थी । अन्वेषण अधिकारी मनोहर सिंह ठाकुर (अभि. सा. 16) ने अपने कथन के पैरा 43 में यह उल्लेख किया है कि जिस व्यक्ति ने उसे अपराध की सूचना दी थी उसी व्यक्ति ने सभी अभियुक्तों के नाम भी बताए थे और यह भी बताया था कि अपराध किस प्रकार कारित किया गया है । यह संभावना है कि अन्वेषण अधिकारी को मृतक की मोटरसाइकिल के बारे में सूचना दी गई हो, अतः साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन तैयार किए गए प्रकटीकरण ज्ञापन के आधार पर बरामद की गई अपराध से संबंधित वस्तुएं पहले से ही अपीलार्थियों के अलावा अन्य व्यक्तियों की जानकारी में थी, तब ऐसे साक्ष्य के आधार पर अवलंब नहीं लिया जा सकता । अभियोजन पक्षकथन का अन्तिम पहलू अपराध का हेतु है । इस मामले में हेतु 17,000/- रुपए की रकम को दर्शाया गया है जो मृतक ने अभियुक्त आमीन खां को उधार दी थी और अभियोजन पक्षकथन के अनुसार मृतक आमीन खां से वह रकम वसूल करने के लिए गया था । तथापि, 17,000/- रुपए की यह रकम किसी व्यक्ति की हत्या करने के लिए बहुत कम मालूम होती है । अपीलार्थियों और मृतक के बीच कोई भी शत्रुता नहीं थी । अभियोजन पक्ष न्यायालय के मन में यह विश्वास नहीं जगा सका है कि कोई व्यक्ति 17,000/- रुपए के ऋण से बचने के लिए किसी व्यक्ति की हत्या कर देगा । यह कथन किया गया है कि अपीलार्थी आमीन खां के पास कृषि भूमि है, संभव है कि किसी समय उसे धन की आवश्यकता रही हो, इसलिए, उसने मृतक से ऋण लिया था ।

किन्तु यह बात समझ से बाहर है कि वह इतनी छोटी रकम के लिए मृतक की हत्या करेगा । (पैरा 24, 26, 27 और 28)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 3756 : **संगिली** उर्फ **संगनाथम** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	29
[2013]	(2013) क्रिमिनल ला जर्नल 2858 : **भोकलो** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	27
[1987]	(1987) 3 एस. सी. सी. 480 = ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 1560 : **कांसा बेहेरा** बनाम **उड़ीसा राज्य** ;	29
[1984]	(1984) 4 एस. सी. सी. 116 = ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1622 : **शरद बिरधीचंद सारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	29
[1966]	ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 119 : **अगनू** बनाम **बिहार राज्य** ;	29

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2016 का दांडिक निर्देश सं. 3.

2013 के सेशन विचारण मामला सं. 114 में तारीख 10 जून, 2016 को अपर सेशन न्यायाधीश, शाजापुर द्वारा पारित मृत्यु दंडादेश के प्रतिनिर्देश दांडिक आवेदन सं. 03/2016 ।

अपीलार्थी की ओर से श्री विवेक सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से श्री मिलिंद फड़के

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आलोक वर्मा ने दिया ।

न्या. वर्मा – 2013 के सेशन विचारण मामला सं. 114 जिसमें द्वितीय अपर सेशन न्यायाधीश, शाजापुर द्वारा तारीख 10 जून, 2016 को अभियुक्त आमीन खां पुत्र कादर खां, मिथुन पुत्र बाबूलाल, शेख दाउद पुत्र कादर खां और शेख अमजद पुत्र कादर खां को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302/34 और 201 के अधीन दोषी पाया गया और उन्हें क्रमशः मृत्यु दंड तथा सात वर्ष के

कठोर कारावास और 25,000/- रुपए जुर्माने से जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर एक वर्ष के कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया और इस आदेश की पुष्टि के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 366 के अधीन इस विचारण न्यायालय द्वारा दांडिक प्रतिनिर्देश सं. 03/2016 फाइल की गई साथ ही सभी अभियुक्तों द्वारा, इस आदेश से व्यथित होकर, दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध अपील फाइल की गई और इन दोनों का निपटारा एक ही निर्णय द्वारा किया जा रहा है ।

2. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि मृतक याकूब खां के भाई यूनुस खां ने तारीख 25 दिसंबर, 2012 को लापता होने की रिपोर्ट दर्ज कराई जिसमें उसने यह कथन किया कि उसका भाई याकूब खां (मृतक) अकोडिया से धनाना गया था । उसे अभियुक्त आमीन खां पुत्र कादर खां से ऋण की वसूली करनी थी । उसने ग्राम धनाना से फोन पर बात की और उसके पश्चात् वह धनाना से अन्य किसी स्थान पर चला गया और इसके पश्चात् उसका कहीं पता नहीं चल सका । उसका भाई मोटरसाइकिल (रजिस्ट्रेशन सं. एम पी 04 एन ए 7558) से ग्राम धनाना गया था और उसके पास मोबाइल फोन था ।

3. तारीख 11 जनवरी, 2013 को 10.20 बजे पूर्वाह्न में थाना सलसलाई, जिला शाजापुर के थाना प्रभारी को फोन पर किसी अज्ञात व्यक्ति से सूचना प्राप्त हुई । फोन करने वाले व्यक्ति ने थाना प्रभारी को यह बताया कि ग्राम धनाना के अभियुक्त आमीन खां ने अपने दो भाइयों शेख दाउद खां और शेख अमजद खां तथा अपने मित्र मिथुन के साथ मिलकर मृतक की हत्या की है । उन्होंने मृतक के शव को कई टुकड़ों में काट दिया है और अभियुक्त आमीन की भूमि में स्थित सूखे कुंए में उन टुकड़ों को डाल दिया है । थाना प्रभारी द्वारा यह सूचना तारीख 11 जनवरी, 2013 को 10.20 बजे पूर्वाह्न में ही रोजनामचे में क्रम सं. 197 पर दर्ज की गई । उसने अपने वरिष्ठ अधिकारियों को सूचित किया और इस संबंध में रोजनामचे में क्रम सं. 198 पर प्रविष्टि की । थाना प्रभारी ने कुंए में खुदाई करने हेतु उपखंड मजिस्ट्रेट से अनुज्ञा प्राप्त करने के लिए एक पत्र भेजा और इसके पश्चात् वह सरकारी वाहन (रजिस्ट्रेशन सं. एम पी 03 ए सी 529) से ग्राम धनाना के लिए रवाना हो गया ।

4. सूखे कुंए पर पहुंचने पर, उसने तहसीलदार सुश्री आशा परमार से अनुज्ञा प्राप्त की और खुदाई करने वाली मशीन से 2 बजे अपराह्न में कुंए की खुदाई आरंभ कराई । लगभग 4 बजे अपराह्न में मृतक के शव के

टुकड़े और उसके कपड़े दिखाई दिए । शव से कटी हुई दो हथेलियां बरामद हुईं जिनमें अंगूठियां थीं । थाना प्रभारी ने अपने साथ मृतक के भाई यूनुस खां (अभि. सा. 2) को भी साथ लिया और उसके मामा गुल अकबर खां (अभि. सा. 5) और अब्दुल अकबर (अभि. सा. 14) अर्थात् मृतक के चचेरे भाई को भी साक्षी बनाया । सूखे कुंए से बरामद की गई अंगूठियों और कपड़ों से उन्होंने मृतक के शव की शनाख्त की । इसके पश्चात्, थाना प्रभारी ने देहाती मर्ग (प्रदर्श पी. 13) और देहाती नालिश (प्रदर्श पी. 34) तैयार की और इन दोनों दस्तावेजों को अपराध दर्ज कराने के लिए पुलिस थाने भेज दिया । देहाती नालिश के आधार पर अपराध दर्ज किया गया और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तैयार की गई जो प्रदर्श पी. 35 है ।

5. कुंए की खुदाई तारीख 15 जनवरी, 2013 तक चलती रही । कुल मिलाकर शव के 60 टुकड़े बरामद किए गए जिन्हें इकट्ठा किया गया और शवपरीक्षण के लिए भेज दिया गया । शवपरीक्षण डा. एन. के. गुप्ता (अभि. सा. 13) द्वारा किया गया । डा. एन. के. गुप्ता उस समय जिला अस्पताल शाजापुर में चिकित्सा अधिकारी के पद पर तैनात थे । शव के टुकड़ों की जांच करने के पश्चात् चिकित्सा अधिकारी ने यह मामला चिकित्सा विधिक संस्थान, भोपाल को भेज दिया । उसने चिकित्सा विधिक संस्थान, भोपाल में कार्यरत अन्य दो चिकित्सकों, डा. केलू ग्रेवाल और डा. जी. एल. गुप्ता के साथ मिलकर मृतक के शव का शवपरीक्षण किया । शवपरीक्षण रिपोर्ट में यह पाया गया कि यह मृत्यु मानव वध से हुई है । सिर में किसी कठोर और कुन्द वस्तु से क्षति पहुंचाए जाने के चिह्न पाए गए और शव की गर्दन पर गला घोंटने के चिह्न भी पाए गए ।

6. जब अन्वेषण अधिकारी मनोहर सिंह (अभि. सा. 16) घटनास्थल पर पहुंचा, तब चारों अपीलार्थी तारीख 11 जनवरी, 2013 को वहां मौजूद थे । वे पुलिस के साथ तारीख 16 जनवरी, 2013 तक अर्थात् औपचारिक रूप से गिरफ्तार किए जाने तक वहां रहे । गिरफ्तारी के पश्चात् अभियुक्तों के प्रकटीकरण ज्ञापन तैयार किए गए । उनके प्रकटीकरण ज्ञापन के आधार पर बाका जिसका प्रयोग मांस काटने के लिए किया जाता है, कुल्हाड़ी और चाकू निकट के खेत से बरामद किए गए जिन्हें अपीलार्थियों ने छिपा दिया था । अभियोजन वृत्तांत के अनुसार इन वस्तुओं का प्रयोग मृतक के शव को काटने के लिए किया गया था । मृतक द्वारा अभिकथित रूप से पहनी गई एक चप्पल भी बरामद की गई जो रक्तरंजित पाई गई थी । मृतक की मोटरसाइकिल भी मध्य प्रदेश और राजस्थान की सीमा पर

स्थित एक छोटे तालाब से बरामद की गई । यह मोटरसाइकिल तारीख 18 जनवरी, 2013 को बरामद की गई थी । अन्वेषण अधिकारी द्वारा जिला मुख्यालय, आगार में स्थित हिमालय लाज से एक रजिस्टर अभिगृहीत किया गया जिससे अभिकथित रूप से यह पता चला कि अभियुक्त आमीन और मिथुन वहां पर एक रात ठहरे थे जब वे मृतक की मोटरसाइकिल फेंककर वापस आ रहे थे ।

7. मृतक याकूब खां की जंघास्थि, उसके बाल, मांसपेशियां, उसके पिता हाजी खां के रक्त का नमूना, उसके भाई यूनुस खां के रक्त का नमूना डी. एन. ए. परीक्षण के लिए भेजे गए । रक्तरंजित मिट्टी, सादा मिट्टी, मृतक के वस्त्र, चप्पल, कुल्हाड़ी, चाकू और एक बाका, जिन्हें अभिग्रहण ज्ञापन के अनुसार बरामद किया गया था, परीक्षण के लिए न्यायालयिक प्रयोगशाला के सीरम विशेषज्ञ के पास भेजा गया ।

8. उपरोक्त रूप में अन्वेषण की सभी औपचारिकताएं पूरी करने के पश्चात् आरोप पत्र फाइल किया गया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302/34 और 201 के अधीन आरोप विरचित करने और अभियोजन तथा प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से साक्ष्य अभिलिखित करने और साथ ही दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्तों की परीक्षा करने के पश्चात् उन्हें दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया ।

9. अपीलार्थियों ने दोषसिद्धि के निर्णय से व्यथित होकर निम्न आधारों पर यह अपील फाइल की है :–

(i) यह निर्णय विधि और तथ्यों के प्रतिकूल है ।

(ii) विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय विधि के सुस्थापित सिद्धांतों के विरुद्ध है ।

(iii) विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रतिरक्षा पक्ष के वृत्तांत को त्यक्त करने में पूर्ण रूप से त्रुटि की है ।

(iv) विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अवांछनीय हैं और विधि की दृष्टि से ग्राह्य साक्ष्य द्वारा कायम नहीं रखे जा सकते हैं ।

(v) अभियोजन साक्षियों के कथनों में सारभूत लोप और विरोधाभास हैं जिन पर विचारण न्यायालय द्वारा ध्यान नहीं दिया गया

है ।

(vi) इस मामले में की गई दोषसिद्धि विधि की दृष्टि से अनुचित है ।

10. प्रत्यर्थी/राज्य के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया है कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत ऐसे साक्ष्य पर आधारित हैं जो ग्राह्य और उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान अपीलार्थियों ने ही अपराध कारित किया है, अतः इन निष्कर्षों में कोई भी हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता । विद्वान् काउंसेल ने यह भी निवेदन किया है कि वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई अपील खारिज की जा सकती है और मृत्यु दंडादेश की पुष्टि की जा सकती है ।

11. अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार करने के पूर्व हम यह सूचीबद्ध करते हैं कि अपीलार्थियों के विरुद्ध उपलब्ध साक्ष्य क्या है । उनके विरुद्ध उपलब्ध साक्ष्य निम्न प्रकार है :–

(i) मृतक के शव के टुकड़े सूखे कुंए (ट्यूबवैल) में से प्राप्त हुए हैं जो उस भूमि में बना हुआ है जो अपीलार्थी आमीन के कब्जे में है ।

(ii) अपीलार्थियों के प्रकटीकरण ज्ञापन के आधार पर एक चाकू, एक बाका और एक कुल्हाड़ी निकट के खेत से बरामद की गई है जो खेत में खड़ी फसल में छिपाए गए थे ।

(iii) अपीलार्थियों के प्रकटीकरण ज्ञापन के अनुसार उनकी मोटरसाइकिल बरामद की गई है जिसे अपीलार्थियों ने छिपा दिया था, झालरा, पाटन, राजस्थान के ग्राम केडला में एक छोटे से तालाब से मृतक की मोटरसाइकिल भी बरामद हुई जिससे मृतक ग्राम धनाना गया था ।

(iv) शवपरीक्षण के दौरान चिकित्सकों के दल ने यह राय व्यक्त की है कि मृतक के सिर पर किसी कठोर और धारदार वस्तु से हमला किया गया था जो कि कोई कुल्हाड़ी भी हो सकती है और वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा दिए गए प्रकटीकरण ज्ञापन के अनुसार एक कुल्हाड़ी बरामद भी की गई है ।

12. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि गुल

अकबर खां (अभि. सा. 5) मृतक का सगा मामा है और अकबर (अभि. सा. 14) मृतक का चचेरा भाई है, इन दोनों व्यक्तियों को अन्वेषण अधिकारी द्वारा तैयार किए गए सभी दस्तावेजों का साक्षी बनाया गया है और अन्वेषण के दौरान उन्होंने उन पर हस्ताक्षर भी किए हैं । शव की शनाख्त के संबंध में साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन कई अभिग्रहण ज्ञापनों पर साक्षियों के हस्ताक्षर कराए गए । इस साक्षी के अनुसार दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 100(4) निम्न प्रकार है :–

"(3)...

(4) इस अध्याय के अधीन तलाशी लेने के पूर्व ऐसा अधिकारी या अन्य व्यक्ति, जब तलाशी लेने ही वाला हो, तलाशी में हाजिर रहने और उसके साक्षी बनने के लिए उस मोहल्ले के, जिसमें तलाशी लिया जाने वाला स्थान है, दो या अधिक स्वतंत्र और प्रतिष्ठित निवासियों को या यदि उक्त मोहल्ले का ऐसा कोई निवासी नहीं मिलता है या उस तलाशी का साक्षी होने के लिए रजामंद नहीं है तो किसी अन्य मोहल्ले के ऐसे निवासियों को बुलाएगा और उनको या उनमें से किसी को ऐसा करने के लिए लिखित आदेश जारी कर सकेगा ।

(5) ... "

13. इस उपधारा के अधीन यह उपबंध किया गया है कि तलाशी उस परिक्षेत्र के दो या दो से अधिक स्वतंत्र और प्रतिष्ठित निवासियों की मौजूदगी में ली जानी चाहिए जहां तलाशी करना आशयित है । इस तलाशी के संबंध में अनुप्रमाणक साक्षी किसी अन्य परिक्षेत्र के भी हो सकते हैं किन्तु ऐसा तब किया जा सकता है जब यह समाधान हो जाए कि आशयित परिक्षेत्र में अन्वेषण अधिकारी को कोई भी साक्षी उपलब्ध नहीं है या जो साक्षी वहां उपलब्ध थे उन्होंने साक्षी बनने से इनकार कर दिया हो ।

14. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि किसी भी दस्तावेज से यह दर्शित नहीं होता है कि घटनास्थल पर अन्य कोई व्यक्ति मौजूद नहीं था और यह भी दर्शित नहीं होता है कि मौजूद किसी भी व्यक्ति ने अनुप्रमाणक साक्षी बनने से इनकार किया था । काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि अन्वेषण अधिकारी ने ट्यूबवैल के निकट उस समय कोई भी तलाशी नहीं ली जब जे. सी. बी. मशीन ट्यूबवैल में खुदाई कर रही थी ताकि यह पता लगाया जाता कि

अपराध में प्रयोग किया गया हथियार वहां मौजूद था या नहीं । पुलिस द्वारा ट्यूबवैल के बिल्कुल निकट स्थान से बाका, चाकू और कुल्हाड़ी बरामद किए गए थे, अतः अन्वेषण अधिकारी द्वारा चूक की गई है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि मोटरसाइकिल की बरामदगी भी संदिग्ध है । इस अपराध के कारित किए जाने की एकमात्र जानकारी केवल वर्तमान अपीलार्थियों को ही नहीं थी । स्वीकृततः, कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने इस घटना के बारे में पुलिस को सूचना दी । अन्वेषण अधिकारी ने अपने कथन के पैरा 43 में यह स्वीकार किया है कि ग्राम धनाना के लिए रवाना होने के पूर्व उसे अभियुक्त व्यक्तियों के नामों का पता चल गया था और उसे यह भी जानकारी मिल गई थी कि अपराध किस प्रकार कारित किया गया है । किसी व्यक्ति को यह अवश्य मालूम था कि शव ट्यूबवैल में पड़ा हुआ है और इसीलिए यह भी संभव है कि कोई व्यक्ति यह जानता था कि मृतक की मोटरसाइकिल कहां है, अतः जब यह बात सामने आ जाती है कि अन्य व्यक्तियों को भी इन वस्तुओं की जानकारी थी तब ऐसा साक्ष्य सुसंगत नहीं है और इसे दोषसिद्धि का आधार नहीं बनाया जा सकता ।

15. उपरोक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए, अब हम अभियोजन पक्ष के साक्ष्य पर विस्तार से विचार करेंगे ।

16. इस मामले में, मौखिक साक्ष्य अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि अभियोजन पक्षकथन पूर्णतया पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है । मृतक के घर वालों ने केवल इस संबंध में साक्ष्य दिया है कि मृतक ग्राम धनाना क्यों गया था । अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा कराए गए साक्षियों में तीन साक्षी महत्वपूर्ण हैं । यूनुस खां (अभि. सा. 2), मृतक का सगा भाई है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि तारीख 18 दिसंबर, 2012 को वह कालापीपल गया था और नए घर से 9.45 बजे पूर्वाह्न में रवाना हुआ था । लगभग 3.23 बजे अपराह्न में, उसे मृतक याकूब खां से एक फोन-काल प्राप्त हुई । उसने यूनुस खां को बताया कि उसने अभियुक्त आमीन खां को गुलाना के निकट पकड़ लिया है और उसने यह भी सूचना दी कि अभियुक्त आमीन ने उससे यह कहा है कि वह 3-4 दिन के भीतर उसका धन वापस कर देगा । यूनुस ने अपने भाई और पिता को बताया जिन्होंने उससे कहा कि वे धन बाद में वापस ले लेंगे । तत्पश्चात्, यूनुस ने अपने मृतक भाई को 5 बजे अपराह्न में फोन नं. 9926376059 पर काल मिलाई किन्तु उसका फोन बंद पाया गया । इसके पश्चात् वह वापस नहीं

आया, अतः तारीख 19 दिसंबर, 2012 से वे मृतक को ढूंढने लगे । अंत में, 6-7 दिन बाद उसने लापता होने की शिकायत दर्ज कराई जो प्रदर्श पी. 3 है । ऐसा ही कथन हाजी खां (अभि. सा. 3) और मृतक की पत्नी सोनी बी (अभि. सा. 7) द्वारा दिया गया है कि मृतक ग्राम धनाना धन वापस लेने के लिए गया था जो उसने अभियुक्त आमीन को उधार दिया था । इन तीनों साक्षियों ने मुख्य रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्त आमीन ने मृतक से 17,000/- रुपए उधार लिए थे जो उसने अपनी पत्नी के प्रसव के खर्च के लिए प्राप्त किए थे और इसी धन की वसूली के लिए मृतक तारीख 18 दिसंबर, 2012 को अभियुक्त आमीन से मिलने गया था । अभियोजन पक्ष द्वारा इस साक्ष्य को यह दर्शित करने के लिए प्रस्तुत किया गया है कि उसे मृतक के साथ अन्तिम बार एक साथ देखा गया था । तथापि, यदि कड़े तौर पर कहा जाए तो इसे अन्तिम बार देखे जाने वाले साक्ष्य की कोटि में नहीं रखा जा सकता क्योंकि अभियोजन साक्षियों ने उसे अभियुक्त आमीन के साथ नहीं देखा था और केवल उन्हें फोन से पता चला था कि अभियुक्त की मुलाकात मृतक से हुई है और यह साबित नहीं हुआ है कि अभियुक्त आमीन वास्तव में उस समय मृतक के साथ था या नहीं । जब एक बार अभियुक्त आमीन मृतक के पास से (मृतक के जीवित रहने के दौरान) चला गया, तब अन्तिम बार एक साथ देखे जाने का सिद्धांत अभियुक्त के विरुद्ध साक्ष्य नहीं माना जा सकता । इसके अतिरिक्त, मौखिक सूचना जो कि मृतक द्वारा उसके भाई और पिता को दी गई थी, साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के अधीन नहीं आती है और इसे केवल अनुश्रुत साक्ष्य कहा जा सकता है जो कि ग्राह्य नहीं है । एक अन्य महत्वपूर्ण साक्ष्य है जो डा. एन. के. गुप्ता (अभि. सा. 13) द्वारा दिया गया चिकित्सीय साक्ष्य है जिन्होंने चिकित्सा विधिक संस्थान, भोपाल के अन्य दो विशेषज्ञ चिकित्सकों के साथ मिलकर ट्यूबवैल से बरामद किए गए शव का शवपरीक्षण किया था । डा. एन. के. गुप्ता (अभि. सा. 13) के साक्ष्य का महत्वपूर्ण पहलू यह है कि मृतक की मृत्यु मानव वध है और उन्होंने मृतक की करोटि पर विदीर्ण घाव देखे थे जो किसी कठोर और कुन्द वस्तु से कारित किए जा सकते हैं और मृतक की गर्दन पर गला घोंटने के चिह्न भी पाए गए थे । चूंकि शव को कई टुकड़ों में काटा गया था, इसलिए इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह मृत्यु मानव वध द्वारा कारित की गई है न कि दुर्घटना या आत्महत्या का यह परिणाम है, तद्नुसार, इस संबंध में आगे और कोई चर्चा अपेक्षित नहीं है ।

17. अन्य दो महत्वपूर्ण साक्षियों में एक साक्षी गुल अकबर खां (अभि. सा. 5) है । यह साक्षी मृतक का सगा चाचा है और अब्दुल अकबर खां के साथ उन सभी अभिग्रहण ज्ञापनों पर अनुप्रमाणक साक्षी के रूप में हस्ताक्षर किए हैं जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन तैयार किए गए थे । इन साक्षियों के संबंध में, अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल ने यह निवेदन किया है कि ऊपर कोट की गई धारा 100 के उपबंधों के अनुसार अन्वेषण अधिकारी के लिए यह आवश्यक है कि वह स्थानीय निवासियों की मौजूदगी में अभिग्रहण ज्ञापन तैयार करे, और यदि उस परिक्षेत्र से कोई साक्षी उपलब्ध नहीं होता है या जो उपलब्ध होते हैं वे साक्षी बनने से इनकार करते हैं तब ज्ञापन में इस संबंध में टिप्पणी अभिलिखित की जानी चाहिए । तथापि, इस मामले में अभिग्रहण ज्ञापन में अन्वेषण अधिकारी द्वारा ऐसा कोई टिप्पण नहीं किया गया है बल्कि उन व्यक्तियों को साक्षी बनाया गया है जो मृतक के निकट नातेदार हैं और अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल के अनुसार सम्पूर्ण अन्वेषण में ऐसे व्यक्तियों के साक्षी बनाए जाने से अभियोजन वृत्तांत पर संदेह होता है ।

18. तथापि, राज्य के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया है कि साक्ष्य अधिनियम के अधीन ऐसा कोई वर्जन नहीं है कि मृतक का निकट नातेदार अनुप्रमाणन साक्षी नहीं बन सकता ।

19. तथापि, हमारी राय में यह सत्य है कि मृतक के निकट नातेदार का अनुप्रमाणन साक्षी बनना वर्जित नहीं है, परन्तु फिर भी उसका प्रमाणकारी महत्व पर्याप्त रूप से कम हो जाता है । मृतक का निकट नातेदार होने से उनके मौखिक साक्ष्य की संवीक्षा सूक्ष्मता से करनी चाहिए ।

20. इस मामले में, जहां तक ट्यूबवैल से शव के टुकड़ों के बरामद होने का संबंध है, कोई भी विवाद नहीं है और अभियुक्त की शनाख्त को लेकर भी अपीलार्थियों द्वारा कोई भी विवाद नहीं किया गया है तथापि, अभियोजन पक्षकथन, हथियारों की बरामदगी, जिनका प्रयोग मृतक के शव को विच्छिन्न करने में किया गया था, और कुल्हाड़ी जिसका प्रयोग हत्या करने में किया गया था और अन्त में राजस्थान राज्य में स्थित ग्राम के एक गड्ढे में से बरामद की गई मोटरसाइकिल, जैसे साक्ष्यों पर आधारित है । शव के टुकड़े करने में प्रयोग किए गए हथियारों की बरामदगी को ध्यान में रखते हुए अन्वेषण अधिकारी मनोहर सिंह ठाकुर (अभि. सा. 16) ने अभियुक्त आमीन के प्रकटीकरण कथन (प्रदर्श पी. 17) के आधार पर अभिग्रहण ज्ञापन तैयार किया । अपने प्रकटीकरण कथन में अभियुक्त ने

यह बताया कि कुल्हाड़ी और अन्य हथियार उसके खेत में खड़ी फसल में पड़े हुए हैं । इस ज्ञापन के आधार पर अभियुक्त आमीन खां के खेत में से एक चाकू (प्रदर्श पी. 20), एक कुल्हाड़ी (प्रदर्श पी. 21), एक बाका (प्रदर्श पी. 25) बरामद किए गए । इसके अतिरिक्त, रानी रूपमती गुम्बद, सारंग पुर के निकट झाड़ियों में से अभियुक्त मिथुन द्वारा दिए गए प्रकटीकरण कथन के आधार पर एक चप्पल बरामद की गई जो अभिकथित रूप से मृतक की बताई गई जिस पर रक्त लगा हुआ था और अभियुक्तों की एक मोटरसाइकिल भी बरामद की गई जिसे मवेशियों के चारे में छिपाया गया था ।

21. ये वस्तुएं तारीख 17 जनवरी, 2013 के पश्चात् बरामद हुई ।

22. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि जब अन्वेषण अधिकारी को अपराध के संबंध में टेलीफोन पर सूचना प्राप्त हुई थी, तब उसे पहले से मालूम था कि यह अपराध वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा कारित किया गया है । इस तथ्य की सूचना स्वीकृत रूप से किसी अजनबी व्यक्ति द्वारा टेलीफोन से इस साक्षी को दी गई थी । अन्वेषण अधिकारी ने सभी अभियुक्तों को तारीख 11 जनवरी, 2013 को उस समय पुनः बुलाया था जब ट्यूबवैल में से खुदाई की जा रही थी । अपीलार्थी पूरे समय अन्वेषण अधिकारी के साथ रहे किन्तु उसने ट्यूबवैल तथा उसके साथ लगे खेत के आस-पास कोई भी तलाशी नहीं ली और केवल तारीख 16 जनवरी, 2013 के बाद कुछ सामान बरामद किया और उस समय वर्तमान अपीलार्थियों को औपचारिक रूप से गिरफ्तार किया गया था । इससे यह उपदर्शित होता है कि अन्वेषण अधिकारी को पहले से यह बात मालूम थी कि ये वस्तुएं ट्यूबवैल के निकट अर्थात् जहां से शव बरामद किया गया था, पड़ी हुई थीं । इस कार्यवाही में ग्राम धनाना से किसी भी व्यक्ति को स्वतंत्र साक्षी के रूप में नहीं बुलाया गया और जब अभिग्रहण ज्ञापन और प्रकटीकरण ज्ञापन तैयार किए गए थे तब मृतक के निकट नातेदारों के हस्ताक्षर उन दस्तावेजों पर लिए गए थे, अतः, ऐसे साक्षियों के कथन संदिग्ध हैं ।

23. अन्वेषण अधिकारी के कथन का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान अपीलार्थी उस समय घटनास्थल पर मौजूद थे जब तारीख 11 जनवरी, 2013 को ट्यूबवैल में से खुदाई की जा रही थी । तारीख 11 जनवरी, 2013 को पूर्वाह्न 6 बजे तक मृतक के शव की शनाख्त की जा चुकी थी । अन्वेषण अधिकारी द्वारा देहाती-मर्ग और देहाती-

नालिश तैयार की गई । अपीलार्थियों के प्रकटीकरण कथन अभिलिखित न किए जाने का कोई कारण नहीं है क्योंकि उनके प्रकटीकरण कथन अभिलिखित करने के लिए उनकी औपचारिक रूप से गिरफ्तारी आवश्यक नहीं थी फिर भी उन्हें औपचारिक रूप से गिरफ्तार किया गया क्योंकि मृतक के शव की शनाख्त हो चुकी थी । इसके बजाय अन्वेषण अधिकारी ने तारीख 16 जनवरी, 2013 तक प्रतीक्षा की और उसके पश्चात् उसने कथन अभिलिखित किए । इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है कि तारीख 11 जनवरी, 2013 से तारीख 16 जनवरी, 2013 के बीच उसे अपराध में प्रयोग की गई इन वस्तुओं की जानकारी थी कि वे खेत में पड़ी हुई हैं और इस बात की भी संभावना है कि ये वस्तुएं अभियुक्तों को अपराध में आलिप्त करने के लिए निकट के खेत में डाली गई थीं । वर्तमान अपीलार्थियों का यह अस्वाभाविक कार्य मालूम देता है कि वे अपराध में प्रयोग किए गए सामान को खेत में फेंक दें जबकि उन्होंने मृतक के वस्त्र और उसके शव के टुकड़े ट्यूबवैल में फेंके थे और इस प्रकार अपीलार्थियों के हथियार भी शव के साथ ट्यूबवैल में फेंके जा सकते थे । अतः, अपीलार्थियों का यह आचरण अस्वाभाविक प्रतीत होता है ।

24. जहां तक मृतक की चप्पल का संबंध है, यह चप्पल तारीख 17 जनवरी, 2013 को मिथुन द्वारा दिए गए प्रकटीकरण के आधार पर बरामद की गई थी । इस चप्पल को सीरम विज्ञानी द्वारा जांच किए जाने के लिए न्यायालयिक प्रयोगशाला भेजा गया था । इसे डी. एन. ए. परीक्षण के लिए नहीं भेजा गया और सीरम विज्ञानी द्वारा किए गए परीक्षण के अनुसार चप्पल पर कोई भी रक्त नहीं पाया गया । मृतक के परिवार के सदस्यों द्वारा मृतक की चप्पल की शनाख्त भी नहीं कराई गई । मृतक के परिवार के सदस्य पूरे समय अन्वेषण के दौरान मौजूद रहे और उन्होंने मृतक द्वारा पहने गए वस्त्रों और अंगूठियों की शनाख्त भी की किन्तु अन्वेषण अधिकारी मृतक के परिवार के सदस्यों से उसकी चप्पल की शनाख्त नहीं करवा सका, इस स्थिति में यह नहीं कहा जा सकता है कि अन्वेषण के दौरान पुलिस द्वारा बरामद की गई चप्पल मृतक की थी । न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट के अनुसार ट्यूबवैल के साथ लगे खेत में से बरामद किए गए आयुधों पर मानव-रक्त लगा पाया गया । तथापि, उस रक्त के ग्रुप का पता नहीं चल सका और रिपोर्ट से कोई निष्कर्ष नहीं निकल सका, अतः, यह साबित नहीं किया गया है कि ये वही हथियार हैं जिनका प्रयोग मृतक के शव के टुकड़े करने में किया गया था ।

25. अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए एक अन्य महत्वपूर्ण साक्ष्य की ओर हमारा ध्यान जाता है जो कि मृतक की मोटरसाइकिल की बरामदगी से संबंधित है । मोटरसाइकिल ग्राम बगदल, राजस्थान के किसी छोटे से तालाब से बरामद हुई है जो नीले मंदिर के निकट स्थित है और झालरा पाटन से धर रोड पर 7 किलोमीटर पूर्व है । अन्वेषण अधिकारी मनोहर सिंह (अभि. सा. 16) के अनुसार तारीख 18 जनवरी, 2013 को अनुप्रमाणन साक्षी गुल अकबर (अभि. सा. 5) और अकबर (अभि. सा. 14) के साथ ग्राम बगदल गया था और उन्होंने हीरो होंडा मोटरसाइकिल (नं. एम पी 04 एन ए 7558) बरामद की जो मृतक की थी और जिससे मृतक ग्राम धनाना गया था । यह दर्शित करने के लिए कि अपीलार्थी आमीन और मिथुन इस मोटरसाइकिल से ग्राम बगदल गए थे, अभियोजन पक्ष ने पीरू लाल सोनी (अभि. सा. 1) अर्थात् हिमालया लाज, आगार मलवा के स्वामी की परीक्षा कराई है । तथापि, यह साक्षी अपनी मुख्य परीक्षा में पक्षद्रोही हो गया और यह कथन किया कि अब से लगभग 6-8 माह पूर्व शेख दाउद और शेख अमजद उसकी लाज में आए थे और वे रात्रि में उसकी लाज में ठहरे थे । तत्पश्चात् पुलिस उसकी लाज पर गई । उन्होंने अपीलार्थियों के बारे में पूछताछ की, और इसके पश्चात् उन्होंने एक रजिस्टर अभिगृहीत किया जिसके संबंध में अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श पी. 1 तैयार किया । अभि. सा. 1 ने उस ज्ञापन पर अपने हस्ताक्षर किए ।

26. यद्यपि इस साक्षी को पक्षद्रोही घोषित किया गया फिर भी इस साक्षी ने यह स्वीकार किया है कि उसने पुलिस को अपना कथन दिया था जो प्रदर्श पी. 2 है । उसने अपने कथन में, जिसे प्रदर्श पी. 2 के रूप में चिह्नांकित किया गया है, यह उल्लेख किया है कि तारीख 19 दिसंबर, 2012 को लगभग 9.30 बजे दो लड़के उसकी लाज में आए और जब उसने उनसे उनके नाम मालूम किए तब उन्होंने अपना नाम मिथुन पुत्र बाबूलाल और आमीन खां. पुत्र कादिर खां बताया । उन्होंने अभि. सा. 1 को यह भी बताया कि वे रामगंज मंडी, राजस्थान से आ रहे हैं और वे बैय्यर नगर जाएंगे । अगले दिन प्रातःकाल वे लाज से चले गए । रजिस्टर की गहराई से जांच करने पर, जिसे तात्विक वस्तु ए-11 के रूप में चिह्नांकित किया गया है और पीरू लाल (अभि. सा.1) के कथन (प्रदर्श पी. 2) को लेकर रजिस्टर में विरोधाभास दिखाई देता है । जिस कमरे में अपीलार्थी सोए थे उसे कमरा नं. 12 दर्शाया गया है और आगमन की तारीख 21 नवंबर, 2012 लिखी गई है । रजिस्टर में उल्लिखित तारीख के

संबंध में अभियोजन पक्ष द्वारा कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । तथापि, पूर्व में की गई प्रविष्टियों को दृष्टिगत करते हुए, यदि यह मान लिया जाए कि तारीख 21 दिसंबर, 2012 सही है, तब यह तारीख उस कथन से मेल नहीं खाती है जो उसने तारीख 18 जनवरी, 2013 को उस समय दिया था जब रजिस्टर उसके साथ था और उसने यह कहा था कि अपीलार्थी तारीख 19 दिसंबर, 2012 को ठहरने के लिए आए थे । इसके अतिरिक्त, लाज से रवाना होने का समय भी रजिस्टर में उनके नाम के आगे नहीं लिखा गया है और रजिस्टर में उसी कमरे में एक अन्य व्यक्ति के ठहरने को दर्शाया गया है । अभियोजन पक्ष द्वारा यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि अपीलार्थी अभिकथित रूप से जिस कमरे में ठहरे थे उसमें तीन बिस्तर लगे हुए थे या दो थे या अनेक बिस्तरों वाला वह एक बड़ा हाल था । इसके अतिरिक्त, अन्वेषण अधिकारी द्वारा इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि उसे यह कैसे पता चला कि ये दोनों अपीलार्थी हिमालय लाज में ठहरे थे और वे ग्राम बगदल से वापस आ रहे थे । साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन दिए गए प्रकटीकरण कथन में, जिन्हें प्रदर्श पी. 16 और प्रदर्श पी. 17 के रूप में चिह्नांकित किया गया है, दोनों अपीलार्थियों अर्थात् मिथुन मालवीय और आमीन खां ने हिमालय लाज में ठहरने की बात किसी को नहीं बताई थी और इससे रजिस्टर में की गई प्रविष्टियां अत्यंत संदिग्ध हो जाती हैं । इसके अतिरिक्त, जैसा कि ऊपर कथन किया गया है अनुप्रमाणन साक्षी मृतक के निकट नातेदार हैं और उनके कथनों का अवलंब आसानी से नहीं लिया जा सकता । यह भी बड़े आश्चर्य की बात है कि ग्राम बगदल के रहने वाले किसी भी व्यक्ति की परीक्षा अभियोजन पक्ष द्वारा यह दर्शित करने के लिए नहीं कराई गई है कि पुलिस ग्राम बगदल गई थी । उन्होंने रस्सी की सहायता से तालाब से मोटरसाइकिल निकाली थी । रस्सी लेकर कौन आया था, तालाब में कौन उतरा था, मोटरसाइकिल में रस्सी किसने बांधी थी जैसी सभी बातें अभियोजन पक्ष द्वारा साबित नहीं की गई हैं । एक भिन्न राज्य में अन्वेषण करने के लिए स्थानीय पुलिस थाने में कोई भी संसूचना नहीं दी गई थी जहां पर भिन्न पुलिस थाना होने के कारण अन्वेषण अधिकारी को अन्वेषण करने का कोई प्राधिकार नहीं था । अन्वेषण अधिकारी द्वारा इन पहलुओं को स्पष्ट नहीं किया गया है और इससे यह संदेह होता है कि वास्तव में पुलिस मोटरसाइकिल बरामद करने के लिए ग्राम बगदल गई थी या नहीं या वर्तमान अपीलार्थियों को मात्र मिथ्या फंसाने के लिए साक्ष्य गढ़ा गया

है, अतः ग्राम बगदल के छोटे से तालाब से मोटरसाइकिल की बरामदगी विश्वसनीय नहीं है ।

27. इसके अतिरिक्त, स्पष्ट विधि यह है कि बरामदगी ऐसे स्थान से की जानी चाहिए जिसका ज्ञान केवल अपीलार्थी को हो । जब यह संभावना हो कि अन्य व्यक्तियों को भी बरामद की जाने वाली वस्तुओं की जानकारी है तब ऐसी बरामदगी से कोई लाभ नहीं । इस संबंध में अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने **भोकलो** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है जिसमें उच्च न्यायालय ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अनेक मामलों में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए यह मत व्यक्त किया है कि जब हमलावर अभियुक्त के सिवाय किसी तीसरे व्यक्ति को छिपे हुए सामान की जानकारी होने की संभावना होती है तब ऐसे साक्ष्य के आधार पर वर्तमान मामले में दोषसिद्धि नहीं की जा सकती । यह स्वीकार्य है कि किसी अज्ञात व्यक्ति ने ट्यूबवैल में शव पड़े होने की जानकारी पुलिस को दी थी । अन्वेषण अधिकारी मनोहर सिंह ठाकुर (अभि. सा. 16) ने अपने कथन के पैरा 43 में यह उल्लेख किया है कि जिस व्यक्ति ने उसे अपराध की सूचना दी थी उसी व्यक्ति ने सभी अभियुक्तों के नाम भी बताए थे और यह भी बताया था कि अपराध किस प्रकार कारित किया गया है । यह संभावना है कि अन्वेषण अधिकारी को मृतक की मोटरसाइकिल के बारे में सूचना दी गई हो, अतः साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन तैयार किए गए प्रकटीकरण ज्ञापन के आधार पर बरामद की गई अपराध से संबंधित वस्तुएं पहले से ही अपीलार्थियों के अलावा अन्य व्यक्तियों की जानकारी में थीं, तब ऐसे साक्ष्य के आधार पर अवलंब नहीं लिया जा सकता ।

28. अभियोजन पक्षकथन का अन्तिम पहलू अपराध का हेतु है । इस मामले में हेतु 17,000/- रुपए की रकम को दर्शाया गया है जो मृतक ने अभियुक्त आमीन खां को उधार दी थी और अभियोजन पक्षकथन के अनुसार मृतक आमीन खां से वह रकम वसूल करने के लिए गया था । तथापि, 17,000/- रुपए की यह रकम किसी व्यक्ति की हत्या करने के लिए बहुत कम मालूम होती है । अपीलार्थियों और मृतक के बीच कोई भी शत्रुता नहीं थी । अभियोजन पक्ष न्यायालय के मन में यह विश्वास नहीं जगा

---

[1] (2013) क्रिमिनल ला जर्नल 2858.

सका है कि कोई व्यक्ति 17,000/- रुपए के ऋण से बचने के लिए किसी व्यक्ति की हत्या कर देगा । यह कथन किया गया है कि अपीलार्थी आमीन खां के पास कृषि भूमि है, संभव है कि किसी समय उसे धन की आवश्यकता रही हो, इसलिए, उसने मृतक से ऋण लिया था । किन्तु यह बात समझ से बाहर है कि वह इतनी छोटी रकम के लिए मृतक की हत्या करेगा ।

29. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने **शरद बिरधीचंद सारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया है जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने उस अपेक्षाओं को अधिकथित किया है जब मामला पूर्णतया पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित होता है । ऐसे ही पहलू पर विद्वान् काउंसेल ने **अगनू** बनाम **बिहार राज्य**[2], **कांसा बेहेरा** बनाम **उड़ीसा राज्य**[3] और **संगिली** उर्फ **संगनाथम** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[4] वाले मामलों को उद्धृत किया है ।

30. जैसा कि पहले ही बताया गया है, इस मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है । इस मामले की परिस्थितियां पूर्णतया सिद्ध नहीं की गई हैं जिनसे अपीलार्थियों के दोषी होने का पता निश्चायक रूप से चलता हो और ये परिस्थितियां अपीलार्थियों के दोषी होने की परिकल्पना के साथ संगत भी नहीं हैं । यह संभावना है कि जिस अन्य व्यक्ति ने अपराध कारित किए जाने के संबंध में पुलिस को सूचित किया था, वही वास्तविक अपराधी हो । अन्वेषण अधिकारी मनोहर सिंह ठाकुर उस व्यक्ति का पता लगाने और यह सुनिश्चित करने में असफल रहा है कि उसे घटना की जानकारी कैसे मिली ।

31. ऐसी परिस्थिति में हमारी यह राय है कि अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर की जानी चाहिए और तद्नुसार, यह मंजूर की जाती है । अपीलार्थियों को दंड संहिता की धारा 302/34 और 201 के अधीन आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है ।

यदि अपीलार्थियों द्वारा जुर्माने की रकम का संदाय किया गया है तब उन्हें उस रकम का प्रतिदाय कर दिया जाए ।

अपीलार्थी अमजद खां से बरामद किया गया मोबाइल उसे वापस

---

[1] (1984) 4 एस. सी. सी. 116 = ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1622.

[2] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 119.

[3] (1987) 3 एस. सी. सी. 480 = ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 1560.

[4] ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 3756.

किया जाए और विचारण न्यायालय के निर्णय के पैरा 78 में उल्लिखित अन्य संपत्ति नष्ट कर दी जाए ।

मोटरसाइकिलें पहले से शेख दाउद और हाजी खां को सुपुर्दारी पर दी गई हैं । उनके सुपुर्दगीनामे एतद्द्वारा उन्मोचित किए जाते हैं ।

अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई अपील सं. 823/2016 को मंजूर करने के परिणामस्वरूप दांडिक निर्देश सं. 03/2016 असफल होती है और तद्नुसार उसका निपटारा किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

अस.

(2018) 2 दा. नि. प. 135 **हिमाचल प्रदेश**

इशान अख्तर

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य

तारीख 9 अगस्त, 2017

न्यायमूर्ति चंद्र भूषण बारोवालिया

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 438 – गिरफ्तारी की आशंका करने वाले व्यक्ति की जमानत मंजूर करने के लिए निदेश – अग्रिम जमानत – आवेदक अभियोजन साक्ष्य में हेरफेर करने और न न्याय से भागने की स्थिति में नहीं है अतः उसकी अग्रिम जमानत मंजूर की जा सकती है ।

अभियोजन पक्षकथन के अनुसार तारीख 16 मई, 2017 को अभियोक्त्री ने यह अभिकथन करते हुए आवेदक के विरुद्ध शिकायत दर्ज की कि वह स्टाफ नर्स के पद पर कार्य कर रही है और आवेदक अध्यापक के पद पर कार्य कर रहा है । अभियोक्त्री ने यह भी अभिकथन किया है कि वह जून, 2016 में आवेदक से मिली और वे दोनों अच्छे मित्र हो गए । उन दोनों ने एक साथ फोटो खिंचवाई और याची अभियोक्त्री को मजबूरन अतिथिगृह ले जाया करता और वह उसे नग्न करके उसके चित्र खीचा करता था । आवेदक अभियोक्त्री को धमकाया करता, जब कभी वह उसे रोकने का

व्यवहार करती । आवेदक हमेशा यह कहा करता कि वह आत्महत्या कर लेगा और वह अभियोक्त्री के समक्ष रोया करता, इस प्रकार अभियोक्त्री आवेदक की मांगों पर सहमत हो जाती । अभियोजन के अनुसार, आवेदक ने अभियोक्त्री के साथ अपने संबंध बनाए रखे । अभियोक्त्री ने अपनी शिकायत में यह भी अभिकथन किया है कि इसके पश्चात्, आवेदक ने उस पर विश्वास किया कि वह गलत करती तो एक दिन उसने उसे आठ बार थप्पड़ मारे । पुलिस ने आवेदक के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 354क, 354ख, 354ग और 376 के अधीन मामला रजिस्ट्रीकृत किया और मामले में अन्वेषण किया । आवेदक द्वारा उच्च न्यायालय में धारा 438 के अधीन जमानत आवेदन प्रस्तुत किया गया । अग्रिम जमानत आवेदन का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर पूरी तरह से प्रयोज्य है क्योंकि याची न तो अभियोजन साक्ष्य में हेरफेर करने की स्थिति है और न वह न्याय से भागने की स्थिति में है, क्योंकि वह अध्यापक के पद पर कार्य कर रहा है, उसके पास हिमाचल प्रदेश में स्थायी संपत्ति है । इस प्रकार, पक्षकारों की स्थिति को विचार में लेते हुए, इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वर्तमान मामला उपयुक्त मामला है जहां आवेदक मामले के अन्वेषण में सम्मिलित होगा जब कभी अन्वेषक अधिकारी द्वारा विधि के अनुसरण में उसे बुलाया जाएगा । आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा बिना भारत नहीं छोड़ेगा । कि आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी ऐसे व्यक्ति जो मामले के तथ्यों से परिचित हों, कोई प्रलोभन, धमकी या वचन नहीं देगा जिससे कि उसे अन्वेषक अधिकारी या न्यायालय के समक्ष ऐसे तथ्य प्रकट करने से रोका जाए । वहां पर आवेदक की गिरफ्तारी की दशा में न्यायिक विवेक का प्रयोग करके उसकी जमानत स्वीकार किया जाना उचित है । (पैरा 6)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	क्रि. एम. पी. (एम.) सं. 815/2014 : **जौली बंसल** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** ;	5
[2011]	ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 312 : **सिद्धराम सतलिंगप्पा महेत्रे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** ;	6

[2001] (2001) 4 एस. सी. सी. 638 :
मुरलीधरन बनाम केरल राज्य ; 6

[1998] (1998) 4 एस. सी. सी. 80 :
के. के. जेरथ बनाम संघीय राज्य क्षेत्र, चंडीगढ़
और अन्य । 6

प्रकीर्ण (दांडिक) अधिकारिता : **2017 का दांडिक प्रकीर्ण आवेदन (एम.) सं. 669.**

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438 के अधीन जमानत आवेदन ।

आवेदक की ओर से	श्री इमरान खान, अधिवक्ता ।
प्रत्यर्थी/राज्य की ओर से	सर्वश्री वीरेन्द्र के. वर्मा, अपर महाधिवक्ता साथ में श्री पुष्पेंद जायसवाल, उप महाधिवक्ता।
परिवादी की ओर से	श्री राजीव राय, अधिवक्ता ।

न्यायमूर्ति चंद्र भूषण बारोवालिया – वर्तमान जमानत आवेदन आवेदक द्वारा तारीख 16 मई, 2017 को महिला पुलिस थाना, धर्मशाला, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश पर भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 354क, 354ख, 354ग और 376 के अधीन रजिस्ट्रीकृत 2017 का मामला प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 7 में जमानत पर अपनी निर्मुक्ति चाहने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन फाइल किया गया है ।

2. आवेदक के विद्वान् काउंसेल के अनुसार आवेदक निर्दोष है और वर्तमान मामले में उसे मिथ्या रूप से फंसाया गया है । वह जिला बिलासपुर का स्थायी निवासी है और न तो वह अभियोजन साक्ष्य में हेरफेर करने की स्थिति में है और न न्याय से भागने की स्थिति में है, इस प्रकार, वह जमानत पर निर्मुक्त हो सकता है ।

3. पुलिस रिपोर्ट फाइल की गई । अभियोजन पक्षकथन के अनुसार तारीख 16 मई, 2017 को अभियोक्त्री ने यह अभिकथन करते हुए आवेदक के विरुद्ध शिकायत दर्ज की कि वह स्टाफ नर्स के पद पर कार्य कर रही है और आवेदक अध्यापक के पद पर कार्य कर रहा है । अभियोक्त्री ने यह भी अभिकथन किया है कि वह जून, 2016 में आवेदक से मिली और वे दोनों अच्छे मित्र हो गए । उन दोनों ने एक साथ फोटो खिंचवाई और याची

अभियोक्त्री को मजबूरन अतिथिगृह ले जाया करता और वह उसे नग्न करके उसके चित्र खीचा करता था । आवेदक अभियोक्त्री को धमकाया करता, जब कभी वह उसे रोकने का व्यवहार करती । आवेदक हमेशा यह कहा करता कि वह आत्महत्या कर लेगा और वह अभियोक्त्री के समक्ष रोया करता, इस प्रकार अभियोक्त्री आवेदक की मांगों पर सहमत हो जाती । अभियोजन के अनुसार, आवेदक ने अभियोक्त्री के साथ अपने संबंध बनाए रखे । अभियोक्त्री ने अपनी शिकायत में यह भी अभिकथन किया है कि इसके पश्चात्, आवेदक ने उस पर विश्वास किया कि वह गलत करती तो एक दिन उसने उसे आठ बार थप्पड़ मारे । पुलिस ने आवेदक के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 354क, 354ख, 354ग और 376 के अधीन मामला रजिस्ट्रीकृत किया और मामले में अन्वेषण किया । पुलिस रिपोर्ट के अनुसार, बरामदगियां पहले ही की गई थीं और अभियुक्त की आवाज का नमूना लिया जाना है ।

4. मैंने आवेदक के विरुद्ध काउंसेल, राज्य के अपर महाधिवक्ता तथा अभियोक्त्री (शिकायतकर्ता) के विद्वान् काउंसेल को सुना और स्पष्टतापूर्वक पुलिस रिपोर्ट सहित अभिलेख का परिशीलन किया ।

5. प्रत्यर्थी सं. 2 (अभियोक्त्री) के विद्वान् काउंसेल ने **जौली बंसल** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस उच्च न्यायालय के समन्वय न्यायपीठ तारीख 14 अगस्त, 2014 द्वारा दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया जिसमें सुसंगत भाग के पैरा 6 (जिसके निर्देश का सार प्रकट है) में यह अभिनिर्धारित किया गया जो इस प्रकार है :–

> "6. .....
> न्यायालय की यह राय है कि आवेदक अपने स्वयं के कार्य और आचरण के कारण तथा इस तथ्य के कारण अग्रिम जमानत का अनुतोष पाने का हकदार नहीं है कि विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा आवेदक को उद्घोषित अपराधी घोषित करने के लिए उसके विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के अधीन कार्यवाहियां प्रारंभ की गईं । यह अभिनिर्धारित किया गया है कि आवेदक से अभिरक्षा में कम्प्यूटर और लैपटाप की हार्ड आरिजनल डिक्स की बरामदगी करने के लिए पूछताछ वर्तमान मामले में भी आवश्यक है जिसके माध्यम से अश्लील बातें अभिलिखित की गई थी और उन्हें प्रतिप्रेषित किया गया

[1] क्रि. एम. पी. (एम.) सं. 815/2014.

था । वर्तमान मामले में मोबाइल फोन की बरामदगी करने के लिए अभिरक्षा में पूछताछ आवश्यक थी जिसके माध्यम से एस. एम. एस. सह-अभियुक्त लवन ठाकुर को भेजे गए थे । वर्तमान मामले में आवेदक से अभिरक्षा में पूछताछ यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि क्या अश्लील विडियो/सी. डी. आवेदक के समक्ष तैयार की गई थी या नहीं ।"

तथापि, वर्तमान मामले में बरामदगियां पहले ही की गई हैं और आवेदक के कहने पर वह भी बरामदगी किया जाना शेष नहीं रहा । इसलिए, वर्तमान मामले के तथ्यों पर निर्णय (उपरोक्त) लागू नहीं होता है, इस प्रकार, उसका अवलंब नहीं लिया जा सकता है ।

6. इसी तरह, अभियोक्त्री के विद्वान् काउंसेल ने **के. के. जेरथ** बनाम **संघीय राज्य क्षेत्र, चंडीगढ़ और अन्य**[1] तथा **मुरलीधरन** बनाम **केरल राज्य**[2] वाले मामलों का अवलंब लिया है परंतु वर्तमान मामले में आवेदक न तो अभियोजन साक्ष्य में हेरफेर करने की स्थिति में है और न उसकी अभिरक्षा में पूछताछ आवश्यक है, इसलिए, निर्णय जिनका इसमें ऊपर उल्लेख किया गया है, वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है क्योंकि आवेदक अन्वेषण में पूरी तरह से सहयोग कर रहा है और बरामदगियां पहले ही की जा चुकी हैं, इस प्रकार, याची से अभिरक्षा में पूछताछ तनिक भी अपेक्षित नहीं है । आवेदक जैसाकि ऊपर अभिनिर्धारित किया गया है, ऐसी स्थिति में नहीं था कि अभियोजन साक्ष्य में हेरफेर करे, क्योंकि पुलिस अभिलेख से यह सुस्पष्ट है और **सिद्धराम सतलिंगप्पा महेत्रे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[3] वाले मामले के पैरा 122 में इस समय यह अभिनिर्धारित किया गया है :–

"122. अग्रिम जमानत पर विचार करते समय निम्नलिखित कारकों और बिंदुपरिमाणों पर विचार किया जा सकता है –

(i) अभियोग की प्रकृति और गुरुता और अभियुक्त की वास्तविक भूमिका को अभियुक्त को गिरफ्तार किए जाने से पूर्व उचित रूप से समझाया जाना चाहिए ;

(ii) आवेदक का पूर्ववृत्त जिसमें यह तथ्य सम्मिलित है कि

---

[1] (1998) 4 एस. सी. सी. 80.

[2] (2001) 4 एस. सी. सी. 638.

[3] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 312.

क्या किसी न्यायालय द्वारा किसी संज्ञेय अपराध में अभियुक्त की दोषसिद्धि की जिस पर उसके द्वारा पूर्व में कारावास भोगा था ;

(iii) आवेदक की ओर से न्याय से भागने की संभावना है;

(iv) अभियुक्त के बारे में यह संभावना प्रकट हो उसके द्वारा उसी तरह का अपराध या दूसरे प्रकार के अपराध के संबंध में पुनरावृत्ति करने की संभावना हो ;

(v) जहां केवल क्षति के उद्देश्य से दोषारोपण किया गया हो या आवेदक या आवेदिका को गिरफ्तार करके अवमानित किया गया हो ;

(vi) अग्रिम जमानत की मंजूरी का प्रभाव विशिष्ट रूप से अत्यधिक महत्व के मामलों में जहां अधिकांश लोग प्रभावित होते हैं ;

(vii) न्यायालयों को अति सावधानीपूर्वक अभियुक्त के विरुद्ध संपूर्ण उपलब्ध सामग्री का मूल्यांकन करना चाहिए । न्यायालय को मामले में अभियुक्त की वास्तविक भूमिका को भी स्पष्ट रूप से समझना चाहिए । ऐसे मामलों में जिनमें अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 34 और 149 की सहायता से फंसाया गया, न्यायालय को अत्यधिक सावधानी के साथ विचार करना चाहिए क्योंकि मामलों में अत्यधिक उलझाव सामान्य जानकारी का मामला है ।

(viii) अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए प्रार्थना पर विचार करते हुए, दो कारकों के बीच संतुलन बनाए रखा जाना चाहिए अर्थात् स्वतंत्रता, ऋजुता और पूर्ण अन्वेषण पर कोई प्रतिकूलता नहीं होनी चाहिए । अभियुक्त को परेशान और अवमानित करने पर रोक लगनी चाहिए और अन्यायपूर्ण निरोध पर भी रोक लगनी चाहिए ;

(ix) न्यायालय को साक्षी से सांठ-गांठ की युक्तियुक्त आशंका या शिकायतकर्ता को धमकी देने की आशंका पर विचार करना चाहिए ।

(x) अभियोजन की असारता पर हमेशा विचार किया जाना

चाहिए और यह केवल वास्तविकता का तत्व है जिसका जमानत की मंजूरी के मामले में विचार किया जाएगा और अभियोजन पक्ष की प्रामाणिकता के बारे में दशाओं के सामान्य अनुक्रम में कुछ संदेह होने की दशा में, अभियुक्त जमानत के आदेश को प्राप्त करने का हकदार है ।"

निर्णय (उपरोक्त) वर्तमान मामले के तथ्यों पर पूरी तरह से प्रयोज्य है क्योंकि याची न तो अभियोजन साक्ष्य में हेरफेर करने की स्थिति है और न वह न्याय से भागने की स्थिति में है, क्योंकि वह अध्यापक के पद पर कार्य कर रहा है, उसके पास हिमाचल प्रदेश में स्थायी संपत्ति है । इस प्रकार, पक्षकारों की स्थिति को विचार में लेते हुए, इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वर्तमान मामला उपयुक्त मामला है जहां आवेदक की गिरफ्तारी की दशा में न्यायिक विवेक का प्रयोग करके उसकी जमानत स्वीकार की जाए जिसे उसके पक्ष में प्रयोग किया जाना अपेक्षित है । इन परिस्थितियों के अधीन यह आदेश किया गया है कि आवेदक को तारीख 16 मई, 2017 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 7/2017 वाले मामले में उसकी गिरफ्तारी की दशा में जमानत पर निर्मुक्त किया जाता है जिस मामले को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को दंड संहिता की धारा 354क, 354ख, 354ग और 376 के अधीन रजिस्ट्रीकृत किया गया, अन्वेषक अधिकारी के समाधान के लिए 10,000/- रुपए (केवल दस हजार रुपए) की राशि का वैयक्तिक बंधपत्र तथा उसी राशि का एक प्रतिभूत देने पर, निम्नलिखित शर्तों के अध्यधीन जमानत मंजूर की जाती है –

(i) आवेदक मामले के अन्वेषण में सम्मिलित होगा जब कभी अन्वेषक अधिकारी द्वारा विधि के अनुसरण में उसे बुलाया जाएगा ।

(ii) आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा बिना भारत नहीं छोड़ेगा ।

(iii) कि आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी ऐसे व्यक्ति जो मामले के तथ्यों से परिचित हों, कोई प्रलोभन, धमकी या वचन नहीं देगा जिससे कि उसे अन्वेषक अधिकारी या न्यायालय के समक्ष ऐसे तथ्य प्रकट करने से रोका जाए ।

7. उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए आवेदन का निपटारा किया जाता है ।

आवेदन का निपटारा किया गया ।

आर्य.

(2018) 2 दा. नि. प. 142 हिमाचल प्रदेश

हिमाचल प्रदेश राज्य

बनाम

सूर्य प्रकाश

तारीख 31 अक्तूबर, 2017

न्यायमूर्ति संदीप शर्मा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 489ग [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 378] – कूटरचित या कूटकृत करेंसी नोटों या बैंक नोटों को कब्जे में रखना – विधि की प्रतिपादना से पूर्णतया यह प्रकट है कि कूटरचित, कूटकृत करेंसी नोटों को असली रूप में इस्तेमाल में लेकर बेचने, खरीदने या किसी व्यक्ति से प्राप्त करने या अन्यथा अवैध व्यापार करने जिसमें आपराधिक मनःस्थिति नहीं रही है और यदि अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त के पास अध्यपेक्षित आपराधिक मनःस्थिति थी तब धारा 489ग के अधीन प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विरुद्ध कोई दोषसिद्धि अभिलिखित नहीं की जा सकती है ।

संक्षेप में तथ्य जिनका विस्तृत रूप से विवरण देना अनावश्यक है जो अभिलेख से प्रकट है, इस प्रकार है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रदर्श पी. डब्ल्यू-6/ए, तारीख 23 अक्टूबर, 2009 को दंड संहिता की धारा 489ग के अधीन दंडनीय अपराध अभिकथित रूप से कारित किए जाने के लिए प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विरुद्ध पुलिस थाना, सदर जिला ऊना, हि. प्र. में दर्ज की गई । अभियोजन पक्षकथन के अनुसार तारीख 23 अक्टूबर, 2009 को उप-निरीक्षक राजिन्द्र शर्मा (अभि. सा. 6) जिला ऊना में तथाकथित स्थान पीरनिगाह पर गश्त ड्यूटी पर था जहां उसने प्रत्यर्थी-अभियुक्त सहित तीन

व्यक्तियों को संदेहास्पद स्थिति में घूमते हुए देखा । चूंकि पूर्वोक्त व्यक्ति ऊपर नामित उप-निरीक्षक की पूछताछ का उत्तर देने में असमर्थ रहे थे उनकी पुलिस द्वारा तलाशी ली गई थी । प्रत्यर्थी-अभियुक्त की तलाशी के दौरान 100/- रुपए मूल्यवर्ग के तीन करेंसी नोट जिनकी संख्या 4 ए. जी. 661121, 4 ए. जी. 661122 और 4 ए. जी. 661122, 50/-रुपए मूल्यवर्ग के छह करेंसी नोट जिनकी सं. जे. ई. ए. 124901, जे. ई. ए. 124901, 9 ए. एस. 700129, 9 ए. एस. 7001295 एम. एम. 740663, 5 एम. एम. 740663 थी और 10 रुपए मूल्यवर्ग के तीन करेंसी नोट जिनकी सं. 33 वीं. 404394, 93 ए 224081, 86 डी.722367 है, उसके पेंट के जेब से बरामद किए गए थे । अभियोजन पक्षकथन के अनुसार पुलिस पूर्वोक्त करेंसी नोट बरामद करने के पश्चात् उप प्रबंधक, स्टेट बैंक आफ पटियाला, ऊना को करेंसी नोटों का सत्यापन किए जाने के अनुरोध के साथ संसूचित करते हुए तत्काल भेजे गए जैसा कि इसमें ऊपर उल्लिखित है जिन्होंने बदले में यह सूचना दी 100/- और 50/- रुपए के करेंसी नोट जैसाकि इसमें ऊपर उल्लिखित हैं, जाली हैं जबकि 10/- रुपए मूल्यवर्ग के वास्तविक है । पूर्वोक्त रिपोर्ट के आधार पर उप-निरीक्षक (अभि. सा. 6) की शिकायत पर पुलिस में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/क दर्ज की जिसने बाद में स्वयं मामले में अन्वेषण किया । बरामदगी के पश्चात् पुलिस ने आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने के पश्चात् करेंसी प्रदर्श पी. एक्स. को न्यायालयिक प्रयोगशाला जुंगा भेज दिया जिन्होंने यह भी रिपोर्ट लगाई कि 100/- और 50/- रुपए मूल्यवर्ग के करेंसी नोट वास्तविक नहीं हैं, जबकि 10/- रुपए मूल्यवर्ग के करेंसी नोट वास्तविक हैं । पुलिस ने अन्वेषण पूरा करने के पश्चात् सक्षम विधि के न्यायालय में अर्थात् विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, न्यायालय सं. 11, ऊना, हि. प्र. में चालान प्रस्तुत गया जिन्होंने मामले में संज्ञान लेने के पश्चात् विचारण के लिए मामले को विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश 11 ऊना, जिला ऊना, हि. प्र. को सुपुर्द कर दिया । विद्वान् अपर सेशन ने अपना समाधान करते हुए कि प्रथमदृष्ट्या मामला प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विरुद्ध बनाता है और दंड संहिता की धारा 489ग के अधीन दंडनीय अपराध किए जाने के लिए उसके विरुद्ध आरोप विरचित किया जिस पर उसने दोषी नहीं होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया । अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को साबित करने के विचार से कुल-मिलाकर छह साक्षियों की परीक्षा कराई जबकि प्रत्यर्थी-अभियुक्त ने दंड

प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभिलिखित अपने कथन में अभियोजन पक्षकथन से इनकार किया और स्वयं निर्दोष होने का दावा किया । तत्पश्चात्, विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने तारीख 26 अगस्त, 2016 के निर्णय पारित करके प्रत्यर्थी-अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 489ग के अधीन उसके विरुद्ध विरचित आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषमुक्ति के पूर्वोक्त निर्णय से व्यथित और असंतुष्ट होकर अपीलार्थी राज्य ने इस न्यायालय में समावेदन किया । वर्तमान कार्यवाहियों के आधार पर निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषमुक्ति के निर्णय को अपास्त करके प्रत्यर्थी अभियुक्त की दोषसिद्धि की ईप्सा की । राज्य द्वारा अभियुक्त के दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील फाइल की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रत्येक बात को छोड़ते हुए, दंड संहिता की धारा 489ग में अंतर्विष्ट उपबंध से यह इंगित होता है कि अभियोजन पक्ष के लिए यह लाजिमी है कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त के आशय को साबित करें कि उसके कब्जे से बरामद की गई अभिकथित जाली करेंसी को इस्तेमाल करने के लिए प्रत्यर्थी-अभियुक्त के आशय को साबित करें । इस बारे में धारा 489ग को इसमें नीचे दिया जा रहा है – 489ग. कूटरचित का कूटकृत करेंसी नोटों का बैंक नोंटों के कब्जे में रखना – जो कोई किसी कूटरचित या कूटकृत करेंसी नोट या बैंक नोट को यह जानते हुए या विश्वास करने का कारण रखते हुए कि वह कूटरचित या कूटकृत है और यह आशय रखते हुए कि उसे असली के रूप उपयोग में लाए या वह असली के रूप में उपयोग में लाई जा सकें, अपने कब्जे में रखेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी सात वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से या दोनों से दण्डित किया जाएगा । वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा यह साबित करने के लिए अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है जिससे प्रत्यर्थी-अभियुक्त का यह आशय हो कि जाली करेंसी बल्कि जो अभियोजन का स्वयं का पक्षकथन है कि संदेह पर प्रत्यर्थी-अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया था और बाद में जब उसकी तलाशी ली गई तो उसकी जेब से जाली करेंसी बरामद की गई थी । जिसमें अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 6) अभियोजन साक्षी भी सम्मिलित है, इस बारे में विनिर्दिष्टतः कुछ भी कथन नहीं किया है कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त की ओर से ऐसी जाली करेंसी का प्रयोग किया गया और इस प्रकार, प्रत्यर्थी-अभियुक्त की ओर से सुश्री रीतिका जस्साल अधिवक्ता की दलील में कोई सारभूत

बल प्रतीत होता है कि दंड संहिता की धारा 489ग के अधीन प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विरुद्ध कोई दोषसिद्धि अभिलिखित नहीं की जा सकती कि उसने जाली करेंसी का इस्तेमाल किया था । (पैरा 17)

उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का अवलंब लिया गया है । पूर्वाक्त निर्णय का सुसंगत पैरा इस प्रकार है – अपीलार्थी के विरुद्ध गंभीर आरोप जो शिकायतकर्ता द्वारा लगाया गया था यह है कि तारीख 25 मई, 1990 को लगभग 10.00 बजे अपराह्न उसने एक किलो ग्राम आम खरीदे थे जिसकी कीमत पांच रुपए थी । उस पर उसने अभि. सा. 4 को 100/- रुपए का जाली करेंसी नोट दिया जिसने उसके असली होने पर संदेह व्यक्त किया था । उसने इसे अभि. सा. 2 और अभि. सा. 7 को दिखाया जिन्होंने यह कहा कि यह जाली करेंसी नोट है उसने उस व्यक्ति को पुलिस को सौंप दिया जिसने उस व्यक्ति से ऐसे 13 जाली करेंसी नोट बरामद किए और इसके अतिरिक्त उस व्यक्ति के मकान से कुछ कागजात, भिन्न-भिन्न रंग की रिफिल तथा कैंचियां भी बरामद की गई थीं । इन तथ्यों पर उसके विरुद्ध दंड संहिता की धारा 489क, 489ख और 489ग के अधीन आरोप विरचित किए गए । अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने धारा 489क के अधीन आरोप से उसे दोषमुक्त कर दिया परंतु उसे 489ख और 489ग के अधीन आरोपों से दोषी पाया था तथा ऊपर उल्लिखित अवधियों के लिए उसे दंडादिष्ट किया । जब उसके द्वारा उच्च न्यायालय में अपील की गई तो उच्च न्यायालय द्वारा उसकी दोषसिद्धि की पुष्टि की गई परंतु उसके दंड को कम किया गया । जैसा कि ऊपर उल्लिखित है । विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी की दोषसिद्धि की दंड संहिता की धारा 489ख और धारा 489ग के अधीन पुष्टि की गई जिसका परिशीलन करने पर इस प्रकार है; 489ख कूटरचित या कूटकृत करेंसी नोटों या बैंक नोटों को असली के रूप में उपयोग में लाना – जो कोई किसी कूटरचित या कूटकृत करेंसी नोट या बैंक नोट को, यह जानते हुए, या विश्वास करने का कारण रखते हुए कि वह कूटरचित या कूटकृत है, किसी अन्य व्यक्ति को बेचेगा या उससे खरीदेगा या प्राप्त करेगा या अन्यथा उसका दुर्व्यापार करेगा या असली के रूप में उसे उपयोग में लाएगा, वह आजीवन कारावास से, या दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा । 489ग कूटरचित या कूटकृत करेंसी नोटों या बैंक नोटों के कब्जे मे रखना – जो कोई

किसी कूटरचित या कूटकृत करेंसी नोट या बैंक नोट को यह जानते हुए या विश्वास करने का कारण रखते हुए कि वह कूटरचित या कूटकृत है और यह आशय रखते हुए कि उसे असली के रूप उपयोग में लाए या वह असली के रूप में लाई जा सके, अपने कब्जे में रखेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा । धारा 489क से 489ड़ करेंसी नोटों या बैंक नोटों का कूटरचित या कूटकरण के बारे में विभिन्न आपराधिक अपराधों पर विचार किया गया । विधान मंडल का यह उद्देश्य था कि इन उपबंधों को अधिनियमित किया जाए जिससे कि देश की अर्थव्यवस्था को न केवल संरक्षण मिले बल्कि करेंसी नोटों और बैंक नोटों को पर्याप्त संरक्षण भी दिया जाए । करेंसी नोट ऐसे हैं इनके बजाय क्रैडिट कार्ड सिस्टम को बढ़ावा दिया जाए फिर भी हमारे देश में बहुसंख्यकों द्वारा वाणिज्यिक संविवाद की रीढ़ को भी बनाए रखना है । परंतु इन उपबंधों का अर्थ यह नहीं है कि असावधान स्वामियों या उपभोक्ताओं को दंडित करें । इन उपबंधों का परिशीलन करने से जिनका निचोड़ ऊपर दिया गया है, उनसे यह दर्शित होता है कि धारा 489ख और 489ग के अधीन अपराधों की आपराधिक मनःस्थिति है, "करेंसी नोटों या बैंक नोटों पर विश्वास करने का कारण जानता हूं कि वे कूटरचित या कूटकृत हैं" ऊपर उल्लिखित आपराधिक मनःस्थिति के बिना असली रूप में कूटरचित या कूटकृत करेंसी या बैंक नोटों को असली रूप में प्रयोग करके बेचने, खरीदने या किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त करने या अन्यथा अवैध व्यापार से दंड संहिता की धारा 489ख के अधीन अपराध को गठित करना पर्याप्त नहीं है । किसी कूटरचित या कूटकृत करेंसी को कब्जे में रखना या सआशय उनका प्रयोग करने से आपराधिक मनःस्थिति के अभाव में धारा 489ग के अधीन मामला प्रकट होना पर्याप्त नहीं है, जैसा कि ऊपर टिप्पण किया गया है । अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं लाई गई है जिससे कि यह दर्शित होता हो कि अपीलार्थी के पास आपराधिक मनःस्थिति की अध्यपेक्षा थी तथापि, उच्च न्यायालय ने इस पहलू को पूरी तरह से गायब कर दिया । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने अभि. सा. 2, अभि. सा. 4 और अभि. सा. 7 के आधार पर कि वे यह प्रकट करने में समर्थ थे कि अभिकथित करेंसी नोट जो अभि. सा. 4 को दिया गया था जाली था जिसमें आपराधिक मनःस्थिति की उपधारणा की गई । घटना की तारीख को छात्र के बारे में 18 वर्ष का होना कहा गया है । इस मामले के तथ्य

पर विचारण न्यायालय द्वारा जो उपधारणा की गई थी, साक्ष्य अधिनियम की धारा 4 के अधीन अपेक्षित नहीं है । इसके अतिरिक्त यह भी दर्शित नहीं है कि इस बारे में कोई विनिर्दिष्ट प्रश्न कि करेंसी नोट कूटकृत होने पर जाली है जिसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपीलार्थी की परीक्षा करने पर उसके समक्ष रखा गया था । इन तथ्यों पर हमारे पास यह अभिनिर्धारित करने के अलावा कोई तथ्य नहीं है कि 489ख और 489ग के अधीन विरचित आरोप साबित नहीं हुए हैं । अतः हम 489ख और 489ग के अधीन अपीलार्थी के लिए पारित दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त करते हैं और उसे उक्त आरोपों से दोषमुक्त करते हैं" विधि की पूर्वोक्त प्रतिपादना से पूर्णतया यह प्रकट हुआ है कि कूटचित कूटकृत करेंसी नोटों को असली रूप में इस्तेमाल में लेकर बेचने खरीदने या किसी व्यक्ति से प्राप्त करने या अन्यथा अवैध व्यापार करने जिसमें आपराधिक मनःस्थिति नहीं रही है, उससे दंड संहिता की धारा 489ग के अधीन अपराध गठित नहीं होता है इसी तरह किसी कूटरचित या कूटकृत करेंसी नोटों या बैंक नोटों को कब्जे में रखना और सआशय उनका प्रयोग करने से आपराधिक मनःस्थिति के अभाव में धारा 489ग के अधीन मामला बनना पर्याप्त नहीं है । वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है कि प्रत्यर्थी अभियुक्त के पास अध्यपेक्षित आपराधिक मनःस्थिति थी और इस प्रकार धारा 489ग के अधीन प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विरुद्ध कोई दोषसिद्धि अभिलिखित नहीं की जा सकती है । (पैरा 18)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	(2010) 5 एस. सी. सी. 645 :	
	सी. मगेश और अन्य बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	16
[2001]	[2001] 3 सप्ली. एस. सी. आर. 646 :	
	उमा शंकर बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** ।	18

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2017 की दांडिक अपील सं. 511.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 378 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री एम. एल. चौहान अपर महाधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री रीतिका जस्सल, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति संदीप शर्मा – यह वर्तमान दांडिक अपील दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 के अधीन फाइल की गई है जिसे विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश (11) ऊना जिला ऊना, हि. प्र. द्वारा तारीख 26 अगस्त, 2016 को पारित दोषमुक्ति के आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध प्रस्तुत की गई जिसके द्वारा प्रत्यर्थी-अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 489ग के अधीन दंडनीय अपराध से दोषमुक्त किया गया है ।

2. संक्षेप में तथ्य जिनका विस्तृत रूप से विवरण देना अनावश्यक है जो अभिलेख से प्रकट है, इस प्रकार है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/ए, तारीख 23 अक्टूबर, 2009 को दंड संहिता की धारा 489ग के अधीन दंडनीय अपराध अभिकथित रूप से कारित किए जाने के लिए प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विरुद्ध पुलिस थाना, सदर जिला ऊना, हि. प्र. में दर्ज की गई । अभियोजन पक्षकथन के अनुसार तारीख 23 अक्टूबर, 2009 को उप-निरीक्षक राजिन्द्र शर्मा (अभि. सा. 6) जिला ऊना में तथाकथित स्थान पीरनिगाह पर गश्त ड्यूटी पर था जहां उसने प्रत्यर्थी-अभियुक्त सहित तीन व्यक्तियों को संदेहास्पद स्थिति में घूमते हुए देखा । चूंकि पूर्वोक्त व्यक्ति ऊपर नामित उप-निरीक्षक की पूछताछ का उत्तर देने में असमर्थ रहे थे उनकी पुलिस द्वारा तलाशी ली गई थी । प्रत्यर्थी-अभियुक्त की तलाशी के दौरान 100/- रुपए मूल्यवर्ग के तीन करेंसी नोट जिनकी संख्या 4 ए. जी. 661121, 4 ए. जी. 661122 और 4 ए. जी. 661122, 50/-रुपए मूल्यवर्ग के छह करेंसी नोट जिनकी सं. जे. ई. ए. 124901, जे. ई. ए. 124901, 9 ए. एस. 700129, 9 ए. एस. 7001295 एम. एम. 740663, 5 एम. एम. 740663 थी और 10 रुपए मूल्यवर्ग के तीन करेंसी नोट जिनकी सं. 33 वी. 404394, 93 ए 224081, 86 डी. 722367 है, उसके पेंट से बरामद किए गए थे । अभियोजन पक्षकथन के अनुसार पुलिस पूर्वोक्त करेंसी बरामद करने के पश्चात् उप प्रबंधक, स्टेट बैंक आफ पटियाला, ऊना को करेंसी नोटों का सत्यापन किए जाने के अनुरोध के साथ संसूचित करते हुए तत्काल भेजे गए जैसा कि इसमें ऊपर उल्लिखित है जिन्होंने बदले में यह सूचना दी 100/- रुपए और 50/- रुपए के करेंसी नोट जैसाकि इसमें ऊपर उल्लिखित है, जाली हैं जबकि 10/- रुपए मूल्यवर्ग के वास्तविक हैं । पूर्वोक्त रिपोर्ट के आधार पर उप-निरीक्षक (अभि. सा. 6) की शिकायत पर पुलिस में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रवर्ग पी. डब्ल्यू. 6/क दर्ज की जिसने बाद में स्वयं मामले में अन्वेषण किया ।

बरामदगी के पश्चात् पुलिस ने आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने के पश्चात् करेंसी प्रवर्ग पी. एक्स. को न्यायालयिक प्रयोगशाला जुंगा भेज दिया जिन्होंने यह भी रिपोर्ट लगायी कि 100/- रुपए और 50/- रुपए मूल्यवर्ग के करेंसी नोट वास्तविक नहीं हैं, जबकि 10/- रुपए मूल्यवर्ग के करेंसी नोट वास्तविक हैं ।

3. पुलिस ने अन्वेषण पूरा करने के पश्चात् सक्षम विधि के न्यायालय में अर्थात् विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, न्यायालय सं. 11, ऊना, हिमाचल प्रदेश में चालान प्रस्तुत किया जिन्होंने मामले में संज्ञान लेने के पश्चात् विचारण के लिए मामले को विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश 11 ऊना, जिला ऊना, हि. प्र. को सुपुर्द कर दिया । विद्वान् अपर सेशन ने अपना समाधान करते हुए कि प्रथमदृष्ट्या मामला प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विरुद्ध बनाता है और दंड संहिता की धारा 489ग के अधीन दंडनीय अपराध किए जाने के लिए उसके विरुद्ध आरोप विरचित किया जिस पर उसने दोषी नहीं होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया । अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को साबित करने के विचार से कुल-मिलाकर छह साक्षियों की परीक्षा कराई जबकि प्रत्यर्थी-अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभिलिखित अपने कथन में अभियोजन पक्षकथन से इंकार किया और स्वयं निर्दोष होने का दावा किया ।

4. तत्पश्चात्, विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने तारीख 26 अगस्त, 2016 के निर्णय पारित करके प्रत्यर्थी-अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 489ग के अधीन उसके विरुद्ध विरचित आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषमुक्ति के पूर्वोक्त निर्णय से व्यथित और असंतुष्ट होकर अपीलार्थी राज्य ने इस न्यायालय में समावेदन किया । वर्तमान कार्यवाहियों के आधार पर निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषमुक्ति के निर्णय को अपास्त करके प्रत्यर्थी अभियुक्त की दोषसिद्धि की ईप्सा की ।

5. विद्वान् अपर महाधिवक्ता, श्री एम. एल. चौहान ने निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषमुक्ति के आक्षेपित निर्णय की ओर इस न्यायालय का ध्यान दिलाया और पुरजोर यह दलील दी है कि यह विधि के दृष्टि में कामयोग्य नहीं है क्योंकि यह साक्ष्य के उचित मूल्यांकन पर आधारित नहीं है और इस प्रकार, इसे अभिखंडित और अपास्त किया जाना चाहिए । श्री चौहान ने यह भी दलील दी है कि अभियोजन साक्षियों ने

स्पष्ट रूप से निचले न्यायालय के समक्ष यह अभिसाक्ष्य दिया है कि जाली करेंसी नोट प्रत्यर्थी-अभियुक्त के जेब से बरामद हुए थे जो यह स्पष्टीकरण देने में असमर्थ हुआ था कि ऐसी जाली करेंसी उसके कब्जे में कैसे आई । श्री चौहान ने अभियोजन साक्षियों के कथन की ओर इस न्यायालय का ध्यान दिलाते हुए इस न्यायालय को राजी करने का प्रयत्न किया जिसमें कि उसके कथन से सहमत हो जाए कि अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर दिए गए साक्ष्य का पूर्णतया गलत मूल्यांकन और गलत अर्थान्वयन किया गया है जबकि प्रत्यर्थी-अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 489ग के अधीन दंडनीय अपराध किए जाने के लिए दोषी ठहराना चाहिए था । श्री चौहान ने यह भी दलील दी है कि उपखंड मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/च की फोटोप्रति जिसे निचले न्यायालय के समक्ष रखा गया है, अभिलेख पर साबित है कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त उपखंड मजिस्ट्रेट के कार्यालय में मौजूद था और इस प्रकार, मूल दस्तावेज पेश न करने के बारे में अभियोजन पक्ष के विरुद्ध कोई प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जा सकता है । इसी तरह, श्री चौहान ने इस न्यायालय का ध्यान अभि. सा. 1 के कथन अर्थात् अशोक कुमार भारद्वाज अर्थात् बैंक प्रबंधक की ओर दिलाया और यह दलील दी है कि जब एक बार उसने स्पष्ट रूप से निचले न्यायालय के समक्ष अभिसाक्ष्य दिया है कि तारीख 23 अक्तूबर, 2009 को पुलिस पदधारी करेंसी नोट का लिफाफा रखे हुए शाखा पर पहुंचे थे जिसमें उन नोटों की वास्तविकता की जांच करने के लिए अनुरोध किया गया था, निचले न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाल कर गलती की है कि इस कारण से पूर्वोक्त साक्षियों के वृत्तांत पर कोई अवलंब नहीं लिया जा सकता है कि ऐसा कोई भी लिखित आवेदन बैंक पदधारियों के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है जिसे प्रत्यर्थी-अभियुक्त से बरामद अभिकथित करेंसी नोटों के सत्यापन के बारे में तथ्य साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर रखा गया था । विद्वान् अपर महाधिवक्ता ने पूर्वोक्त दलीलों के साथ यह अनुरोध किया है कि निचले न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी-अभियुक्त को अभिलिखित दोषमुक्ति के निर्णय को अपास्त करने के पश्चात् दंड संहिता की धारा 489ग के अधीन दंडनीय अपराध कारित किए जाने के लिए दोषसिद्ध किया ।

6. प्रत्यर्थी/अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल सुश्री रीतिका जस्साल ने विद्वान् अपर महाधिवक्ता द्वारा किए गए पूर्वोक्त निवेदनों का खंडन करते हुए विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया है और पुरजोर यह दलील दी है कि उसमें कोई

अवैधानिकता नहीं है, बल्कि उसका परिशीलन करने से यह इंगित होता है कि निचले न्यायालय ने प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विरुद्ध विरचित आरोप की सत्यता को सुनिश्चित करते हुए अति बरीकी से मामले के अलग-अलग और प्रत्येक पहलू पर विचार किया है और इस प्रकार, इस न्यायालय के पास हस्तक्षेप करने की कोई भी गुंजाइश नहीं है । अभियोजन पक्ष ने युक्तियुक्त संदेह के परे अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए अभि. सा. 2 का कथन अर्थात् स्वतंत्र साक्षी जिसे अभियोजन द्वारा सहबद्ध किया गया है, उसकी और इस न्यायालय का ध्यान दिलाया गया, सुश्री जस्साल ने बलपूर्वक यह दलील दी है कि एकमात्र स्वतंत्र साक्षी अर्थात् रणवीर सिंह पक्षद्रोही हो गया और कहीं भी अभियोजन पक्षकथन का समर्थन नहीं किया है और इस प्रकार, विद्वान् निचले न्यायालय ने प्रत्यर्थी अभियुक्त को उसके विरुद्ध विरचित आरोप से दोषमुक्त कर दिया । सुश्री जस्साल ने यह भी दलील दी है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन अन्वेषक अधिकारी द्वारा फाइल किया गया चालान से अभियोजन पक्षकथन स्वतः मिथ्या प्रकट होता है क्योंकि उसमें बहुत सारी कमियां हैं जिसमें अंततोगत्वा, विद्वान् निचले न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अभियोजन पक्ष द्वारा बतायी गई कहानी यद्यपि विश्वासयोग्य नहीं है बल्कि पूर्ण रूप से षड्यंत्र करके रची गई है । सुश्री जस्साल ने दंड संहिता की धारा 489ग के अधीन अंतर्विष्ट उपबंधों की ओर न्यायालय का ध्यान दिलाया और यह दलील दी कि प्रत्यर्थी अभियुक्त की दोषिता को साबित करने के लिए और दंड प्रक्रिया की पूर्वोक्त धारा (489ग) की परिधि में उसे लाने के लिए, अभियोजन पक्ष के लिए यह लाजिमी था कि प्रत्यर्थी अभियुक्त के आशय को साबित करे कि उसके कब्जे से बरामद की गई अभिकथित जाली करेंसी का इस्तेमाल हुआ था परंतु वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर तनिक भी ऐसा साक्ष्य पेश नहीं किया गया है जिससे कि जाली करेंसी का इस्तेमाल हुआ हो और इस प्रकार, दंड संहिता की धारा 489ग के अधीन प्रत्यर्थी अभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनता है और निचले न्यायालय द्वारा उसे दोषमुक्त करके ठीक ही किया गया है ।

7. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना तथा अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है ।

8. स्टेट बैंक आफ पटियाला के शाखा प्रबंधक श्री अशोक कुमार भारद्वाज ने अभि. सा. 1 के रूप में हाजिर होकर विद्वान् निचले न्यायालय के समक्ष यह अभिसाक्ष्य दिया है कि तारीख 23.10.2009 को कुछ पुलिस

पदधारी शाखा पर पहुंचे और इस अनुरोध के साथ करेंसी नोटों का लिफाफा अपने साथ लाए थे कि करेंसी नोटों की वास्तविकता जांच कर दें । पूर्वोक्त साक्षी ने निचले न्यायालय के समक्ष यह भी कथन किया है कि उसने करेंसी नोटों की जांच की और रिपोर्ट प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/क जारी की । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि 100/- रुपए के तीन करेंसी नोट प्रदर्श पी. 1 पी. 3, 50/-रुपए के छह नोट पी. 4 से पी. 9 के करेंसी नोट जाली पाए गए थे जबकि 10/- रुपए के तीन नोट प्रदर्श पी. 10 से पी. 12 वास्तविक पाए गए थे । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि पुलिस द्वारा करेंसी नोटों की वास्तविक जांच करने के लिए उसे कोई लिखित आवेदन नहीं दिया गया था परंतु उसने यह भी कथन किया है कि उसने तारीख 23 अक्तूबर, 2009 को कतिपय करेंसी नोटों की जांच की ।

9. इस साक्षी द्वारा किए गए पूर्वोक्त कथन से पूर्णतया यह प्रकट होता है कि पुलिस द्वारा करेंसी नोटों की सत्यता और वास्तविकता की जांच करने के लिए बैंक को कोई औपचारिक आवेदन नहीं दिया गया था । तदुपरि, यह अभिप्रेत है कि रिपोर्ट प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/क को जारी करने के बारे में बैंक पर उपलब्ध कोई अभिलेख नहीं था ।

10. अभि. सा. 2 अर्थात् राजवीर सिंह अर्थात् एकमात्र स्वतंत्र साक्षी जिसे अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए सहबद्ध किया गया था, उसने अभियोजन पक्षकथन का भी समर्थन नहीं किया है । अभि. सा. 2 ने अपने कथन में यह अभिसाक्ष्य दिया है कि तारीख 23 अक्तूबर, 2009 को पुलिस अपनी अभिरक्षा में मंदिर कार्यालय पर किसी व्यक्ति को लाए थे जहां संदेह पर उसकी तलाशी ली गई थी । इस साक्षी के अनुसार पुलिस ने करेंसी बरामद की, जिसमें से कुछ में एक ही क्रम संख्या दर्ज हुई थी । इस साक्षी के अनुसार पुलिस द्वारा उसकी मौजूदगी में इस प्रक्रम पर कोई दस्तावेज तैयार नहीं किया गया था । इस साक्षी ने निचले न्यायालय के समक्ष स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि वह पुलिस द्वारा ढूंढे गए ऐसे व्यक्ति की शनाख्त नहीं कर सकता चूंकि काफी समय व्यतीत हो चुका है, इस प्रकार, इस साक्षी के पक्षद्रोही घोषित किया गया था । परंतु इस साक्षी से की गई प्रतिपरीक्षा से भी यह इंगित होता है कि अभियोजन पक्ष इस बात के प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने में असमर्थ था जो कुछ उसने मुख्य परीक्षा में कथन किया है, इस साक्षी ने अपनी प्रति-परीक्षा में उस सुझाव से इनकार किया है जो उसे दिया गया कि संदेहास्पद

व्यक्ति की तारीख 22 अक्तूबर, 2009 को तलाशी ली गई थी और यह कथन किया है कि उसे यह याद नहीं है कि क्या पुलिस ने मोबाइल फोन और सिंथेटिक लेदर पर्स प्रत्यर्थी अभियुक्त से बरामद किया गया था । यद्यपि, उसने ज्ञापन प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/क में अपने हस्ताक्षर स्वीकार किया है परंतु उसने अपनी अनभिज्ञता का बहाना लिया है कि क्या पुलिस पदधारियों ने अभियुक्त की तलाशी लिए जाने से पूर्व अपनी स्वयं की तलाशी दी थी । अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा साक्षी की गई प्रतिपरीक्षा में, उसने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि उसके कथन को उस दिन अभिलिखित नहीं किया गया था । यदि इस साक्षी द्वारा दिए गए पूर्वोक्त वृत्तांत की परिवादी द्वारा दिए गए वृत्तांत के प्रकाश में परीक्षा की जाती है जिसने बाद में मामले में अन्वेषण किया तब अभियोजन पक्ष द्वारा बताई गई कहानी की प्रमाणिकता और सत्यता के बारे में संदेह पैदा होता है ।

11. अन्वेषक अधिकारी राजिन्द्र शर्मा (अभि. सा. 6) ने अपने कथन में यह कहा है कि लगभग 6.30 बजे अपराह्न वह घटनास्थल पर पहुंचा जहां उसने प्रत्यर्थी-अभियुक्त को भ्रमण करते हुए देखा और तद्नुसार संदेह के आधार पर पुलिस उसे मंदिर प्राधिकारियों के कार्यालय पर लाए । उसने यह भी कथन किया है कि उसके द्वारा अध्यक्ष अर्थात् रनवीर सिंह (अभि. सा. 2) तथा सतीश कुमार की उपस्थिति में तलाशी ली गई और करेंसी नोटों की बरामदगी की गई । यदि अभि. सा. 2 के कथन पर विचार किया जाए तो दूसरे व्यक्ति अर्थात् सतीश कुमार का कोई उल्लेख नहीं है । अभि. सा. 2 ने यह कथन किया है कि पुलिस मंदिर पर अभियुक्त को लाई थी और इसके पश्चात्, उसकी मौजूदगी में उसकी तलाशी ली गई । यह बात अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि अभि. सा. 6 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि उसने लगभग 10.30/11.00 बजे अपराह्न अभियुक्त को गिरफ्तार किया था, उसका यह कथन मुख्य परीक्षा में किए गए उसके वृत्तांत तथा अभि. सा. 2 के कथन से पूर्णतया प्रतिकूल है, इसी तरह, अभि. सा. 6 ने अपने कथन में यह कहा है कि अभियुक्त की वैयक्तिक तलाशी लेने से पूर्ण उसने अपनी वैयक्तिक तलाशी अभियुक्त को दी परंतु अभि. सा. 2 अर्थात् रणवीर सिंह के कथन में ऐसा कुछ भी नहीं है कि अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 6) द्वारा किए गए पूर्वोक्त वृत्तांत की संपुष्टि होती हो । उपरोक्त बातों से अलग अभियुक्त की तलाशी लेने से पूर्व अन्वेषक अधिकारी द्वारा दी गई वैयक्तिक तलाशी का कोई ज्ञापन नहीं है । वैयक्तिक तलाशी के बारे में पूर्वोक्त वृत्तांत की अन्य

शासकीय साक्षियों द्वारा संपुष्टि भी नहीं की गई है ।

12. हेड कांस्टेबल सतीश कुमार (अभि. सा. 3) ने अपने कथन के बहाने अनभिज्ञता प्रकट की है कि क्या अन्वेषक अधिकारी ने प्रत्यर्थी-अभियुक्त की तलाशी लेने से पूर्व वैयक्तिक तलाशी ली थी या नहीं ।

13. यह सही है कि अभि. सा. 6 (अन्वेषक अधिकारी) की वैयक्तिक तलाशी के बारे में अभि. सा. 2 अभि. सा. 3 के कथनों में लघु विचलन हो सकते है किंतु अभिलेख पर ज्ञापन तैयार करने या उसे रखने के बारे में कोई स्पष्ट स्पष्टीकरण नहीं है जिससे कि यह निष्कर्ष निकालने के लिए साक्ष्य का कोई निश्चित टुकड़ा हो सकता है कि अन्वेषक अधिकारी ने प्रत्यर्थी-अभियुक्त की तलाशी को प्रभावित करने से पूर्व अपनी वैयक्तिक तलाशी दी थी ।

14. यदि इस मामले की दूसरे दृष्टिकोण से परीक्षा की जाए तो यह प्रकट होता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पी. डब्ल्यू. 6/ग के अनुसार तीन व्यक्ति संदेहजनक स्थिति में घूमते हुए पाए गए थे और इस प्रकार, उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41(2) और 109 के अधीन गिरफ्तार किया गया था परंतु यह रोचक बात है कि अभियुक्त सूर्य प्रकाश की अपेक्षा अन्य दो व्यक्तियों की तलाशी के बारे में कोई उल्लेख नहीं है । अभिलेख के अनुसार प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुसार, प्रथम इत्तिला तारीख 23 अक्तूबर, 2009 को लगभग 7.30 बजे पुलिस थाने में दर्ज की गई जबकि अभि. सा. 6 (अन्वेषक अधिकारी) का स्वयं का कथन के अनुसार, उसने तारीख 23 अक्तूबर, 2009 को 10.30-11.00 बजे अभियुक्त को गिरफ्तार किया था । यह समझ में नहीं आता है कि अन्वेषक अधिकारी के स्वयं की स्वीकृति के अनुसार, प्रत्यर्थी अभियुक्त को तारीख 23 अक्तूबर, 2009 को 10.30-11.00 बजे अपराह्न गिरफ्तार किया गया था । कैसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट उसी तारीख को 7.30 बजे अपराह्न पुलिस थाने के अनुसार अभिलिखित की जा सकती है । अभियोजन पक्ष ने पुलिस थाने पर प्रविष्टि अभिलेख प्रवर्ग पी. डब्ल्यू. 6/घ अर्थात् रिपोर्ट सं. 21 को भी रखा जिससे अभियोजन पक्षकथन मिथ्या हो जाता है क्योंकि तारीख 23 अक्तूबर, की रिपोर्ट सं. 21 के अनुसार सूचना तारीख 23 अक्तूबर, 2009 को प्रातः 5.50 बजे पूर्वोक्त प्राप्त की गई थी जिसका परिशीलन करने पर यह इंगित होता है कि अनुमानतः 17 व्यक्तियों से पूछताछ की गई थी और चूंकि तीन व्यक्ति अर्थात् चन्दर प्रकाश, पुरुषोत्तम लाल और महेश कुमार के गलत नाम बताए थे । उन्हें गिरफ्तार किया गया था । रिपोर्ट/अभिलेख के अनुसार

पुलिस ने 600/- रुपए की राशि बरामद की थी और उन्हें उप खंड मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया था किंतु अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर कोई बरामदगी ज्ञापन नहीं है/था जिससे कि प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/च अर्थात् फोटो प्रति की अपेक्षा ऐसी बरामदगी को साबित करें, विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा उस बात का कोई अवलंब नहीं लिया जा सकता । यह रोचक बात है कि वर्तमान मामले में इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि इस प्रकार अभियोजन की ओर से ऐसा कोई प्रयास नहीं किया गया है कि उप खंड मजिस्ट्रेट के कार्यालय से अभिलेख मंगाया जाए जिससे कि करेंसी की बरामदगी को साबित करें । बरामदगी ज्ञापन का एक अन्य साक्षी अर्थात् हेड कांस्टेबल सतीश कुमार (अभि. सा. 3) ने अपने कथन में यह कहा है कि तारीख 22 अक्तूबर, 2009 को वह उप-निरीक्षक अर्थात् राजिंद्र कुमार शर्मा (अभि. सा. 6) के साथ था और उस अवधि के दौरान 14-15 लोगों ने अभियुक्त सहित बाधा डाली थी । उसने यह भी कथन किया है कि पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए गए व्यक्ति ने अपने सही नाम नहीं बताए थे और इस प्रकार, उन्हें दंड संहिता की धारा 41(2) और 109 के अधीन गिरफ्तार किया गया था । इस साक्षी के अनुसार पुलिस ने अभियुक्त को गिरफ्तार करने से पूर्व प्रधान अर्थात् रणवीर सिंह की मौजूदगी में पीरनीगाहा मंदिर के नजदीक उसकी तलाशी ली जिनकी मौजूदगी में मोबाइल फोन और कुछ करेंसी नोट पर्स में रखे हुए थे, जिन्हें बरामद किया गया । अभि. सा. 3 दिया गया पूर्वोक्त वृत्तांत अभि. सा. 2 के कथन के पूर्णतया विभेदकारी हैं जिन्होंने यह कथन किया है कि पुलिस अभियुक्त को मंदिर पर लाई थी । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह भी कथन किया है कि दो अन्य व्यक्तियों को अभियुक्त के साथ गिरफ्तार किया गया था, उनकी भी तलाशी ली गई, परंतु यह रोचक तथ्य है कि न तो अभि. सा. 2 के कथन में और न अभि. सा. 6 के कथन में इस बारे में कोई उल्लेख है जिसमें अभियोजन पक्ष द्वारा बताई गई कहानी की वास्तविकता और सत्यता के बारे में गंभीर संदेह पैदा होता है । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि अभियुक्त को लगभग 10.00 से 11.00 बजे अपराह्न गिरफ्तार किया गया था और वह यह नहीं कह सकता है कि क्या पुलिस द्वारा अभियुक्त से प्रभावशाली बरामदगी कराने से पूर्व किसी अन्य व्यक्ति को पुलिस द्वारा वैयक्तिक तलाशी दी गई थी । इसी तरह, उस व्यक्ति ने अनभिज्ञता का बहाना किया कि अभियुक्त उपखंड मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश हुआ था या नहीं, बल्कि उसने स्वयं यह कथन किया है कि अन्वेषक अधिकारी उसके समक्ष पेश हो सका ।

15. इस न्यायालय ने अभियोजन साक्षियों द्वारा दिए गए वृत्तांत का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के पश्चात् निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष में कोई अवैधानिक और दुर्बलता का निष्कर्ष नहीं निकाला है क्योंकि स्वीकृततः, उनके वृत्तांत का एक-दूसरे से विभेदकारी होते हुए उनका कोई अवलंब नहीं लिया जा सकता है । इस न्यायालय को विद्वान् अपर महाधिवक्ता की दलील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है कि विद्वान् निचले न्यायालय प्रत्यर्थी-अभियुक्त की दोषिता की परीक्षा करते हुए सही परिपेक्ष्य में साक्ष्य का मूल्यांकन करने में विफल हुआ है बल्कि इस न्यायालय का पूरी तरह से समाधान हुआ है कि विद्वान् निचले न्यायालय ने सही परिप्रेक्ष्य में साक्ष्य का मूल्यांकन किया है और प्रत्यर्थी-अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 489ग के अधीन दंडनीय अपराध कारित किए जाने के लिए दोषी ठहराकर सही नहीं किया है ।

16. यह सुस्थापित है कि दांडिक विचारण में प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का सावधानीपर्वूक निर्धारण करना अपेक्षित है और इसकी विश्वसनीयता का मूल्यांकन किया जाना अपेक्षित है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने दोहरा कर यह अभिनिर्धारित किया है कि चूंकि दांडिक विधिशास्त्र के मूल पहलू सुस्थापित सिद्धांतों पर आधारित है कि "कोई व्यक्ति तब तक दोषी नहीं है जब तक कि ऐसा साबित न हो जाय" ऐसी स्थिति पर विचार करते समय अत्यधिक सावधानी का प्रयोग किया जाना अपेक्षित है जहां विविध परिसाक्ष्य है और समानतः अधिक संख्या में साक्षियों ने न्यायालय के समक्ष साक्ष्य दिया है । यह अत्यधिक महत्वपूर्ण है जिस पर उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यह सिलसिला होना चाहिए कि सभी साक्षियों का साक्ष्य सम्मिलित होना चाहिए और तदुपरि, सभी साक्षियों के बीच साक्ष्य में संगतता की कसौटी पर मूल्यांकन किया जाना जरुरी है । **सी. मगेश और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का अवलंब लिया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है और जो इस प्रकार है :–

> "45. इसमें यह उल्लेख किया जा सकता है कि दांडिक विधिशास्त्र में साक्ष्य का संगति के कसौटी में मूल्यांकन किया जाना चाहिए । इस बात पर जोर देना व्यर्थ है कि संगति किसी अभियुक्त को दोषसिद्ध ठहराने के लिए कुंजी के रूप में है । इस बारे में यह

[1] (2010) 5 एस. सी. सी. 645.

उल्लेखनीय है कि इस न्यायालय ने सूरज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [2008] 11 एस. सी. आर. 286 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है जो इस प्रकार है – (एस. सी. सी. पृष्ठ 704 पैरा 14)

14. साक्ष्य की कहानी की अंतर्निहित संगति और अंतर्निहित संभावना में परीक्षा की जानी चाहिए; अन्य साक्ष्य के बारे में संगति को विश्वासयोग्य ठहराया जाना चाहिए । ऐसे साक्ष्य का प्रमाणक मूल्य संचयी मूल्यांकन के पैमाने में वांछनीय होना चाहिए ।

46. किसी दांडिक विचारण में प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य का सावधानीपूर्वक निर्धारण किया जाना अपेक्षित है और इसकी विश्वसनीयता का मूल्यांकन लिया जाना चाहिए । चूंकि आपराधिक विधिशास्त्र का मूलभूत पहलू कथित सिद्धांतों पर आधारित है कि कोई व्यक्ति तब तक दोषी नहीं है जब तक कि साबित न हो "इसलिए, ऐसी स्थितियों पर विचार करने में अत्यधिक सावधानी बरती जाना अपेक्षित है जहां पर कई परिसाक्ष्य हो और समान रूप से कई साक्षियों ने न्यायालय के समक्ष गवाही दी हो । यह भी शर्त होनी चाहिए कि सभी साक्षियों का साक्ष्य सम्मिलित होना चाहिए और तदुपरि सभी साक्षियों को साक्ष्य की संगतता की कसौटी का समाधान होना चाहिए ।"

17. प्रत्येक बात को छोड़ते हुए, दंड संहिता की धारा 498-ग में अंतर्विष्ट उपबंध से यह इंगित होता है कि अभियोजन पक्ष के लिए यह लाजिमी है कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त के आशय को साबित करें कि उसके कब्जे से बरामद की गई अभिकथित जाली करेंसी को इस्तेमाल करने के लिए प्रत्यर्थी-अभियुक्त के आशय को साबित करें । इस बारे में धारा 489ग को इसमें नीचे दिया जा रहा है :–

> "489ग. कूटरचित का कूटकृत करेंसी नोटों का बैंक नोंटों के कब्जे में रखना – जो कोई किसी कूटरचित या कूटकृत करेंसी नोट या बैंक नोट को यह जानते हुए या विश्वास करने का कारण रखते हुए कि वह कूटरचित या कूटकृत है और यह आशय रखते हुए कि उसे असली के रूप उपयोग में लाए या वह असली के रूप में उपयोग में लाई जा सकें, अपने कब्जे में रखेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी

सात वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से या दोनों से दण्डित किया जाएगा ।

वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा यह साबित करने के लिए अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है जिससे प्रत्यर्थी-अभियुक्त का यह आशय हो कि जाली करेंसी बल्कि जो अभियोजन का स्वयं का पक्षकथन है कि संदेह पर प्रत्यर्थी-अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया था और बाद में जब उसकी तलाशी ली गई तो उसकी जेब से जाली करेंसी बरामद की गई थी । जिसमें अन्वेषक-अधिकारी (अभि. सा. 6) सहित किसी अन्य अभियोजन साक्षी है, इस बारे में विनिर्दिष्टतः कुछ भी कथन नहीं किया है कि प्रत्यर्थी अभियुक्त की ओर से ऐसी जाली करेंसी का प्रयोग किया गया और इस प्रकार, प्रत्यर्थी-अभियुक्त की ओर से सुश्री रीतिका जस्साल अधिवक्ता की दलील में कोई सारभूत बल प्रतीत होता है कि दंड संहिता की धारा 489ग के अधीन प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विरुद्ध कोई दोषसिद्धि अभिलिखित नहीं की जा सकती कि उसने जाली करेंसी का इस्तेमाल किया था ।"

18. **उमा शंकर** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का अवलंब लिया गया है । पूर्वोक्त निर्णय का सुसंगत पैरा इस प्रकार है :–

"4. अपीलार्थी के विरुद्ध गंभीर आरोप जो शिकायतकर्ता द्वारा लगाया गया था यह है कि तारीख 25 मई, 1990 को लगभग 10.00 बजे अपराह्न उसने एक किलो ग्राम आम खरीदे थे जिसकी कीमत पांच रुपए थी । उस पर उसने अभि. सा. 4 को 100/- रुपए का जाली करेंसी नोट दिया जिसने उसके असली होने पर संदेह व्यक्त किया था । उसने इसे अभि. सा. 2 और अभि. सा. 7 को दिखाया जिन्होंने यह कहा कि यह जाली करेंसी नोट है उसने उस व्यक्ति को पुलिस को सौंप दिया जिसने उस व्यक्ति से ऐसे 13 जाली करेंसी नोट बरामद किए और इसके अतिरिक्त उस व्यक्ति के मकान से कुछ कागजात, भिन्न-भिन्न रंग की रिफील तथा कैंचियां भी बरामद की गई थी । इन तथ्यों पर उसके विरुद्ध दंड संहिता की धारा 489क, 489ख और 489ग के अधीन आरोप विरचित किए गए ।

5. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात्

---

[1] [2001] 3 सप्ली. एस. सी. आर. 646.

विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने धारा 489-क के अधीन आरोप से उसे दोषमुक्त कर दिया परंतु उसे 489ख और 489ग के अधीन आरोपों से दोषी पाया था तथा ऊपर उल्लिखित अवधियों के लिए उसे दंडादिष्ट किया । जब उसके द्वारा उच्च न्यायालय में अपील की गई तो उच्च न्यायालय द्वारा उसकी दोषसिद्धि की पुष्टि की गई परंतु उसके दंड को कम किया गया । जैसा कि ऊपर उल्लिखित है ।

6. विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी की दोषसिद्धि की दंड संहिता की धारा 489ख और धारा 489ग के अधीन पुष्टि की गई जिसका परिशीलन करने पर इस प्रकार है;

489ख. कूटरचित या कूटकृत करेंसी नोटों या बैंक नोटों को असली के रूप में उपयोग में लाना – जो कोई किसी कूटरचित या कूटकृत करेंसी नोट या बैंक नोट को, यह जानते हुए, या विश्वास करने का कारण रखते हुए कि वह कूटरचित या कूटकृत है, किसी अन्य व्यक्ति को बेचेगा या उससे खरीदेगा या प्राप्त करेगा या अन्यथा उसका दुर्व्यापार करेगा या असली के रूप में उसे उपयोग में लाएगा, वह आजीवन कारावास से, या दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा ।

489ग. कूटरचित या कूटकृत करेंसी नोटों या बैंक नोटों के कब्जे मे रखना – जो कोई किसी कूटरचित या कूटकृत करेंसी नोट या बैंक नोट को यह जानते हुए या विश्वास करने का कारण रखते हुए कि वह कूटरचित या कूटकृत है और यह आशय रखते हुए कि उसे असली के रूप उपयोग में लाए या वह असली के रूप में लाई जा सके, अपने कब्जे में रखेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा ।

7. धारा 489क से 489ड़ करेंसी नोटों या बैंक नोटों का कूटरचित या कूटकरण के बारे में विभिन्न आपराधिक अपराधों पर विचार किया गया । विधान-मंडल का यह उद्देश्य था कि इन उपबंधों को अधिनियमित किया जाए जिससे कि देश की अर्थव्यवस्था को न केवल संरक्षण मिले बल्कि करेंसी नोटों और बैंक नोटों को पर्याप्त संरक्षण भी दिया जाए । करेंसी नोट ऐसे हैं इनके बजाय क्रैडिट कार्ड

सिस्टम को बढ़ावा दिया जाए फिर भी हमारे देश में बहुसंख्यकों के द्वारा वाणिज्यिक संविवाद की रीढ़ को भी बनाए रखना है । परंतु इन उपबंधों का अर्थ यह नहीं है कि असावधान स्वामियों या उपभोक्ताओं को दंडित करें ।

8. इन उपबंधों का परिशीलन करने से जिनका निचोड़ ऊपर दिया गया है, उनसे यह दर्शित होता है कि धारा 489ख और 489ग के अधीन अपराधों की आपराधिक मनःस्थिति है, "करेंसी नोटों या बैंक नोटों पर विश्वास करने का कारण जानता हूं कि वे कूटरचित या कूटकृत हैं" ऊपर उल्लिखित आपराधिक मनःस्थिति के बिना असली रूप में कूटरचित या कूटकृत करेंसी या बैंक नोटों को असली रूप में प्रयोग करके बेचने, खरीदने या किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त करने या अन्यथा अवैध व्यापार से दंड संहिता की धारा 489ख के अधीन अपराध को गठित करना पर्याप्त नहीं है । किसी कूट रचित या कूट-कृत करेंसी को कब्जे में रखना या सआशय उनका प्रयोग करने से आपराधिक मनःस्थिति के अभाव में धारा 489ग के अधीन मामला प्रकट होना पर्याप्त नहीं है, जैसा कि ऊपर टिप्पण किया गया है । अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं लाई गई है जिससे कि यह दर्शित होता हो कि अपीलार्थी के पास आपराधिक मनःस्थिति की अध्यपेक्षा थी तथापि, उच्च न्यायालय ने इस पहलू को पूरी तरह से गायब कर दिया । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने अभि. सा. 2, अभि. सा. 4 और अभि. सा. 7 के आधार पर कि वे, यह प्रकट करने में समर्थ थे कि अभिकथित करेंसी नोट जो अभि. सा. 4 को दिया गया था जाली था जिसमें आपराधिक मनःस्थिति की उपधारणा की गई । घटना की तारीख को छात्र के बारे में 18 वर्ष का होना कहा गया है । इस मामले के तथ्य पर विचारण न्यायालय द्वारा जो उपधारण की गई थी, साक्ष्य अधिनियम की धारा 4 के अधीन अपेक्षित नहीं है । इसके अतिरिक्त यह भी दर्शित नहीं है कि इस बारे में कोई विनिर्दिष्ट प्रश्न कि करेंसी नोट कूटकृत होने पर जाली है जिसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपीलार्थी की परीक्षा करने पर उसके समक्ष रखा गया था । इन तथ्यों पर हमारे पास यह अभिनिर्धारित करने के अलावा कोई तथ्य नहीं है कि 489ख और 489ग के अधीन विरचित आरोप साबित नहीं हुए हैं । अतः हम 489ख और 489ग के अधीन अपीलार्थी के लिए पारित दोषसिद्धि

और दंडादेश को अपास्त करते हैं और उसे उक्त आरोपों से दोषमुक्त करते हैं (देखिए मामोमति बनाम कर्नाटक राज्य ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1705."

विधि की पूर्वोक्त प्रतिपादना से पूर्णतया यह प्रकट हुआ है कि कूट रचित कूटकृत करेंसी नोटों को असली रूप में इस्तेमाल में लेकर बेचने खरीदने या किसी व्यक्ति से प्राप्त करने या अन्यथा अवैध व्यापार करने जिसमें आपराधिक मनःस्थिति नहीं रही है, उससे दंड संहिता की धारा 489 के अधीन अपराध गठित नहीं होता है इसी तरह किसी कूट रचित या कूट कृत करेंसी नोटों या बैंक नोटों को कब्जे में रखना और सआशय उनका प्रयोग करने से आपराधिक मनःस्थिति के अभाव में धारा 489ग के अधीन मामला बनना पर्याप्त नहीं है । वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है कि प्रत्यर्थी अभियुक्त के पास अध्यपेक्षित आपराधिक मनःस्थिति थी और इस प्रकार धारा 489ग के अधीन प्रत्यर्थी अभियुक्त के विरुद्ध कोई दोषसिद्धि अभिलिखित नहीं की जा सकती है ।

19. परिणामस्वरूप, मामले में ऊपर की गई ब्यौरेवार चर्चा तथा उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय को विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा पारित किए गए कारणयुक्त निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई वैध कारण दिखाई नहीं देता है । जो निणर्य अभिलेख पर पेश किए साक्ष्य का उचित मूल्यांकन पर आधारित होना प्रतीत होता है और तद्नुसार उसे कायम रखा जाता है इसलिए अपील गुणागुण रहित होने की वजह से खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

आर्य

संसद् के अधिनियम

बाल-विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006

(2007 का अधिनियम संख्यांक 6)

[10 जनवरी, 2007]

बाल-विवाहों के अनुष्ठान के प्रतिषेध और उससे
संबंधित या उसके आनुषंगिक
विषयों का उपबंध
करने के लिए
अधिनियम

भारत गणराज्य के सतावनवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ** – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम बाल-विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ; और यह भारत से बाहर तथा भारत के परे भारत के सभी नागरिकों को भी लागू होता है :

परंतु इस अधिनियम की कोई बात पांडिचेरी संघ राज्यक्षेत्र के रेनोंसाओं को लागू नहीं होगी ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी और किसी उपबंध में इस अधिनियम के प्रारंभ के प्रति निर्देश का किसी राज्य के संबंध में यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह उस राज्य में उस उपबंध के प्रवृत्त होने के प्रति निर्देश हैं ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "बालक" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसने, यदि पुरुष है तो, इक्कीस वर्ष की आयु पूरी नहीं की है और यदि नारी है तो, अठारह वर्ष की आयु पूरी नहीं की है ;

(ख) "बाल-विवाह" से ऐसा विवाह अभिप्रेत है जिसके बंधन में

आने वाले दोनों पक्षकारों में से कोई बालक है ;

(ग) विवाह के संबंध में "बंधन में आने वाले पक्षकार" से पक्षकारों में से कोई भी ऐसा पक्षकार अभिप्रेत है जिसका विवाह उसके द्वारा अनुष्ठापित किया जाता है या किया जाने वाला है ;

(घ) "बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी" के अन्तर्गत धारा 16 की उपधारा (1) के अधीन नियुक्त बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी भी है ;

(ङ) "जिला न्यायालय" से अभिप्रेत है ऐसे क्षेत्र में, जहां कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66) की धारा 3 के अधीन स्थापित कुटुंब न्यायालय विद्यमान है, ऐसा कुटुंब न्यायालय और किसी ऐसे क्षेत्र में जहां कुटुंब न्यायालय नहीं है, किंतु कोई नगर सिविल न्यायालय विद्यमान है वहां वह न्यायालय और किसी अन्य क्षेत्र में, आरंभिक अधिकारिता रखने वाला प्रधान सिविल न्यायालय और उसके अंतर्गत ऐसा कोई अन्य सिविल न्यायालय भी है जिसे राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट करे जिसे ऐसे मामलों के संबंध में अधिकारिता है, जिनके बारे में इस अधिनियम के अधीन कार्रवाई की जाती है ;

(च) "अवयस्क" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसके बारे में वयस्कता अधिनियम, 1875 (1875 का 9) के उपबंधों के अधीन यह माना जाना है कि उसने, वयस्कता प्राप्त नहीं की है ।

3. **बाल-विवाहों का, बंधन में आने वाले पक्षकार के, जो बालक है, विकल्प पर शून्यकरणीय होना** – (1) प्रत्येक बाल-विवाह जो चाहे इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व या पश्चात् अनुष्ठापित किया गया हो, विवाह बंधन में आने वाले ऐसे पक्षकार के, जो विवाह के समय बालक था, विकल्प पर शून्यकरणीय होगा :

परंतु किसी बाल-विवाह को अकृतता की डिक्री द्वारा बातिल करने के लिए, विवाह बंधन में आने वाले ऐसे पक्षकार द्वारा ही, जो विवाह के समय बालक था, जिला न्यायालय में अर्जी फाइल की जा सकेगी ।

(2) यदि अर्जी फाइल किए जाने के समय, अर्जीदार अवयस्क है तो अर्जी उसके संरक्षक या वाद-मित्र के साथ-साथ बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी की मार्फत की जा सकेगी ।

(3) इस धारा के अधीन अर्जी किसी भी समय किंतु अर्जी फाइल करने वाले बालक के वयस्कता प्राप्त करने के दो वर्ष पूरे करने से पूर्व फाइल की जा सकेगी ।

(4) इस धारा के अधीन अकृतता की डिक्री प्रदान करते समय जिला न्यायालय, विवाह के दोनों पक्षकारों और उनके माता-पिता या उनके संरक्षकों को यह निदेश देते हुए आदेश करेगा कि वे, यथास्थिति, दूसरे पक्षकार, उसके माता-पिता या संरक्षक को विवाह के अवसर पर उसको दूसरे पक्षकार से प्राप्त धन, मूल्यवान वस्तुएं, आभूषण और अन्य उपहार या ऐसी मूल्यवान वस्तुओं, आभूषणों, अन्य उपहारों के मूल्य के बराबर रकम और धन लौटा दे :

परंतु इस धारा के अधीन कोई आदेश तब तक पारित नहीं किया जाएगा जब तक कि संबद्ध पक्षकारों को जिला न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने और यह कारण दर्शित करने के लिए कि ऐसा आदेश क्यों नहीं पारित किया जाए, सूचनाएं न दे दी गई हों ।

4. **बाल-विवाह के बंधन में आने वाली महिला पक्षकार के भरण-पोषण और निवास के लिए उपबंध** – (1) धारा 3 के अधीन डिक्री प्रदान करते समय, जिला न्यायालय बाल-विवाह के बंधन में आने वाले पुरुष पक्षकार को और यदि ऐसे विवाह के बंधन में आने वाला पुरुष पक्षकार अवयस्क है, तो उसके माता-पिता या संरक्षक को, विवाह के बंधन में आने वाली महिला पक्षकार को, उसके पुनर्विवाह तक, भरण-पोषण का संदाय करने के लिए निदेश देते हुए अंतरिम या अंतिम आदेश भी कर सकेगा ।

(2) संदेय भरण-पोषण की मात्रा का अवधारण जिला न्यायालय द्वारा, बालक की आवश्यकताओं, अपने विवाह के दौरान ऐसे बालक द्वारा भोगी गई जीवन शैली और संदाय करने वाले पक्षकार की आय के साधनों को ध्यान में रखते हुए किया जाएगा ।

(3) भरण-पोषण की रकम का मासिक या एकमुश्त राशि के रूप में संदाय करने का निदेश दिया जा सकेगा ।

(4) यदि धारा 3 के अधीन अर्जी देने वाला पक्षकार विवाह के बंधन में आने वाली महिला पक्षकार है तो जिला न्यायालय उसके पुनर्विवाह तक उसके निवास के लिए उपयुक्त आदेश भी कर सकेगा ।

5. **बाल-विवाह से जन्मे बालकों का भरण-पोषण और अभिरक्षा** – (1)

जहां बाल-विवाह से जन्मे बालक हैं, वहां जिला न्यायालय ऐसे बालकों की अभिरक्षा के लिए समुचित आदेश करेगा ।

(2) इस धारा के अधीन किसी बालक की अभिरक्षा के लिए कोई आदेश करते समय, बालक के कल्याण और सर्वोत्तम हितों पर जिला न्यायालय द्वारा, सर्वोपरि ध्यान दिया जाएगा ।

(3) बालक की अभिरक्षा के लिए किसी आदेश में, दूसरे पक्षकार की, ऐसे बालक तक ऐसी रीति से, जो बालक के हितों को सर्वोत्तम रूप से पूरा करती हो, पहुंच के लिए समुचित निदेश, और ऐसे अन्य आदेश, जो जिला न्यायालय बालक के हित में उचित समझे, सम्मिलित हो सकेंगे ।

(4) जिला न्यायालय विवाह के किसी पक्षकार या उनके माता-पिता या संरक्षक द्वारा बालक के भरण-पोषण का उपबंध करने के लिए समुचित आदेश भी कर सकेगा ।

6. **बाल-विवाहों से जन्मे बालकों की धर्मजता** – इस बात के होते हुए भी कि बाल-विवाह धारा 3 के अधीन अकृतता की डिक्री द्वारा बातिल कर दिया गया है, डिक्री किए जाने के पूर्व ऐसे विवाह से जन्मा या गर्भाहित प्रत्येक बालक, चाहे वह इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व या पश्चात् पैदा हुआ हो, सभी प्रयोजनों के लिए धर्मज बालक समझा जाएगा ।

7. **जिला न्यायालय की धारा 4 और धारा 5 के अधीन जारी किए गए आदेशों को उपांतरित करने की शक्ति** – जिला न्यायालय को धारा 4 या धारा 5 के अधीन और यदि परिस्थितियों में कोई परिवर्तन है जो अर्जी के लंबित रहने के दौरान किसी भी समय और अर्जी के अंतिम निपटारे के पश्चात् भी किसी आदेश में जोड़ने, उसे उपांतरित या प्रतिसंहृत करने की शक्ति होगी ।

8. **वह न्यायालय जिसमें अर्जी दी जानी चाहिए** – धारा 3, धारा 4 और धारा 5 के अधीन अनुतोष प्रदान करने के प्रयोजन के लिए अधिकारिता रखने वाले जिला न्यायालय में उस स्थान के ऊपर जहां प्रतिवादी या बालक निवास करता है या जहां विवाह अनुष्ठापित किया गया था या जहां पक्षकारों ने अंतिम रूप से एक साथ निवास किया था या जहां अर्जीदार अर्जी पेश करने की तारीख को निवास कर रहा है, अधिकारिता रखने वाला जिला न्यायालय सम्मिलित होगा ।

9. **बाल-विवाह करने वाले पुरुष वयस्क के लिए दंड** – जो कोई,

अठारह वर्ष से अधिक आयु का पुरुष वयस्क होते हुए, बाल-विवाह करेगा, वह, कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से, दंडनीय होगा ।

10. **बाल-विवाह का अनुष्ठान करने के लिए दंड** – जो कोई किसी बाल-विवाह को संपन्न करेगा, संचालित करेगा, या निर्दिष्ट करेगा, या दुष्प्रेरित करेगा, वह जब तक यह साबित न कर दे कि उसके पास यह विश्वास करने का कारण था कि वह विवाह बाल-विवाह नहीं था, कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने से भी, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

11. **बाल-विवाह के अनुष्ठान का संवर्धन करने या उसे अनुज्ञात करने के लिए दंड** – (1) जहां कोई बालक बाल-विवाह करेगा, वहां ऐसा कोई व्यक्ति जिसके भारसाधन में चाहे माता-पिता अथवा संरक्षक या किसी अन्य व्यक्ति के रूप में अथवा अन्य किसी विधिपूर्ण या विधिविरुद्ध हैसियत में, बालक है, जिसके अंतर्गत किसी संगठन या व्यक्ति निकाय का सदस्य भी है, जो विवाह का संवर्धन करने के लिए कोई कार्य करता है या उसका अनुष्ठापित किया जाना अनुज्ञात करता है या उसका अनुष्ठान किए जाने से निवारण करने में उपेक्षापूर्वक असफल रहता है, जिसमें बाल-विवाह में उपस्थित होना या भाग लेना सम्मिलित है, कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने से भी, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा :

परंतु कोई स्त्री कारावास से दंडनीय नहीं होगी ।

(2) इस धारा के प्रयोजनों के लिए, जब तक कि इसके प्रतिकूल साबित नहीं हो जाता है यह उपधारणा की जाएगी कि जहां अवयस्क बालक ने विवाह किया है वहां ऐसे अवयस्क बालक का भारसाधन रखने वाला व्यक्ति विवाह अनुष्ठापित किए जाने से निवारित करने में उपेक्षापूर्वक असफल रहा है ।

12. **कतिपय परिस्थितियों में किसी अवयस्क बालक के विवाह का शून्य होना** – जहां कोई बालक, जो अवयस्क है, विवाह के प्रयोजन के लिए, –

(क) विधिपूर्ण संरक्षक की देखरेख से बाहर लाया जाता है या

आने के लिए फुसलाया जाता है ; या

(ख) किसी स्थान से जाने के लिए बलपूर्वक बाध्य किया जाता है या किन्हीं प्रवंचनापूर्ण साधनों से उत्प्रेरित किया जाता है ; या

(ग) विक्रय किया जाता है, और किसी रूप में उसका विवाह कराया जाता है या यदि अवयस्क विवाहित है और उसके पश्चात् उस अवयस्क का विक्रय किया जाता है या दुर्व्यापार किया जाता है या अनैतिक प्रयोजनों के लिए उसका उपयोग किया जाता है,

वहां ऐसा विवाह अकृत और शून्य होगा ।

13. **बाल-विवाहों को प्रतिषिद्ध करने वाला व्यादेश जारी करने की न्यायालय की शक्ति** – (1) इस अधिनियम में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, यदि प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट का बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी के आवेदन पर, या किसी व्यक्ति से परिवाद के माध्यम से या अन्यथा सूचना प्राप्त होने पर यह समाधान हो जाता है कि इस अधिनियम के उल्लंघन में बाल-विवाह तय किया गया है या उसका अनुष्ठान किया जाने वाला है, तो ऐसा मजिस्ट्रेट ऐसे किसी व्यक्ति के, जिसके अंतर्गत किसी संगठन का सदस्य या कोई व्यक्ति संगम भी है, विरुद्ध ऐसे विवाह को प्रतिषिद्ध करने वाला व्यादेश निकालेगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन कोई परिवाद, बाल-विवाह या बाल-विवाहों का अनुष्ठापन होने की संभाव्यता से संबंधित व्यक्तिगत जानकारी या विश्वास का कारण रखने वाले किसी व्यक्ति द्वारा और युक्तियुक्त जानकारी रखने वाले किसी गैर-सरकारी संगठन द्वारा, किया जा सकेगा ।

(3) प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट का न्यायालय किसी विश्वसनीय रिपोर्ट या सूचना के आधार पर स्वप्रेरणा से भी संज्ञान कर सकेगा ।

(4) अक्षय तृतीया जैसे कतिपय दिनों पर, सामूहिक बाल-विवाहों के अनुष्ठापन का निवारण करने के प्रयोजन के लिए, जिला मजिस्ट्रेट उन सभी शक्तियों के साथ, जो इस अधिनियम द्वारा या उसके अधीन बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी को प्रदत्त हैं, बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी समझा जाएगा ।

(5) जिला मजिस्ट्रेट को बाल-विवाहों के अनुष्ठापन को रोकने या उनका निवारण करने की अतिरिक्त शक्तियां भी होंगी और इस प्रयोजन के

लिए, वह सभी समुचित उपाय कर सकेगा और अपेक्षित न्यूनतम बल का प्रयोग कर सकेगा ।

(6) उपधारा (1) के अधीन कोई व्यादेश किसी व्यक्ति या किसी संगठन के सदस्य या व्यक्ति संगम के विरुद्ध तब तक नहीं निकाला जाएगा जब तक कि न्यायालय ने, यथास्थिति, ऐसे व्यक्ति, संगठन के सदस्यों या व्यक्ति संगम को पूर्व सूचना न दे दी हो और उसे/या उनको व्यादेश निकाले जाने के विरुद्ध हेतुक दर्शित करने का अवसर न दे दिया हो :

परंतु किसी अत्यावश्यकता की दशा में, न्यायालय को, इस धारा के अधीन कोई सूचना दिए बिना, अंतरिम व्यादेश निकालने की शक्ति होगी ।

(7) उपधारा (1) के अधीन जारी किए गए किसी व्यादेश की, ऐसे पक्षकार को, जिसके विरुद्ध व्यादेश जारी किया गया था, सूचना देने और सुनने के पश्चात् पुष्टि की जा सकेगी या उसे निष्प्रभाव किया जा सकेगा ।

(8) न्यायालय, उपधारा (1) के अधीन जारी किए गए किसी व्यादेश को या तो स्वप्रेरणा पर या किसी व्यथित व्यक्ति के आवेदन पर विखण्डित या परिवर्तित कर सकेगा ।

(9) जहां कोई आवेदन उपधारा (1) के अधीन प्राप्त होता है, वहां न्यायालय आवेदक को, या तो स्वयं या अधिवक्ता द्वारा, अपने समक्ष उपस्थित होने का शीघ्र अवसर देगा, और यदि न्यायालय आवेदक को सुनने के पश्चात् आवेदन को पूर्णत: या भागत: नामंजूर करता है तो वह ऐसा करने के अपने कारणों को लेखबद्ध करेगा ।

(10) जो कोई, यह जानते हुए कि उसके विरुद्ध उपधारा (1) के अधीन व्यादेश जारी किया गया है, उस व्यादेश की अवज्ञा करेगा, तो वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी अथवा जुर्माने से, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से, दंडनीय होगा :

परंतु कोई स्त्री कारावास से दंडनीय नहीं होगी ।

14. **व्यादेशों के उल्लंघन में बाल-विवाहों का शून्य होना** – धारा 13 के अधीन जारी किए गए व्यादेशों के उल्लंघन में, चाहे वह अंतरिम हो या अंतिम, अनुष्ठापित किया गया कोई बाल-विवाह प्रारंभ से ही शून्य होगा ।

15. **अपराधों का संज्ञेय और अजमानतीय होना** – दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन दण्डनीय अपराध संज्ञेय और अजमानतीय होगा ।

16. **बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी** – (1) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, संपूर्ण राज्य या उसके ऐसे भाग के लिए, जो उस अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जाए, बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी के नाम से ज्ञात, किसी अधिकारी या अधिकारियों की नियुक्ति करेगी, जिसकी अधिकारिता, अधिसूचना में विनिर्दिष्ट क्षेत्र या क्षेत्रों पर होगी ।

(2) राज्य सरकार, समाज सेवा में विख्यात किसी स्थानीय सम्माननीय सदस्य या ग्राम पंचायत या नगरपालिका के किसी अधिकारी से या सरकार के अथवा किसी पब्लिक सेक्टर के उपक्रम के किसी अधिकारी से या किसी गैर-सरकारी संगठन के किसी पदाधिकारी से बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी की सहायता करने के लिए अनुरोध कर सकेगी और, यथास्थिति, ऐसा सदस्य, अधिकारी या पदाधिकारी तद्नुसार कार्रवाई करने के लिए बाध्य होगा ।

(3) बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) बाल-विवाहों के अनुष्ठापन का ऐसी कार्रवाई करके, जो वह उचित समझे निवारण करे ;

(ख) इस अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों के प्रभावी अभियोजन के लिए साक्ष्य संग्रह करे ;

(ग) बाल-विवाह के अनुष्ठापन का संवर्धन करने, सहायता देने या होने देने में अन्तर्वलित न होने के लिए व्यष्टिक मामलों में सलाह दे या क्षेत्र के निवासियों को साधारणतया परामर्श दे ;

(घ) बाल-विवाह के परिणामस्वरूप होने वाली बुराई के प्रति जागृति पैदा करे ;

(ङ) बाल-विवाहों के मुद्दे पर समाज को सुग्राही बनाए ;

(च) ऐसी नियतकालिक विवरणियां और आंकड़े दे, जो राज्य सरकार निर्देशित करे ; और

(छ) ऐसे अन्य कृत्यों और कर्तव्यों का निर्वहन करे, जो राज्य सरकार द्वारा उसे समनुदेशित किए जाएं ।

(4) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन रहते हुए, बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी को किसी पुलिस अधिकारी की ऐसी शक्तियां विनिहित कर सकेगी जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाएं और बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी ऐसी शक्तियों का, ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन रहते हुए, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाएं, प्रयोग करेगा ।

(5) बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी को धारा 4, धारा 5 और धारा 13 के अधीन और धारा 3 के अधीन बालक के साथ आदेश के लिए न्यायालय को आवेदन करने की शक्ति होगी ।

17. **बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारियों का लोक सेवक होना** – बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थान्तर्गत लोक सेवक समझे जाएंगे ।

18. **सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण** – इस अधिनियम या तद्धीन बनाए गए किसी नियम या किए गए किसी आदेश के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या किए जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई भी वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही बाल-विवाह प्रतिषेध अधिकारी के विरुद्ध नहीं होगी ।

19. **नियम बनाने की राज्य सरकार की शक्ति** – (1) राज्य सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखा जाएगा ।

20. **1955 के अधिनियम संख्यांक 25 का संशोधन** – हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 18 के खंड (क) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाएगा, अर्थात् :–

> "(क) धारा 5 के खंड (iii) में विनिर्दिष्ट शर्त के उल्लंघन की दशा में, कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा अथवा दोनों से ;" ।

21. **निरसन और व्यावृत्ति** – (1) बाल-विवाह अवरोध अधिनियम, 1929 (1929 का 19) इसके द्वारा निरसित किया जाता है ।

(2) ऐसे निरसन के होते हुए भी, इस अधिनियम के प्रारंभ पर उक्त अधिनियम के अधीन लंबित या जारी सभी मामले और अन्य कार्यवाहियां, जारी रहेंगी और निरसित अधिनियम के उपबंधों के अनुसार इस प्रकार निपटाई जाएंगी मानो यह अधिनियम पारित न हुआ हो ।

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	–	–	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. वी. परांजपे - 1990	40	–	–	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	–	–	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	–	–	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	–	–	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	–	–	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	–	–	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख - 1999	293	–	–	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	–	–	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	–	–	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ - 2001	425	–	–	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ - 2001	165	–	–	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	–	–	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	–	–	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	–	–	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	–	290	–
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	–	60	–

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 47259/88

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ` 195/- उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ` 125/- और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ` 125/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105